यजुर्वेद-भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत्'



चित्तरञ्जन दयाल सिंह कौशल 'मिमवाल'



निर्मल पब्लिकेशन्स

निर्मल पब्लिकेशन्स
१/९१९१, गली नं० ४ वेस्ट रोहतास नगर
शाहदरा दिल्ली ११००३२

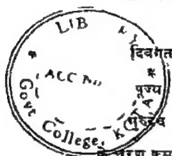
प्रथम संस्करण १९९३



मूल्य २०.००

मुद्रक अमर प्रिंटिंग प्रेस, कबीर नगर, दिल्ली ११००९४

समर्पण



दिवंगत

पूज्य

गुरुदेव

के चरण कमलों में

सादर

समर्पित

'त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये ।।'

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृतियों में अपना विशेष स्थान रखती है। भारत-वर्ष में अनादिकाल से इस संस्कृति ने अनेक चरित्रवान् महापुरुषों को उत्पन्न किया है।

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात् इस देश में उत्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों से पृथिवी के सभी मानव अपने अपने चरित्र की शिक्षा लें।

वैदिक-मन्त्रों का ऋषियों ने सर्वप्रथम दर्शन किया। यह दर्शन सामान्य चर्म चक्षु से नहीं अपितु प्रातिभ चक्षु से किया गया था। 'ऋषिर्दर्शनात्' यह सुप्रसिद्ध वचन यही भाव स्पष्ट करता है। वास्तव में साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों की विशाल विमल शब्द राशि का ही नाम वेद है।

समय समय पर देश विदेशों के अनेक वैदिक विद्वानों ने वेदों का गाढ़ अनुशीलन किया। माधवभट्ट स्कन्दस्वामी नारायण, उद्गीथ वेंकटमाधव आनन्दतीर्थ ऋग्भाष्यकार भवस्वामी, गुहदेव क्षुर भट्ट भास्कर मिश्र तैत्तिरीय संहिता के भाष्यकार, उवट और महीधर माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार, माधव, भरतस्वामी तथा गुणविष्णु सामवेद के भाष्यकार हुए। इन्होंने वेदों के अर्थों को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाया। सायण ने तो वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों व आरण्यकों पर यज्ञ परक अर्थ करते हुए पाण्डित्यपूर्ण भाष्यों की रचना की।

१८ वीं शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक अनुशीलन का कार्य प्रारम्भ किया। सर विलियम जोन्स ने बंगाल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। कोलब्रुक रुडाल्फ राथ मैक्समूलर, वेबर आफ्रेक्ट स्टीवेंसन ह्विटनी प्रो० हाग आदि ने वेदों पर उल्लेखनीय कार्य किया।

आधुनिक काल में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, शंकर पाण्डुरंग पण्डित शंकरबालकृष्ण दीक्षित विदेह महर्षि अरविन्द व स्वामी दयानन्द आदि भारतीय विद्वानों ने वेदों पर अपनी लेखनी उठाई और नवीन वेद व्याख्याएँ प्रस्तुत की।

मन्त्रों के पारमार्थिक व व्यावहारिक अर्थों को प्रकट करके स्वामी दयानन्द ने वेद और वेदार्थ के सच्चे स्वरूप को संसार के सामने रखा। वेद प्रभु की पवित्र वाणी

है जो सृष्टि के आदि में जीवों के कल्याणार्थ संसार के धर्मों की यथार्थ व्यवस्था के ज्ञानार्थ व तदनुसार आचरण करने के लिए परम-पवित्र ऋषियों द्वारा प्रदान की गई। स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य वेदापौरुषेयत्ववाद की अवधारणा के आधार पर है। इसमें लौकिक और वैदिक शब्दों के भेद का ध्यान में रखकर यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि आदि ऋषि मुनियों के आधार पर वेद के शब्दों के लिए समस्त वैदिक नियमों का आश्रयण किया गया है।

वस्तुतः मध्ययुगीन और समकालीन बहुत से विद्वानों ने आर्ष प्रणाली का त्याग कर शास्त्र सम्मत सिद्धान्तों की परवाह किये बिना वेद मन्त्रों की व्याख्याएँ की। जिससे वैदिक रहस्य सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ गए। ऋग्वेदादि चारों वेदों में अग्नि, इन्द्र, मरुत्, मित्र, वरुण, सोम, वात, विष्णु आदि देवताओं की स्तुतियाँ उपलब्ध होती हैं। इन देवताओं के स्वरूप, स्थान, गुण, कर्म और स्वभाव के सम्बन्ध में प्राचीन वैदिक वाङ्मय में पर्याप्त विचार किया गया है। किन्तु मध्यकाल में पौराणिक साहित्य में इन्हीं देवताओं का दूसरे रूप में चित्रण किया गया। इससे उत्पन्न पारस्परिक अर्थ विरोध को दूर करने के लिए तथा वेद के सत्यार्थ की स्थापना के लिए स्वामी दयानन्द ने वेदभाष्य का पुनीत कार्य प्रारम्भ किया।

आर्याणां मुनिमुख्यानां या
 व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था
 विधास्यन्ते तु नान्यथा॥
येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः॥
सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्॥

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के ईश्वर प्रार्थना विषय में स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य के पुनीत कार्य की पूर्णता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है। स्वामी जी ने अति उच्च भाव से वैदिक मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए वैदिक शब्दों व वैदिक देवताओं के बुद्धिगम्य व व्याकरण सम्मत मौलिक अर्थ प्रस्तुत किए।

विषय प्रवेश नामक प्रथम अध्याय में स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप विवेचन करने के पश्चात् यजुर्वेद भाष्यकार तथा स्वामी दयानन्द के बारे में प्रकाश डाला गया है।

'इन्द्र' एवं 'मरुत' शब्दों की व्युत्पत्ति निर्वचन एवं अभिप्राय नामक द्वितीय अध्याय में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' की व्युत्पत्ति का निर्वचन करते हुए ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदादि में उनका अभिप्राय भी प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में पाश्चात्य एवं तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानों के अनुसार 'इन्द्र' एवम् 'मरुत' का स्थूल स्वरूप प्रदर्शित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं मरुत का पारमार्थिक स्वरूप तथा पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

'इन्द्र' एवं मरुत से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दु नामक षष्ठ अध्याय में श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एवम् मरुत' का अभिप्राय वृत्र वध' के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवम् व्यावहारिक संगति तथा असुर दस्यु, अनार्य अहि इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन तथा इस प्रसंग में इन्द्र शब्द के अभिप्राय की संगति प्रस्तुत की गई है।

सप्तम अध्याय उपसंहारात्मक है। परिशिष्ट में (क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण (ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण (ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची का भी समावेश किया गया है।

कृतज्ञता ज्ञापन के सन्दर्भ में प्रस्तुत के निर्देशक (दिवंगत) डा० कपिलदेव शास्त्री प्रोफेसर एवं निवर्तमान स्थानाध्यक्ष पीठाध्यक्ष (संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के प्रति मैं सर्वप्रथम हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनके कुशल निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ। अस्वस्थता एवं व्यस्तता होने हुए भी उन्होंने सहर्ष मेरा मार्ग दर्शन किया। डा० मानसिंह, आचार्य व अध्यक्ष संस्कृत विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र जिनकी सतत प्रेरणा मेरा निरन्तर मार्ग दर्शन करती रही, के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त उन सभी सहयोगी विद्वानों व साथियों का भी मैं धन्यवादी हूँ जिनसे मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता प्राप्त हुई।

अन्त में, निर्मल प्रकाशन का अनेकशः धन्यवाद।

चितरञ्जन दयाल सिंह कौशल 'भिमवाल'

बसन्त पंचमी
१८ फरवरी, १९९३

पुरोवाक्

वेद ज्ञान भारतवर्ष की वह अनुपम सांस्कृतिक निधि है जिस को सारा विश्व ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है। वेद में अन्तर्निहित जीवन मूल्य इस देश की आम जनता के व्यवहार में ओत प्रोत हैं। धर्म उन सामाजिक सर्वहितकारी एवं व्यावहारिक आदान प्रदानों और जीवन सलीकों का नाम है जिनको देश और काल की परछाइयाँ आच्छादित नहीं करती। उन्हीं शाश्वत सत्यों का प्रस्तवन वैदिक-मन्त्रों के रूप में हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है। इस अमूल्य धरोहर पर उचित गर्व करने में संकोच कैसा ?

उन्नसवी शताब्दी में जब आम भारतीय मानसिकता गुलामी की जंजीरों में जकड़ी सिमक रही थी तथा पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से चुंधियाई भारतीय दृष्टि दिग्भ्रमित हो रही थी, उसी समय पदार्पण हुआ उस निर्भीक, सत्य-समर्पित, सर्वशास्त्र-पारंगत विद्वान् एवं वाग्मी मं यासी दयानन्द का जिसने 'वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक', घोषित किया तथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' (ऋग० भा० भू०) का प्रणयन करके वास्तविक वेद व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए गूढ रहस्यों का उदघाटन किया। उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर सम्पूर्ण यजुर्वेद एवं ऋग्वेद (अपूर्ण) का भाष्य भी प्रस्तुत किया। दयानन्द ने ईश्वर को सत्यस्वरूप माना है, ईश्वर के ज्ञान को सत्यविद्या कहा है और सत्य अर्थ के प्रकाश को ही वेद भाष्य रचना का प्रयोजन बतलाया है। अपने अमर-ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका तथा अनुभूमिकाओं में सभी मत मतान्तरों के विद्वानों से आग्रह किया है कि वे सब पक्षपात छोड़कर समाज के लिए अनुकरणीय एवं मानवीय सिद्धान्तों का सत्यासत्य के आधार पर निर्णय करें ताकि सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो सके। ऐसा निर्भ्रान्त निःस्वार्थी और सर्वत्यागी महामानव स्वयं विष पीकर संसार को वेद का यथार्थ ज्ञान रूपी अमृत पिला गया तथा मानव समाज के उपकार के लिए सर्वस्व आहूत कर गया और प्रस्तुत कर गया एक जीवन-दर्शन जिससे सारी मानवता का कल्याण हो सकता है।

ऋषि दयानन्द ने वेदों को अनादि और नित्य माना है। उनका मन्तव्य है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति अर्थात् आविर्भाव हुआ है। प्रलयकाल में भी वेद ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान रहते हैं और प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर पहले सर्गों के समान ही वेदों की रचना कर देता है। फलतः वर्तमान सृष्टि के आधार पर वेदों की उत्पत्ति कह दी जाती है और सृष्टि प्रलय के प्रवाह की दृष्टि से वेदों को नित्य माना जाता है। वेद नित्यता के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द की सबसे बड़ी

युक्ति है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान या विद्या है और ईश्वर के ज्ञानादि गुणों के नित्य होने के कारण वेद की नित्यता में संदेह का अवकाश नहीं है।

ऋषि का मानना है कि वेदों में सभी सत्य विद्याएँ मूलरूप से विद्यमान हैं। वेदों का प्रतिपाद्य विषय केवल याज्ञिक कर्मकाण्ड ही नहीं है अपितु व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सभी सद्व्यवहारों का निरूपण वैदिक कर्मकाण्डों के माध्यम से हुआ है। मनुष्य के व्यक्तिगत अभ्युदय सम्बन्धी नैतिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का निर्देश इनमें स्पष्ट रूप से पाया जाता है। इस प्रकार वेद किसी विशेष पूजा-पद्धति एवं मान्यता का निरूपित करने वाला रूढ़िवादी ग्रन्थ नहीं है अपितु एक आदर्श जीवन-पद्धति को प्रस्तुत करने वाला संविधान है जिसके अनुसार आचरण करके सम्पूर्ण मानवता अपना कल्याण कर सकती है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्पराओं में चार्वाक बौद्ध और जैन ऐसी परम्पराएँ हैं जो वेदों की प्रामाणिकता को नकारती हैं। इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द का स्पष्टीकरण है कि जिन बुराइयों की प्रतिक्रिया के रूप में इन मतों का प्रादुर्भाव हुआ था, वे बुराइयाँ वेद के आधार पर नहीं अपितु वेद के भाष्यकारों के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं। अतः दोष वेद का न मानकर अप्रामाणिक भाष्यकारों का माना जाना चाहिए। ऋषि का यह भी कहना है कि वेद को अप्रामाणिक मानने वाले इन सभी मतावलम्बियों को वेद का अनुशीलन करके सत्यासत्य का निर्णय करना चाहिए था केवल भाष्यों के आधार पर बुराई करना बुद्धिमत्ता नहीं। इसी प्रकार चार्वाकों बौद्धों और जैनियों ने वेदों में जो अश्लीलता असम्भव विधान, पशुबलि तथा जीविकार्जन के लिए किये गये अनेक पाखण्ड और मिथ्या विश्वास आदि दोष दिखलाये हैं उनको स्वामी जी ने वेद प्रतिपादित नहीं माना है।

स्वामी दयानन्द ने मात्र चार मूल संहिताओं—ऋग्वेद (शाकल), यजुर्वेद (वाजसनेयि), सामवेद (कौथुमी) और अथर्ववेद (शौनकीय) को ही वेद माना है। शाखाओं और ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं माना है। सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में वे लिखते हैं—"ब्राह्मण-पुस्तकों में बहुत से ऋषि, महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु विशेष जिस जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी मनुष्य की संज्ञा व विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं है।'

ऋषि दयानन्द ने वेद को ईश्वरोक्त होने के कारण स्वतः प्रमाण माना है। वे लिखते हैं—'वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिमान् है। इस कारण से उनका कथन भी निर्भ्रम और स्वतः प्रमाण के योग्य है। जैसे सूर्य और दीपक अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होकर सब क्रिया वाले द्रव्यों को

प्रकाशित कर देते हैं, वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित होके अन्य ग्रन्थों का भी प्रकाश करते हैं।" (ऋग०भा०भू०,ग्रन्थप्रा०)

वेदों की रचना का प्रयोजन बतलाते हुए स्वामी जी ने लिखा है—"जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है। जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार, भ्रमजाल से छूटकर विद्याविज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।" (सत्यार्थ० सप्तम समु०)

ऋषि दयानन्द ने वेद व्याख्या करने के लिए व्यक्ति विशेष की योग्यता का निर्धारण किया है। मनु का प्रमाण उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि अर्थ और काम में न फँसता हुआ विद्वान् ही वेदवेत्ता हो सकता है। साक्षात्कृतधर्मा विद्वान् ही वेदार्थ को यथार्थ रूप में समझकर मन्त्रों को समझा सकता है। वेदार्थ ज्ञान के लिए इस मानसिक संयम के अतिरिक्त जिन-जिन ग्रन्थों को हृदयंगम करना आवश्यक है उनका वर्णन करते हुए लिखते हैं—'मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिए अर्थयोजना सहित व्याकरण अष्टाध्यायी, धातुपाठ उणादिसूत्र गणपाठ और महाभाष्य, शिक्षा, कल्प निघण्टु निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अंग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपांग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक ठीक जाना जाता है तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़के अथवा जिन्होंने इन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़के जो सत्य सत्य वेदव्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें (ऋग०भा०भू० पठन पाठन)। यहाँ महर्षि ने वेदांग, उपांग और चार ब्राह्मण अर्थात् १६ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वेद व्याख्याता को प्रथमतः इन ग्रन्थों को हृदयंगम करना आवश्यक है। अपने वेद भाष्य के प्रणयन का उद्देश्य और उपयोगिता बतलाते हुए उन्होंने लिखा है—'यह भाष्य प्राचीन आचार्यों के भाष्य के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण उव्वट, सायण और महीधरादि के भाष्य बनाए हैं वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं। मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी और जो यह मेरा भाष्य बनता है यह वेदांग, ऐतरेय, शतपथ—ब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार है क्योंकि वेदों के जो सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है यही इसमें अपूर्वता है। और दूसरा इसके अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो-जो भाष्य उव्वट, सायण, महीधरादि के बनाए हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेदव्याख्यानों के विरुद्ध हैं, तथा जो जो इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी, जर्मनी, दक्षिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेद व्याख्यान बने हैं वे भी अशुद्ध हैं।" (ऋग०भा०भू०,भा० समा०)

जिस समय में वेदों का सत्य सत्य अर्थ न जानने के कारण पाश्चात्य विद्वान् इनको गड़रियों के गीत घोषित कर रहे थे और वेदों का पठन पाठन समाप्त हो जाने के कारण वेदों के नाम से मिथ्यावादी छली प्रपंची और कपटी लोगों ने अपने माया-जाल में लोगों को फँसाने के लिए मनमाने मन्त्र और मिथ्याचार फैला रखे थे। ऐसे घोर अन्धकारपूर्ण समय में ऋषि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या तथा परमेश्वर की अनन्य आराधना वेदों के प्रति असीम आस्था तथा गुरु विरजानन्द की आर्ष शिक्षाओं के प्रबल सामर्थ्य से वेदों के सत्यार्थ को जाना तथा वेद ज्योति की प्रज्ज्वलित मशाल हाथ में लेकर मिथ्याडम्बरों एवं अन्धविश्वासों को भस्मसात किया।

महर्षि के वेद भाष्य की अनुपम शैली है। उन्होंने सर्वप्रथम अपनी दिव्यदृष्टि से सभी मन्त्रों के प्रारम्भ में तत्तद् मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का 'मन्त्र भूमिका' के नाम से उल्लेख किया है। पढ़ने वालों को सरलता से सर्वप्रथम यह बोध हो जाता है कि उस-उस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय क्या है जिससे मन्त्रार्थ अत्यन्त सरलता से समझ में आ जाता है। ऋषि ने मन्त्रों का भाष्य उसमें सम्बद्ध देवता के अनुरूप किया है। मन्त्र में विद्यमान विशेषणों के आधार पर मन्त्र के देवतार्थ को सुस्पष्ट व्याख्यात किया है। इन्होंने मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय अर्थात् देवता को मन्त्रार्थभूमिका, पदार्थ, अन्वय तथा भावार्थ आदि में कहीं भी ओझल नहीं होने दिया है। भाष्य के लिए वेदार्थ की शैली प्रतिपादित करते हुए महर्षि ने वेद व्याख्या के दो महत्त्वपूर्ण पक्षों को प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं— 'इस वेद भाष्य में जिस जिस मन्त्र का पारमार्थिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार का अर्थ होना सम्भव है, उसका दोनों प्रकार का अर्थ किया जायगा। परन्तु किसी भी मन्त्र में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं।' ऋषि ने इन दोनों प्रकार के अर्थों को भी सर्वत्र स्वीकार नहीं किया है। जहाँ जहाँ सम्भव है वहीं-वहीं दोनों प्रकार का अर्थ हो सकता है सर्वत्र नहीं। उन्होंने भाष्य में कहीं कहीं श्लेषालंकार से द्विविध अर्थ प्रस्तुत भी किये हैं। पारमार्थिक पक्ष में, एकदेववाद की महत्त्वपूर्ण परम्परा के प्रतिपादन की दृष्टि से परम तत्त्व से सम्बद्ध वेदार्थ को प्रस्तुत किया है। प्राचीन व्याख्याकारों के आध्यात्मिक पक्ष को ही ऋषि ने पारमार्थिक नाम दिया। दूसरे पक्ष यानी व्यावहारिक पक्ष में ऋषि ने व्यक्ति, समाज, देश एवं सम्पूर्ण विश्व की सुव्यवस्था, समृद्धि तथा शान्ति की दृष्टि से मंगलमयी भावनाओं को प्रकाशित करने वाले अर्थ प्रस्तुत किये हैं। स्थान स्थान पर सायणादि भाष्यकारों की व्याकरण, छन्द तथा प्रकरण आदि से विरुद्ध प्राप्त होने वाले दोषों का उल्लेख भी किया है।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक शब्दों का अर्थ यौगिक प्रक्रिया के आधार पर किया है। उनकी यौगिक प्रक्रिया ब्राह्मण ग्रन्थ निरुक्त व्याकरण आदि के आधार पर प्रतिष्ठित होकर भी अपना एक विशेष स्थान रखती है। अपने नवीन एवं अद्भुत विचारों की स्थापना ऋषि दयानन्द ने इसी यौगिक प्रक्रिया की सहायता से की है।

ऋग्०भा०भू० (सृष्टिविद्या) में उन्होंने "अबध्नन पुरुषं पशुम्" का अर्थ किया है—"पशुं सर्वद्रष्टारं सर्वैः पूजनीयं देवा विद्वांस (अबध्नन) ध्यानेन बध्नन्ति"—अर्थात् पशुं सबको देखने वाले सबके पूजनीय परमेश्वर को विद्वान् लोग ध्यान में बांधते हैं। इस प्रकार के क्रान्तदर्शी नवीन अर्थ से एक ओर तो यज्ञ में पशुबलि के समर्थक उव्वट आदि के वेद का अपमान करने वाले अर्थ निराकृत हो जाते हैं दूसरी ओर वैदिक यज्ञों में पशुहिंसा का विरोध करने वाले दयानन्द के विचारों की स्थापना भी हो जाती है। यौगिक पद्धति के आधार पर जमदग्नि और कश्यप आदि पदों के अर्थ चक्षु और प्राण आदि किये हैं। इसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में जो ऐतिहासिक नाम जैसे प्रतीत होते हैं उनके अर्थ यौगिक व्याख्या के अनुसार ही किये हैं। वैदिक कोष निघण्टु में विष्णु का अर्थ सूर्य तथा समुद्र का अर्थ अन्तरिक्ष किया है। इसी आधार पर आकाश में सूर्य के सामान्य विचरण का कथन हो जाता है। किन्तु सायणादि भाष्यकारों ने लौकिक अर्थों के आधार पर पौराणिक कथाओं की कल्पना कर ली कि विष्णु समुद्र में शयन करता है। इसी प्रकार देवराज इन्द्र और अहल्या की कथा गढ़ी हुई है कि इन्द्र ने गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के साथ जारकर्म किया। परन्तु निरुक्त में स्पष्ट रूप से इन्द्र का अर्थ सूर्य गौतम का चन्द्र और अहल्या का रात्रि किया है। रात्रि और चन्द्र का स्त्री पुरुष के समान रूपकालंकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्द कराता है और उस रात्रि का जार आदित्य है अर्थात् सूर्य के उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाती है। इस प्रकार वेदों में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। सामान्य व्यक्ति की सामान्य बुद्धि इन प्रतीकों का समर्थन में पूर्णतया सक्षम नहीं हो पाती है। ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्य में इन सभी रहस्यों का उद्घाटन किया है।

आधुनिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान के विकास के साथ वैदिक भाषा का अयाम ईरानी और यूरोपीय भाषाओं के साथ पुरातन सम्बन्ध उद्घाटित हुआ है। उसके आधार पर वेदों की व्याख्या प्रस्तुत करने की बात की जाती है। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इस प्रकार के प्रयत्न किये भी हैं। परन्तु तुलनात्मक भाषा विज्ञान शब्दों के बाह्य स्वरूप की समानता के विश्लेषण तथा शब्दों के प्रसिद्ध अर्थ के तुलनात्मक अध्ययन तक ही सीमित रहता है। शब्दों के निगूढ़ तथा प्रतीकात्मक अर्थों पर इस विद्या का प्रभाव नगण्य है। इन आधुनिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा तुलनात्मक देवशास्त्र की नई खोजों के वाक्विन्यासात्मक तर्कों से सज्जित पाश्चात्य विचारक व उनके अनुयायी भारतीय विद्वान् अद्यावधि वेद के बाह्य शरीर की ही चीर फाड करते रहे हैं। परन्तु वेद की आत्मा का यदि किसी ने स्पर्श करने का प्रयास किया है तो वे हैं ऋषि दयानन्द। ऋषि की ऋग्०भा०भू० में इन रहस्यों का तथ्यात्मक प्रमाणों के अनुसार विवेचन मिलता है जिज्ञासुओं को इसका लाभ उठाना चाहिए।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द की वेद व्याख्या पद्धति एवं सत्यानुकूल वेद व्याख्या के लिए ऋषि द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों और मानदण्डों का यहाँ संकेत मात्र किया

गया है। परन्तु ये संकेत महर्षि दयानन्द के भाष्य को पढ़ने और समझने के लिए आवश्यक है। योगी अरविन्द ने दयानन्द के इन सिद्धान्तों का समर्थन किया है तथा व्यावहारिक रूप में इनका प्रयोग भी किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र एवं 'मरुत्' में विद्वान प्राध्यापक डॉ० चित्तरञ्जन दयालसिंह कौशल विश्वविद्यालय महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य का मन्थन किया है। यजुर्वेद के अन्य उपलब्ध भाष्यकारों की दृष्टि और शैली को तर्क की कसौटी पर कसकर स्वामी जी के भाष्य के साथ तोला है। एक निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रह से मुक्त दृष्टिकोण से मन्थन डा० कौशल ने ऋषि दयानन्द के भाष्य के साथ न्याय करने का पूरा प्रयत्न किया है। इन्द्र' "मरुत" शब्दों का शाब्दिक विवेचन करने के पश्चात पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों के एतद् विषयक अद्यावधि शोधों को सार रूप में प्रस्तुत करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की है। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद में 'इन्द्र' व "मरुत" सम्बन्धी मन्त्रों की जो पारमार्थिक व व्यावहारिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, उनको पृथक् पृथक् अध्यायों में अनुस्यूत करके स्वामी जी के अनुसार इन्द्र' और मरुत' के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन किया है। पारमार्थिक दृष्टि से इन्द्र परमात्मा व जीवात्मा है। व्यावहारिक दृष्टि से योगी, राजा, सम्राट् सेनापति सभापति, विद्वान, अध्यापक, उपदेशक शूरवीर ऐश्वर्यशाली पुरुष सूर्य विद्युत वा वायु आदि है। मरुतों का स्वरूप अध्यात्म में प्राण अधिदैवत में वायु तथा अधिभूत में मानवों में वीर है। व्यावहारिक दृष्टि में मरुत के विद्वान अतिथि ऋत्विक्, गृहस्थ वायु, मनुष्य, सेनापति, राजा प्रजा आदि अर्थ किये गये हैं। इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द के भाष्य सिद्धान्तों का अन्वय किया गया है। मैं विद्वान लेखक के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। आशा है यह ग्रन्थ वेदाध्ययन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रिय सुहृद चित्तरञ्जन कौशल को शुद्ध संस्कार विरासत में मिले हैं। संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रति समर्पित यह नवयुवक संस्कृत भाषा के प्रचार और प्रसार में विशेष योगदान प्रस्तुत करेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

होलिकोत्सव
फाल्गुन पूर्णिमा
वि० २०४१

डा० रणवीर सिंह
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र-१३२११९

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र एवं मरुत' देव के स्वरूप के विषय में विचार करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि स्वामी दयानन्द ने अपने वेद भाष्य के आधार रूप में जिन मान्यताओं और सिद्धान्तों को अपनाया, उनका विवेचन किया जाए। वेद और वेदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में प्राचीन एवं परम्परागत मान्यताओं और सिद्धान्तों का समीक्षण एवं परीक्षण अनिवार्य सा हो जाता है। *प्रस्तुत पुस्तक के विषय प्रवेश नामक प्रथम अध्याय में इसी दृष्टि से स्वामी जी* की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप, यजुर्वेद के भाष्यकार तथा प्रसंगानुसार वैदिक संहिताओं के मन्त्रों के ऋषि व देवता आदि पर भी विचार किया गया है।

(क) स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप

नवभारत के पुनर्जागरण व पुनरुत्थान में स्वामी दयानन्द का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी जी ने पाश्चात्य जगत व विदेशी सभ्यता के चाकचिक्य से अभिभूत भारतीय दृष्टि को आत्म निरीक्षण की प्रेरणा दी। उन्होंने भारतीय जनता के निराश हृदयों में आत्मसम्मान व आत्मगौरव का भाव उत्पन्न किया। स्वामी जी ने वेद को सब सत्यविद्याओं की पुस्तक सिद्ध किया। वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है यह सिद्धान्त स्थापित किया व 'लौटो वेदों की ओर' का उद्घोष किया। स्वामी जी की दृष्टि से वेद केवल कर्मकाण्ड के ग्रन्थ नहीं हैं अपितु वेदों में जीवन निर्माण की सभी शिक्षायें विद्यमान हैं। वैदिक मन्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म या परमात्मा है। वेद समस्त आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज्ञान का भण्डार है। स्वामी दयानन्द ने वेद को आधार बनाकर प्राचीनतम परम्परा तथा बौद्धिकता का समन्वय करते हुए अपने मार्ग को प्रशस्त करने के लिए वेदों के भाष्य किए और एक विपुल वाङ्मय का निर्माण किया।[1] ऋषि दयानन्द के समस्त ग्रन्थों में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का महत्त्व सबसे अधिक है। इस ग्रन्थ में वेद के उन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों और वेदार्थ की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है, जिस पर स्वामी दयानन्द कृत वेदभाष्य आधृत है।[2] स्वामी जी की दृष्टि में मूल वेद के स्वरूप पर विचार करते

---

१ द्र०—दयानन्द दर्शन एक अध्ययन, प्राक्० पृ० १

२ द्र०—ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० १

हुए वेद शब्द का व्याकरणिक विवेचन, व्युत्पत्ति, अभिप्राय, मूल वेद की संख्या, वैदिक ऋषि व देवता आदि विषयों का विश्लेषण भी अनिवार्य हो जाता है।

'वेद' शब्द का व्याकरणिक विवेचन

वेद', शब्द 'विद' धातु से करण कारक में 'घञ्' प्रत्यय द्वारा तथा भाव में 'अच' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है।[1] 'घञ' से निष्पन्न वेद अन्तोदात्त है तथा 'अच' प्रत्यय द्वारा प्रत्यय निष्पन्न 'वेद' शब्द आद्युदात्त है।[2] करण कारक में 'घञ' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न अन्तोदात्त 'वेद' शब्द का पाणिनि मुनि द्वारा अपने गणपाठ के ऊञ्छादिगण में पाठ किया गया है।[3] इसकी व्युत्पत्ति है—'वेत्ति येन स वेद' अर्थात् 'जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाए वह ग्रन्थ विशेष'। भाव अर्थ में 'अच' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न आद्युदात्त 'वेद' शब्द का वृषादिगण में पाठ किया गया है।[4] इसकी व्युत्पत्ति है—'वेदन वेद' अर्थात् 'ज्ञान की प्रक्रिया' जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाए। अन्तोदात्त 'वेद' शब्द वेदरूप ग्रन्थ विशेष का वाचक है तथा आद्युदात्त 'वेद' शब्द ज्ञान की प्रक्रिया का वाचक है।

अन्तोदात्त 'वेद' शब्द का ऋग्वेद और सामवेद में प्रयोग नहीं मिलता है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में उसका प्रयोग किया गया है।

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो
वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः।[5]

महीधर के अनुसार 'वेद' पद का अर्थ 'ऋग आदि रूपवेद या' जानने वाला है।[6] स्वामी दयानन्द के मत में 'चराचर को जानने वाला जगदीश्वर' या 'जिसमें लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं वह ऋग्वेदादि' यह वेद शब्द का अर्थ है।[7] श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

---

१ द्र०—ऋषि दयानन्दकृत यजुर्वेद भाष्य में अग्नि का स्वरूप : एक परिशीलन, पृ० २
२ द्र०—वही
३ पाणिनीय गणपाठ, ६ १ १६० वेदवेगवेष्टवन्धा करणे
४ वही ६ १ २०३
५ यजुर्वेद, २ २१
६ यजुर्वेदभाष्य (महीधर) २ २१
त्वं वेदोसि ऋगाद्यात्मकोऽसि यद्वा वेत्ति, इति वेद ज्ञातासि।
७ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २ २१
(वेद) वेत्ति चराचर जगत् स जगदीश्वर,
विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा।

कृत यजुर्वेद-भाष्य विवरण मे व्याकरण प्रक्रिया मे वेद शब्द को चित्त्वात अर्थात चित होने से अन्तोदात्त माना है।[1]

'वद स्वस्तिद्रु घण स्वस्ति'[2] इस स्थल पर अन्तोदात्त 'वेद' शब्द का अर्थ सायण के अनुसार 'दर्भमुष्टि' किया गया है।[3] 'ब्रह्म प्रजापतिधाता लोका वेदा सप्त ऋषयोऽग्नय'[4] इस स्थल मे अन्तोदात्त 'वेदा' शब्द का अथ सायण ने 'चार वेद' किया है।[5] 'पुराण' वेद विद्वासमभितो वदन्ति' स्थल मे आद्युदात्त 'वेद' शब्द प्रयुक्त है।[6] इसी प्रकार अथर्ववेद में 'वेदमाता' व 'वेदम्' और आद्युदात्त 'वेदा' शब्द भी वेद के अथ म प्रयुक्त मिलते हैं।[7] भट्टभास्कर 'वेद' शब्द को 'लभ्यते अनेन इति करणे घञ' कहकर उञ्छादिगण के द्वारा उसे अन्तोदात्त सिद्ध करते हैं।

देवो के द्वारा वेद से ज्ञेय को जानने की बात कही गई है।[8] जिससे धर्म का ज्ञान होकर वह वेद है।[9] यह ज्ञान किसी अन्य प्रमाण से प्राप्त नही किया जा सकता। प्रत्यक्ष अथवा अनुमान मे मानव कल्याण का जो उपाय नही जाना जा सकता उसे वेद स जान लिया जाता है।[10]

---

१ यजुर्वेद-भाष्य विवरण, प० २०९
(वेद) विद्धातो पचाद्यच् प्रत्यय प्रथमार्थे (अ०३ १ १३४)
चित्त्वादन्तोदात्त। द्वितीयार्थे हलश्च (अ० ३ ३ १२१), इति करणे घञ प्रत्यय।
उञ्छादीना च (अ०६ १ १६०) इत्यन्तोदात्त॥

२ अथर्ववेद, ७ २९ १
३ अथर्ववेद भाष्य, ७ २९ १ वेदो नामदर्भमुष्टि।
४ अथर्ववेद, १९ ९ १२
५ अथर्ववेद भाष्य, १९ ९ १२, साङ्गाश्चत्वारो वेदा।
६ अथर्ववेद, १० ८ १७
७ (क) वही, १९ ७१ १, स्तुता मया वरदा वेदमाता।
(ख) वही, १९ ६८ १, अव्यसश्च व्यचसश्च बिल विष्यामि मायया।
तात्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे॥
(ग) वही १९ ७२ १, यस्मात कोशादुदभराम वेदम।
(घ) वही, ४ ३५ ६, यस्मिन वेदा निहिता विश्वरूपा।
८ तैत्तिरीय संहिता, १ ४ २०, वेदेन वै देवा—वेद्यमविन्दन्त।
९ (क) अमरकोश १ ५ ३, क्षीरस्वामी विदन्त्ययेन धर्मवेद।
सर्वानि द विदन्ति धर्मादिकमनेनेनिवेद॥
(ख) मनुस्मृति, २६
१० अथर्ववेद, १९ ७२ १ सायण भाष्य
प्रत्यक्षेणानुमित्या वायस्तूपायो न बुध्यते।
एन विदन्ति वेदेन तस्मान्न वेदस्य वेदना॥

ऋषि, आम्नाय, श्रुति आदि शब्द वेद के पर्याय हैं। वेद अतीन्द्रिय अर्थ का द्रष्टा होने के कारण 'ऋषि' कहा जाता है।[१] वेद बार बार अभ्यास, प्रवचन, पठन-पाठन आदि किये जाने के कारण 'आम्नाय' कहा जाता है।[२] वेद को श्रवण परम्परा से प्राप्त होने के कारण, उपदेश या अध्ययन-अध्यापन किये जाने के कारण 'श्रुति' कहा जाता है।[३]

स्वामी जी ने ज्ञान सत्ता, लाभ व विचार अर्थ वाली चतुर्विध 'विद' धातुओं से करण और अधिकरण कारक में 'वेद' शब्द को निष्पन्न माना है। 'विद ज्ञाने'[४] विदसत्तायाम्[५], विदलृ लाभे[६], विद विचारणे[७], एतेभ्यो हलश्च[८] इति सूत्रेण करणाधिकरणकारकयोर्घञ् प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते।[९] 'श्रु श्रवणे' धातु से करण कारक में क्तिन प्रत्यय द्वारा 'श्रुति' शब्द सिद्ध होता है।[१०] जिनके पढने से यथार्थ विद्या का ज्ञान होता है, जिनको पढकर विद्वान बनते है, जिनसे सब सुखो का लाभ व प्राप्ति होती है और जिनमे ठीक ठीक सत्यासत्य का विचार होता है उन ऋग्वेदादि को वेद कहते है। सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त और ब्रह्मादि से लेकर अब तक जिससे सब सत्य विद्याओं को सुनते आते है, इससे वेदो को 'श्रुति' भी कहते है।[११]

वेदो की अपौरुषेयता

भारतीय संस्कृति मे आस्था एव श्रद्धा रखने वाले विद्वान् तथा वैदिक परम्परा के ज्ञाता पुरातन काल से यही मत स्वीकार करते आये है कि वैदिक मन्त्र मानव द्वारा

---

१ अष्टाध्यायी ३ २ १८६, कर्तरि चर्षिदेवतयो, ऋषिवेद
(पदमजरी व सिद्धान्तकौमुदी)

२ (क) मीमासासूत्रपाठ १ २ १, आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद
(ख) दशकुमारचरित १२०, अधीतीचतुर्ष्वाम्नायेषु
(ग) उत्तररामचरित ४ आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतार

३ वाक्यपदीय, १ १२०—शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदु ।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्व व्यवर्तत ॥

४ धातुपाठ २ ५७

५ वही ४ ६०

६ वही, ६ १४१

७ वही ७ १३

८ अष्टा०, ३ ३ १२१

९ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० २३

१० धातुपाठ १ ६७८

११ विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा । तथादि सृष्टिम आरभ्य अद्यपर्यन्त ब्रह्मादिभि सर्वा सत्यविद्या श्रूयन्ते अनया सा 'श्रुति'
—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० २३ २४

स्वच्छित शब्दावली में नहीं रचे गए, अपितु यह वेदरूप ज्ञान अनादि और अनन्त है।[1] प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा के निःश्वास भूतमन्त्र महर्षियों की दिव्य मनीषा में स्वतः स्फूर्त होते हैं तथा उनके माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं।[2] यह परमदेव का शाश्वत ज्ञान रूप एक ऐसा दिव्य काव्य है जो न कभी नष्ट होता है, न कभी पुराना ही होता है।[3] उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, पूर्णब्रह्म परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए। परमेश्वर ने ही वेदों का प्रकाश किया।[4]

'तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्'।[5] इस मन्त्र में वेदवाणी को नित्य कहा गया है। इसका भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है कि हे महर्षि! उत्पत्ति रहित मन्त्ररूप वेद वाणी के द्वारा स्तुति किया कर।[6] यास्क मुनि ने पुरुष की विद्या अनित्य होने से वेद को ही सम्पूर्ण कर्मों का बोधक माना है।[7] वेद वाणी नित्य है तथा उसकी आनुपूर्वी भी नित्य होती है उसमें किसी प्रकार का न्यूनाधिक्य सम्भव नहीं।[8] पाणिनि तथा पातञ्जलि मुनि भी वेद को नित्य मानते हैं। तेन प्रोक्तम्',[9] सूत्र का भाष्य करते हुए पातञ्जलि ने कठ कलाप पैप्पलादादि शाखा ग्रन्थों की आनुपूर्वी को अनित्य माना है किन्तु वेद की आनुपूर्वी को नित्य स्वीकार किया है।[10]

---

१ वाक्यपदीय, १ १४ ५, अनादिमव्यवच्छिन्नां श्रुतिमाहुरकर्तृकाम।

२ शतपथ १४ ५ ४ १०, एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद्।
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

३ ऋ० १० ५५ ५, देवस्य पश्य काव्यं महित्वा द्या ममार स ह्यः समान।
अथर्ववेद, १० ८ ३२, देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

४ ३१ ७, तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

५ ऋग्वेद ८ ७५ ६,

६ ऋग्वेद भाष्य (सायण), ८ ७५ ६।
नित्यया उत्पत्तिरहितया वाचा मन्त्ररूपया सुष्टुतिं नूनमिदानीं चोदस्व स्तुहि

७ निरुक्त, १ २, पुरुषविद्या नित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे।

८ निरुक्त १, १६, नियतवाचो युक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति।

९ अष्टाध्यायी, ४ ३ १०१

१० महाभाष्य, ४ ३ १०१, या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या। तद्भेदाच्चैतद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति।
महाभाष्य, ५ २ ५६, स्वरो नियत आम्नायेऽस्यवामशब्दस्य वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता अस्यवामशब्दस्य॥

मनु महाराज के अनुसार वेद ज्ञानी, विद्वान और मनुष्यो का सनातन चक्षु है, इसको कोई व्यक्ति बना नही सकता।[1] चारो वर्ण तीनो लोक, चारो आश्रम तथा भूत, वर्तमान और भविष्य की सब व्यवस्थाए, वेद से ही ससार में प्रचलित होती हैं।[2] सर्वकाल से वर्तमान सनातन वेदशास्त्र द्वारा सम्पूर्ण जीवो का धारण का पोषण होता है। प्राणि मात्र के लिए वेद को मैं(मनु)परम साधन मानता हूं।[3] सेनापत्य, राज्य तथा दण्डादि की सब व्यवस्था और सब लोको पर आधिपत्य (=राज्य) करने के लिए वेद शास्त्र का ज्ञाता सबसे मुख्य अधिकारी होना है।[4] वेद से भिन्न(=विपरीत) अनेक ग्रन्थ बनते रहते हैं और नष्ट होते रहते हैं। व मन प्राचीन परम्परा के अनुसार न होने से निष्फल और असत्यपूर्ण होते हैं।[5] वेद मे सब धर्मो (=नियमो) का प्रतिपादन किया गया है, क्योकि वेद सर्वज्ञान का स्रोत है।

स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स [6]।

ऋग यजु व साम अग्नि वायु व रवि(=सूर्य) ऋषियो के द्वारा प्रकाशित हुए।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु सामलक्षणम्॥[7]

इस श्लोक की टीका करते हुए कुल्लूकभट्ट लिखते हैं— 'वेदापौरुषेयत्वपक्ष एव मनोरभिमत। पूर्वकल्पे ये वेदास्त एव परमात्ममूर्तेर्ब्रह्मण सर्वज्ञस्य स्मृत्यारूढा। तानेव कल्पादौ अग्निवायुरविभ्य आचकर्ष —।[8]

अर्थात मनु ने वेदो को अपौरुषेय ही माना है। जो वेद पूर्वकल्प म विद्यमान थे वही वेद वर्तमान म विद्यमान हैं।

---

१ मनुस्मृति १२ ९४, पितृदेवमनुष्याणा वेदश्चक्षु सनातनम्।
अशक्य चाप्रमेय च वेदशास्त्रमिति स्थिति।

२ वही १२ ९७, चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक्।
भूत भवत भविष्य च सर्व वेदात प्रसिध्यति॥

३ वही, १२ ९९

४ वही, १२ १०० सेनापत्य च राज्य च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्य च वेदशास्त्रविदर्हति॥

५ वही १२ ९६ उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥

६ वही, २ ७

७ वही १ २३

८ यजुर्वेद भाष्य विवरण भूमिका, पृ० २२

सष्टि के प्रारम्भ मे स्वयम्भू परमात्मा के द्वारा ऐसी वेदरूपा वाणी का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका आदि अन्त नही, जो नित्य है, जिसका कभी विनाश सम्भव नहीं जो दिव्य है, जिससे ससार मे सब प्रवृत्तिया चलती हैं।[1]

वेद ईश्वरोक्त है, उनमे सत्यविद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर नित्य है अत उसका वचन भी नित्य होने से प्रमाण है।

'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'।[2] अर्थात ईश्वर का वचन होने से वेद की प्रामाणिकता सिद्ध है।

आप्तो द्वारा सदा से प्रामाण्य स्वीकार करते आने के कारण वेद का प्रामाण्य मानना चाहिए, जिस प्रकार मन्त्र (=विचार) और आयुर्वेद का प्रमाणत्व स्वीकार करना पड़ता है।[3] वेद किसी पुरुष के बनाये हुए नही क्योकि उनका बनाने वाला आज तक दृष्टिगोचर नही हुआ। वेद की उत्पत्ति प्रवाह से अनादि है।[4]

ईश्वर की स्वाभाविक शक्ति द्वारा प्रकाशित होने के कारण वेद स्वत प्रमाण है।[5] पतञ्जलि मुनि क्लेश, कर्म विपाक व आशय से रहित पुरुष विशेष को ईश्वर कहते हैं।[6] व्यासकृत योगभाष्य मे कहा गया है कि उत्कर्ष का निमित्त शास्त्र है। शास्त्र का निमित्त क्या है? प्रकृष्ट सत्त्व (=सर्वोत्कृष्ट ज्ञान) शास्त्र का निमित्त है। ईश्वर के ज्ञान मे वर्तमान इस शास्त्र और सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का सम्बन्ध अनादि है। इस कारण से वह सदा ऐश्वर्य वाला तथा सदैव मुक्त कहा जाता है।[7] ऋग्वेदादि-शास्त्र का कारण होनेसे ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है।

---

१ महाभारत (शान्ति पर्व,) अध्याय २३२ २४

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी, दिव्या यत सर्वा प्रवृत्तय ॥

२ वैशेषिक दर्शन, १ १ ३

३ न्यायशास्त्र, २ १ ६७ मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च।
तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।

४ साख्यशास्त्र, ५ ४ ६, न पौरुषेयत्व तत्कर्तु पुरुषस्याभावात।

५ वही, ५ ५, निजशक्त्यभिव्यक्ते स्वत प्रामाण्यम।

६ योगशास्त्र, १ २४
क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर।

७ योग भाष्य, १ २४, पृ० २८, २९
तस्य शास्त्र निमित्तम्। शास्त्र पुन किंनिमित्तम्? प्रकृष्टसत्त्वनिमित्तम् एतयो शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्तमानयोरनादि सम्बन्ध। एतस्मादेतद भवति सदैवेश्वर सदैव मुक्त इति ॥

'शास्त्रयोनित्वात्'[1] सूत्र के भाष्य में श्री स्वामी शङ्कराचार्य लिखते हैं—'महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थविद्योतिन सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारण ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यत सम्भवनोऽस्ति।'[2]

अर्थात अनेक विद्याओं से परिपूर्ण, प्रदीप के समान सब पदार्थों का प्रकाश करने वाले महान ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म ही है। सर्वज्ञ ब्रह्म को छोडकर और दूसरा कौन है जो ऐसे शास्त्र को बना सकता हो? परब्रह्म से प्रकाशित होने से वेद नित्य हैं।[3] वेदों के प्रमाण और नित्य होने मे सूर्य शास्त्रा के प्रमाण का साक्षी के समान ही मानना चाहिए। क्योंकि वेद अपने ही प्रमाण मे नित्य सिद्ध हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है अन्य का नहीं। जैसे सूर्य स्वप्रकाशक है और पर्वत से लेकर त्रसरेणुपर्यन्त पदार्थों का भी प्रकाशक है वैसे वेद भी स्वप्रकाशक हैं और सब सत्यविद्याओं के प्रकाशक है।[4]

ऋग यजु साम तथा अथर्व—इन चारो वेदों को ईश्वर कृत माना गया है जिसका ज्ञान बल और क्रिया नित्य है।[5] श्रीमदभगवदगीता मे आए 'ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्' का अभिप्राय भी यही है कि वेद की उत्पत्ति अविनाशी तत्त्व से ही हुई है। कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ मे प्रतिष्ठित है।[6] सृष्टि के अन्त में अन्तर्हित वेदों को अगली सृष्टि के प्रारम्भ मे अपने तप से महर्षि लोग प्राप्त कर लेते हैं। वेद कभी उत्पन्न नहीं होते और न ही वेद कभी नष्ट होते हैं।[7]

---

१ वेदान्त सूत्र १ १ ३

२ वेदान्त सूत्र (शाकर भाष्य), १ १ ३

३ वेदान्तसूत्र, १ ३ २९

४ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ४२

५ श्वेताश्वतर उपनिषद, ६ ८ २ न तस्य कार्यकरण च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराम्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकीज्ञान बलक्रिया च॥

६ श्रीमदभगवदगीता ३ १५
कर्मब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम।
तस्मात्सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

७ युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् ऐतिहासान महर्षय।
लभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥
वेदान्तसूत्र (शाकर भाष्य), १ ३ २९ सूत्र के भाष्य म उद्धृत महाभारत का श्लोक

'ऋत च सत्यञ्चाभीद्धात तपसो ध्यजायत"[1] अर्थात अत्यन्त प्रदीप्त तेज म ऋत और सत्य प्रकट हुआ।

यह कथन भी वेद म वर्णित ऋत (=पारमार्थिक) और सत्य (=व्यावहारिक) रूप तथ्यो की दृष्टि से ही कहा गया है।

लुई जैकालियर नामक पाश्चात्य वैदिक विद्वान के अनुसार यह आश्चयजनक सत्य है कि एक हिन्दुओ का ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है, जिसमे वर्णित सष्टि रचना विषयक सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की मान्यताओ के अनुरूप है।[2] यूनाइटिड स्टटस के सुप्रीम कोट ने अपने एक निणय मे ऋग्वेद के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा है कि वेद प्राचीन आचार्यों का एक एसा ज्ञान है जिस पर समय का कोई प्रभाव नही पडता। ससार के प्राचीन पिरामिडस ढह गय। दुनिया की और सभी प्राचीन वस्तुए समयानुसार जीण शीण होकर नष्ट हो गइ, परन्तु वेद आज भी अक्षुण्ण प्रवाह के रूप म आने वाली सन्तति को मार्ग दिखा रहा है। भारतीय वदिक परम्परा के अनुसार वेदो से ही वेदो का रहस्य अनावृत होता है। विश्वसभ्यता क स्थायी स्तम्भ के रूप मे यह भारतीयो का महान योगदान है। वेद के ऋषियो और कवियो के द्वारा दृष्ट सत्य भावी सन्तति के लिए एक विशेष भाषा मे निबद्ध किए गए। इसमे किसी प्रकार का कोई आक्षेप अथवा मिश्रण सम्भव नहीं। यह वैदिक ज्ञान बहुत समय तक श्रवणपरम्परा से प्राप्त होता रहा है। आज भी इसके समकक्ष व समान स्तर का कोई लिखित स्रोत उपलब्ध नही। यह प्राचीन धम और सभ्यता का असाधारण कीर्तिस्तम्भ है।[3]

वेद ज्ञान का प्रकाश व आद्य चार वैदिक ऋषि

सग के प्रारम्भ मे ईश्वर न जीवो के कल्याण के लिए जहां अनक प्रकार पदार्थों की रचना की वहीं ससार मे सभी काय कलापो के निर्वाह के लिए व सब पदार्थों से लाभ प्राप्त करने के लिए ज्ञान का प्रकाश भी किया। इसी ईश्वरीय ज्ञान को 'वेद' कहा जाता है। सृष्टि के आदि मे समस्त वाणियो की मूलरूप सष्टिगत पदार्थों के नामो को धारण करने वाली, जिस वाणी को विद्वान लोग उच्चारण करत हैं जो सबसे श्रेष्ठ और दोष शून्य होती है वह वाणी ऋषियो की गुहा (=बुद्धि) मे धारण की हुई ईश्वर की प्रेरणा स प्रकाशित होती है।[4]

---

१ ऋग्वेद, १० १९ १

२ वदमीमासा पृ० ४६

३ वैदिक प्रेमप्टस, आर०पी० पाठक के प्रारम्भ मे प्रकाशित, श्री रामपजी वाणी का लख—'ऋग्वेद एण्ड दि सुप्रिम कोट ऑफ दि यूनाइटेड स्टेटस'

४ बृहस्पत प्रथम वाचो अग्र यत प्ररत नामधेय दधाना।
यदेषा श्रेष्ठ यदरिप्रमासीत प्रेणा तदेषा निहित गुहावि।
—ऋग्वेद १० ७१ १

वेद सृष्टि के आदि में होने वाली वाणी है। इस संसार में जितनी मानव वाणियां हैं उन सबका आदि स्रोत वेद है। वेदवाणी से ही सब भाषायें निकली हैं। वेद वाणी ही सृष्टि के समस्त पदार्थों का नामधारण करती है। आदि सृष्टि में जब पदार्थों के नाम रखने की आवश्यकता होती है तब यह वाणी सहायक होती है। इसस ही सृष्टि के पदार्थों की संज्ञा तथा शब्दार्थ का निर्धारण होता है।[1] वेदवाणी सर्वश्रेष्ठ बड़ी विस्तृत व विशाल है, केवल मानव बुद्धि में आने वाले व्याकरण के संकुचित नियमों में बँधी हुई नहीं है। इसका प्रवाह नैसर्गिक है व दिव्य रूप है। दोषरहित है। सम्पूर्ण संसार के लिए एक सी है। गुहा (=बुद्धि) में निहित है तथा भगवान की प्रेरणा से प्रकाशित होती है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।[2]

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ रूप परमात्मा के द्वारा वाणी की प्राप्ति के योग्य हुए ऋषियों में प्रविष्ट हुई वेदवाणी को मनुष्य पीछे प्राप्त करते हैं। वेदवाणी का प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में पहले ऋषियों के अन्तःकरण में परमात्मा प्रकाशित करता है।

सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान मिलना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके बिना संसार की कोई व्यवस्था नहीं चल सकती। प्राणिजगत का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि चाहे पशु-पक्षी हो या मनुष्य, सबमें स्वाभाविक ज्ञान की मात्रा विद्यमान रहती है फिर भी मनुष्य का व्यवहार बिना किसी के सिखाये नहीं चल सकता। आदि सृष्टि में प्राप्त इस नैमित्तिक ज्ञान को ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान कहा जाता है। परमेश्वर ने प्रकृति से इस दृश्यमान सम्पूर्ण कार्य जगत् की रचना की और वेद ज्ञान का प्रकाश भी ऋषियों के हृदय में कर दिया।

---

१ (क) मनुस्मृति १.२१ सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥
(ख) तन्त्रवार्तिक (कुमारिलभट्ट), पृ० २०६
वेद एव हि सर्वेषामादौ सर्वदा स्थितः ।
शब्दानां ततः उद्धृत्य प्रयोगः सम्भविष्यति ॥
(ग) महाभारत (शान्तिपर्व), २३२.२५
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः ।
नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् ॥
(घ) वही, २३२.२६
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ।
शर्वर्यन्ते सुजातानामन्येभ्यो विदधात्यजः ॥

२ ऋग्वेद १०.७१.३

'पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्'।[1]

अर्थात् परमात्मा ही सबका आदि गुरु व आदि उपदेष्टा है। उसी ने वेद ज्ञान का उपदेश किया। प्रत्येक सृष्टि के आदि में वे वेद रूप परमात्मा के निःश्वासभूत मन्त्र समाधि अवस्था में विद्यमान महर्षियों की दिव्य मनीषा में स्वतः स्फूर्त होकर उन्हीं के माध्यम से, अभिव्यक्ति को प्राप्त होते हैं। इस वेदरूप अप्रतिम वाणी ने अनन्त अप्रज्ञात एवं असीम से निकल कर दिव्य दृष्टि से युक्त व परमदेव से अभिन्न ऋषियों की आन्तर गुहा में प्रवेश किया।[2] वेदों के माध्यमभूत ऋषि अज्ञानान्धकार को लाँघ चुके थे।[3] वेदों के अधिष्ठान परमव्योम से उन ऋषियों का साक्षात् सम्बन्ध स्थापित हो गया था।[4]

उन ऋषियों का ज्ञान साधारण लोगों के लिए अतीन्द्रिय था।[5] उन ऋषियों ने ब्रह्म का सायुज्य भी प्राप्त कर लिया था।[6] सर्वोत्तम ज्योति को भी वे प्राप्त कर चुके थे।[7] ऋषित्व की इस विशिष्ट अवस्था को न पाने वाले उन दिव्य मन्त्रों के दर्शन नहीं कर सकते।[8] शब्द ब्रह्म के विवर्तभूत इन ऋषियों ने स्वप्नदर्शन के समान ही मन्त्र दर्शन किया। जैसे स्वप्न में इन्द्रियनिरपेक्ष दर्शन का[9] अनुभव होता है वैसे ही ऋषियों को समाधि की उदात्त अवस्था में वेद मन्त्रों का साक्षात्कार हुआ।[10]

---

१ योगदर्शन, १ २६

२ ऋग्वेद, १० ७१ ३, तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।

३ वही, १ ९२ ६,१ १८३ ३, अतारिष्म तमसः पारमस्य।

४ वही, १ १६४ ३९, ऋचो अक्षरे परमेव्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वेनिषेदुः।
यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमेसमासते॥

५ वाक्यपदीय, १ ३८,
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचन तेषां नानुमानेन बाध्यते॥

६ तैत्तिरीय आरण्यक २ ९ २, ब्रह्मणः सायुज्यमृषयो गच्छन्।

७ ऋग्वेद १ ५ १०, अगन्म ज्योतिरुत्तमम्।

८ बृहद्देवता ८ १२९, न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्।

९ वाक्यपदीय, १ १४५, अविभागाद् विवृत्तानामभिख्या स्वप्नवच्छ्रुतौ॥

१० वाक्यपदीय १ १४५ (वृषभ देव की टीका),
विवृत्तानाम् इति—ब्रह्मैव ऋषिरूपेण विवर्तत इति स्यातम्।—स्वप्नवत्'—यथा स्वप्ने श्रोत्रनिरपेक्षम् अननुकृत बाह्यविषयं मानसं ज्ञानम् तथा तेषाम् ऋषीणां वेदे इति।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥[1]

जो सर्वशक्तिमान परमेश्वर है, उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए। रूपकालङ्कार से वेदों की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि अथर्ववेद ईश्वर के मुख के समतुल्य, सामवेद लोम के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण के समान है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि चार मूल वेदों के चार ऋषि हैं जिन पर वेद प्रकट हुए। अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन मनुष्य देहधारी ऋषियों के द्वारा परमेश्वर ने वेदों का प्रकाश किया।[2] प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन मानव ऋषियों की आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।[3] शतपथ ब्राह्मण की व्याहृत्युत्पत्तिकथनम नामक आख्यायिका में कहा गया है कि पहले प्रजापति अकेला था। उसने चाहा कि मैं सन्तान वाला होऊं। उसने तपस्या की जिससे पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यौ-तीन लोक उत्पन्न हुए। प्रजापति ने तीनों लोकों को तपाया और अग्नि, वायु, सूर्य—तीन ज्योतियां उत्पन्न हुईं। इन तीन ज्योतियों को भी तपाया गया जिससे तीन वेद उत्पन्न हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद व सूर्य से सामवेद।[4] इन तीनों वेदों से क्रमशः भूः, भुवः, स्वः नामक तीन व्याहृतियां उत्पन्न हुईं।[5] इस आख्यायिका में अग्नि, वायु और आदित्य को ज्योति माना है। ऐतरेय ब्राह्मण[6] और गोपथ ब्राह्मण[7] में इन्हें वेदों का देवता स्वीकार किया है। छान्दोग्य उपनिषद् में उपलब्ध आख्यायिका में कहा गया है कि प्रजापति ने लोकों को तपाया और उनके रस के रूप में पृथिवी से अग्नि को, अन्तरिक्ष से वायु को और आकाश से आदित्य को ग्रहण किया। इन देवताओं को तपाने से सार रूप में क्रमशः ऋग, यजु व साम

---

१ अथर्ववेद, १०.७.२०

२ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० १६
अग्निवाय्वादित्याङ्गिरामनुष्यदेहधारिजीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम् ।

३ सत्यार्थप्रकाश (शताब्दी संस्करण बहालगढ़, १६०२), पृ० २६६

४ शतपथ ब्राह्मण, ११.५.८.१.२

५ वही ११.५.८.३
तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेः ऋग्वेदः वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ।

६ शतपथ ब्राह्मण ११.५.८.१.४

७ ऐतरेय ब्राह्मण ५.३२

८ गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग, १.२६

निकले। प्रजापति के द्वारा इस त्रयी विद्या को तपाये जाने पर क्रमशः भू, भुव और स्व व्याहृतियां उत्पन्न हुई।[1]

मनुस्मृति में ऋक्, यजुष् व सामवेद का स्थान

मनुस्मृति में भी अग्नि, वायु और रवि द्वारा ऋक्, यजुष व साम इन तीन वेदों की उत्पत्ति का उल्लेख है। अग्नि, वायु और आदित्य का मानवीय ऋषि के रूप में उल्लेख नहीं है।[2] मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूकभट्ट ने अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा ने इन तीनों वेदों को अग्नि, वायु और रवि से आकृष्ट किया। पूर्वकल्प में ये वेद ब्रह्मा की स्मृति में आरूढ थे। उन वेदों को ही सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु और आदित्य द्वारा आकृष्ट किया गया।[3] इससे भी अग्नि, वायु और आदित्य का मानवीय ऋषि होना पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता। सायण के द्वारा इन तीनों को जीव विशेष कहे जाने के आधार पर ही इन्हें मानवीय ऋषि माना है।[4]

अङ्गिरा और अग्नि—दोनों ऋग्वेद में अभिन्न रूप से उल्लिखित हैं।[5] अतः दोनों भिन्न भिन्न वेदों के ऋषि कैसे? 'अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः'[6] इससे भी यही ज्ञात होता है कि अङ्गिरस नामक कोई कवि (=ऋषि)

---

१ छान्दोग्योपनिषद्, ४ १७ १-३

२ मनुस्मृति, १ २३

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं ऋग्यजुः सामलक्षणम्॥

(ख) वही, २ १५१,

अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः॥

३ वही १ २३ (कुल्लूकभट्ट टीका)

ब्रह्मा ऋग्यजुः सामसंज्ञं वेदत्रयं अग्निवायुरविभ्य आकृष्टवान्।

पूर्वकल्पे ये वेदास्त एव परमात्मभूतं ब्रह्मणः सर्वज्ञस्य स्मृत्यारूढाः। तानेव कल्पादौ अग्निवायु रविभ्यः आचकर्ष।

४ ऋग्वेद (सायण भाष्य प्रारम्भ), पूना संस्करण भा० १, पृ० ३

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्।

५ (क) ऋग्वेद, ४ ३ १५,

उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व

(ख) वही, ५ ८ ४, स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो।

देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः।

(ग) वही, १० ६२ ५, त अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे।

६ मनुस्मृति, २ १५१

था। कुल्लूकभट्ट ने टीका म लिखा है कि बालक, कवि तथा विद्वान् अङ्गिरा न अपने पितरो को, अध्यापन करते हुए, पुत्र कहकर सम्बोधित किया। इस सबसे यह सिद्ध नही हो पाता कि अङ्गिरा ने अथववेद के मन्त्रो का दशन किया। वेदो मे ब्राह्मण-ग्रन्थो मे वे अयत्र भी चारो ऋषियो का क्रमश चारो वेदो के साथ द्रष्टा रूप म सम्बन्ध का उल्लेख नही मिलता। सम्भवत अथववेद मे अथर्वा और अङ्गिरा ऋषियो के मन्त्र अधिक आन से अथववेद को अङ्गिरावेद भी कहा जाने लगा।

वेदो का विभाग व मूल वेद की सख्या

सामान्यतया ज्ञान कम उपासना और विज्ञान के भेद से क्रमश ऋग, यजु, साम और अथव नामक वेद के चार विभाग सुप्रसिद्ध हैं।[1] ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकमस्वभावम अनया सा ऋक्' अर्थात् पदार्थों के गुण कम स्वभाव की इसस स्तुति की जाती है, वह ऋक। भाव यह है कि पदार्थों के गुण कम स्वभाव बतान वाला ऋग्वेद है।

यजन्ति येन मनुष्या ईश्वर धार्मिकान विदुषश्च पूजयन्ति, शिल्पविद्या-सङ्गतिकरण च कुर्वन्ति, शुभविद्यागुणदान च कुर्वन्ति तद् यजु। जिससे मनुष्य ईश्वर से लेकर पृथिवी पयन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानो का सङ्ग, शिल्पक्रिया सहित विद्याओ की सिद्धि, श्रेष्ठ विद्या श्रेष्ठ गुणो का दान करे वह यजुर्वेद है।

जिससे कर्मों की समाप्ति द्वारा कमबन्धन छूट जाए, वह सामवेद है। जिससे सशया की निवृत्ति हो वह अथववेद है।[2] वेदो मे भी वेदा की सख्या चार ही पाई जाती है।[3] किन्तु दुग, भट्ट भास्कर, महीधरादि वैदिक विद्वाना के मतानुसार ब्रह्मा से परम्परा द्वारा प्राप्त एक वेद के चार विभाग महर्षि व्यास ने किये।[4] पुराण

---

१ (क) निरुक्त, १३ ७, यदनमग्भि शसन्ति, यजुर्भियजन्ति, सामभि स्तुवन्ति।
(ख) काठकसहिता, ४० ७ (ब्राह्मण)
ऋग्भि गसन्ति यजुर्भियजन्ति सामभि स्तुवन्ति अथवभिजयन्ति।

२ यजुर्वेदभाष्य विवरण भूमिका, पृ० ३०
स्यति कमाणाति सामवेद, थवतिश्चरतिकर्मा तत प्रतिषेध (निरुक्त) ११
१८ थर्व गतौ (चुरादि) सशयराहित्य सम्पाद्यते येनेत्यथर्वनम्।

३ ऋग्वेद १० ९१
(ख) यजुर्वेद ३१ ७, तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छन्दासि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥
(ग) अथववेद, १० ७ २० तस्मादृचो आपातक्षन
यजुर्यस्मादपाकषन सामानि यस्य लोमा यथर्वाङ्गिरसोमुखम।
स्कम्भ त ब्रूहि कतम स्विदेव स॥

४ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १ पृ०९१

साहित्य मे भी यह उल्लेख है कि द्वापर के आदि मे एक ही (चतुष्पाद) वेद चारो भागो मे विभक्त किया जाता है।[1]

प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च
तस्यवेदो महर्षिभि ।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव
समाम्नात पृथक पृथक् ॥

भर्तृहरि के इस श्लोक से भी ज्ञात होता है कि महर्षियो ने एक वेद का पृथक पृथक समाम्नान किया।[2]

पहले वेद एक ही था अथवा वेद तीन हैं अथवा एक वेद के चार विभाग किए गए—इन सब मान्यताओ का कोई स्पष्ट आधार नही मिलता। सम्भव है वे व्यास ने वेद की भिन्न भिन्न बहुत सी शाखाए बन जाने के कारण ब्राह्मण और आरण्यकादि का सम्बन्ध निश्चय कर दिया हो या वेद की कुछ शाखाओ का प्रवचन किया हो अथवा व्यवस्था की हो। व्यास जी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने चारो वेद पढे थे।[3] जहाँ भी वेद के तीन भेद माने गए हैं, वहाँ विद्या भेद से ही माने गए हैं।

'त्रयी वै विद्या ऋचो यजूषि सामानि इति।'[4] अर्थात् त्रयी नाम ऋग, यजु और साम का विद्या के कारण है।

'ऋक्' शब्द से पादबद्ध ऋचाओ को ग्रहण किया गया है। गान विधायक मन्त्रो को 'साम' कहा गया है तथा शेष मे 'यजु' का व्यवहार किया जाता है। याज्ञिक प्रक्रिया मे पारिभाषिक रीति से वेदमन्त्र तीन प्रकार के माने गए हैं।[5] मुण्डक उपनिषद् मे अपरा विद्या का परिगणन करते हुए वेदो की सख्या चार ही उल्लिखित है।[6] महाभाष्य म भी चार वेद माने गए हैं।

---

१ (क) विष्णु पुराण, ३ ३ १९ २०
(ख) मत्स्य पुराण १४४ ११

२ वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड), १ ५

३ सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास, पृ० ४९६

४ शतपथ ब्राह्मण, ४ ३ ७ १

५ (क) मीमासा, २ १ ३५, तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।
(ख) वही, २ १ ३६, गीतिषु समाख्या।
(ग) वही, २ १ ३७, शेषे यजु शब्द।

६ मुण्डकोपनिषद् १ १ ५, तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद। शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति।

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदः ।[1]

हरिवंश पुराण में भी अथर्वमन्त्रों के लिए 'छन्दांसि' पद प्रयुक्त है ।[2] ऋग्वेद के 'चत्वारिवाक् परिमिता पदानि'[3] तथा 'चत्वारि शृङ्गा'[4] आदि मन्त्रों की व्याख्या करते हुए यास्क ने चारों वेदों को ग्रहण किया है ।[5]

मूल वेद की संख्या वास्तव में चार मानना ही उचित है । यही प्राचीन परम्परा रही है ।

मूल वैदिक संहिताएं

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को निम्न मूल चार वैदिक संहिताओं को वेद माना जाता है। वर्तमानकाल में जो ग्रन्थ ऋग्वेद के रूप में प्रसिद्ध है वह 'शाकल' या 'शाकल संहिता' के नाम से जाना जाता है । ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी में कात्यायन ने इसे 'शाकलक संहिता' कहा है ।[6] सर्वप्रथम शाकल ऋषि द्वारा सम्पूर्ण ऋचाओं का अध्ययन करके संहिता रूप प्रदान किया गया । तत्पश्चात् अन्य शाखाकारों ने भी इसका प्रवचन किया । ऋक्प्रातिशाख्य के नाम से उद्धृत श्लोक में 'पठित शाकलेनादौ' से भी स्पष्ट हो जाता है कि इससे पूर्व कोई शाखा विद्यमान नहीं थी ।[7] शिशिर, बाष्कल, शाङ्ख, वात्स्य और आश्वलायन ये शाकल की शिष्य परम्परा के पञ्च आचार्य प्रसिद्ध हैं । वर्तमान में शाकल और बाष्कल ऋग्वेद की दो शाखायें उपलब्ध हैं । शाकल शाखा ही ऋग्वेद के रूप में प्रसिद्ध है ।

वाजसनेयि-माध्यन्दिन संहिता

आदित्य सम्प्रदाय और ब्रह्म सम्प्रदाय के भेद से यजुर्वेद क्रमशः शुक्ल एवं कृष्ण यजुर्वेद के नाम से जाना जाता है । महाभाष्य में यजुर्वेद की सौ शाखाओं का उल्लेख हुआ है । अब केवल तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एवं कपिष्ठल चार शाखाएं

---

१ महाभाष्य (पस्पशाह्निक), पृ० ६५

२ वैदिक सम्पत्ति पृ० ४४ पर उद्धृत ।

ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च ।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्याः सविस्तराः ॥

३ ऋग्वेद, १.१६४.४५

४ वही ४.५८.३

५ निरुक्त १३.७, चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः ।

६ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १ पृ० ११६

७ वैदिक सम्पत्ति, पृ० ४४६

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः ।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम् ॥

ही पाई जाती हैं। तैत्तिरीय संहिता तैत्तिरीया की तथा कठ और मैत्रायणी संहिताएं चरकों की मानी गई हैं। इन संहिताओं में ब्राह्मणों का काफी सम्मिश्रण है।[1] याज्ञवल्क्य ऋषि ने आदित्य से यजु का अध्ययन करके शतपथ ब्राह्मण नामक एक व्याख्यात्मक ग्रन्थ की रचना की। वाजसनेय याज्ञवल्क्य के द्वारा प्रोक्त होने के कारण इसे वाजसनेयि संहिता भी कहा जाता है।[2] वाजसनेयि संहिता के पन्द्रह भेदों में से माध्यन्दिन और काण्व—दो धाराएं ही उपलब्ध हैं। काण्व संहिता की अपेक्षा माध्यन्दिन संहिता अधिक मौलिक व पाठ-भेद से रहित मानी जाती है।[3]

इस पर माधव, उवट, महीधर एवं स्वामी दयानन्द ने अपने भाष्य लिखे।

सामवेद कौथुमी संहिता

सामवेद की एक सहस्र शाखाओं में से केवल एक कौथुमी शाखा ही अवशिष्ट है। सामवेद के मन्त्र गेय हैं अतएव सामगीति है। सामवेद के ७२ अथवा ७५ मन्त्र ही ऐसे हैं जो इतरवेदसंहिताओं में अनुपलब्ध हैं। शेष मन्त्र शेष तीन वेदों में भी पाये जाते हैं। सामवेद में १८७५ मन्त्र हैं। विषय भेद से एवं प्रकरण भेद से ये विभिन्न अर्थों के बोधक बनते हैं।[4]

अथर्ववेद शौनक संहिता

अथर्ववेद की नौ शाखाओं में से शौनक और पैप्पलाद शाखाएं ही उपलब्ध हैं। शौनक संहिता प्राचीन है व इसके पूर्ण रूप में बीस काण्ड उपलब्ध हैं। ब्रह्मा से उत्पन्न बीस ऋषियों ने बीस काण्ड देखे।[5]

स्वामी दयानन्द ने अथर्ववेद को २० काण्डों से युक्त स्वीकार किया है। सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो, तो हमारे पास आओ, आदि से पूर्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदीय के पास बीस काण्ड युक्त मन्त्रसंहिता अथर्ववेद को देख लो।[6] शौनक संहिता को अथर्ववेद[7], ब्रह्मवेद[8], अङ्गिरा

---

१ (क) वैदिक सम्पदा, प० ४४७-४८
(ख) वैदिक साहित्य, पृ० १८६

२ शतपथ ब्राह्मण, १४ ६ १ ३३
आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।

३ वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० २४१ ४६

४ सामवेद हिन्दी भाष्य, पृ० ३-५ (पूर्वपीठिका)

५ गोपथ ब्राह्मण, १ ५
ब्रह्मणो विंशति ऋषयः सम्बभूवुस्तैर्विंशति काण्डानि दृष्टानि।

६ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १४, पृ० ६१७

७ गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग), १ २६

८ अथर्ववेद, १५ ६ ८

वेद,[1] अथर्वाङ्गिरोवेद,[2] भृग्वङ्गिरोवेद[3] क्षत्रवेद[4], भैषज्यवेद[5] इत्यादि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है।

ऋग्वेद की शाकल संहिता, यजुर्वेद की वाजसनेयि माध्यन्दिन संहिता, सामवेद की कौथुमी संहिता और अथर्ववेद की शौनक संहिता—ये चार संहिताएं ही स्वामी दयानन्द की दृष्टि में ईश्वर कृत मूलवेद के रूप में मानी जाती हैं।[6]

ऋक् यजु-साम अथर्व का अभिप्राय

प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा—इन मानव ऋषियों की आत्मा में एक एक वेद का अर्थात् क्रमशः ऋक्, यजु, साम व अथर्व का प्रकाश किया।[7] स्वामी जी ने अपनी मौलिक दृष्टि से ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में यह स्पष्ट कर दिया है कि ऋग्वेद की ऋचाओं के द्वारा स्तुति की जाती है। ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया गया है जिससे उनमें प्रीति बढ़ कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके। क्योंकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के संस्कार और प्रवृत्ति का आरम्भ नहीं हो सकता और आरम्भ के बिना यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। इसलिए ऋग्वेद की गणना प्रथम की है।[8]

ऋक् शब्द ऋच स्तुतौ धातु से करण कारक में क्विप् प्रत्यय लगाकर बनता है। 'ऋच्यन्ते स्तूयते अनया इति ऋक्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिन मन्त्रों से स्तुति की जाए वे ऋक् कहलाते हैं।[9] सामान्य रूप से ऋग्वेद में छन्दोबद्ध मन्त्रों का सङ्कलन है, जिनके द्वारा स्तुति व प्रार्थना की गयी है। 'ऋक्' का अर्थ अर्चनी भी किया है।[10] 'अर्चनी' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ऋग्वेद की ऋचाओं का 'ऋक्' इसलिए कहते हैं कि उनसे देवताओं की स्तुति की जाती है।[11]

---

१ शतपथ ब्राह्मण १३ ४ ३ ८
२ अथर्ववेद १० ७ २०
३ गोपथ ब्राह्मण, ३ ४
४ शतपथ ब्राह्मण १४ ८ २४
५ अथर्ववेद ११ ६ १४
६ ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य में अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन (प्रकाशनाधीन)।
७ सत्यार्थप्रकाश (शताब्दी संस्करण) पृ० २६६
८ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३२८
९ वही पृ० ३५६
१० निरुक्त १ ८
११ निरुक्त भाष्य टीका (स्कन्द स्वामि महेश्वर विरचिता), भाग १, पृ० ७२, ऋक् अर्चनी तथा ह्यर्च्यन्ते स्तूयन्ते देवता।

यजु शब्द 'यज' धातु से निष्पन्न है। यज' धातु के अर्थ तीन हैं—देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान। इस त्रिविध अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए यजु शब्द जगत के लिए उपयोगी, सम्पूर्ण क्रिया कलापों से सम्बद्ध माना है। जैसे ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं में ठीक ठीक विचार करने से संसार में व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है जिनसे लोगों का नाना प्रकार से सुख मिले, क्योंकि जब तक कोई क्रिया विधिपूर्वक न की जाय तब तक उसका अच्छी प्रकार कोई भेद नहीं खुल सकता। यजुष शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि जगत का उपकार मुख्य रूप से दो ही प्रकार का होता है—एक आत्मा और दूसरा शरीर का। अर्थात विद्यादान से आत्मा का और श्रेष्ठ नियमों से उत्तम पदार्थों की प्राप्ति करके शरीर का उपकार होता है। इसलिए ईश्वर ने ऋग्वेदादि का उपदेश किया है कि जिनसे मनुष्य लोग ज्ञान और क्रिया काण्ड का पूर्णरीति से जान लेवें।[1] 'यजुष' शब्द केवल मात्र तथाकथित वैदिक कर्मकाण्ड से ही सम्बन्ध नहीं रखता। 'यजु' शब्द यज्ञ अर्थ का सूचित करता है। यज्ञ को 'अध्वर' भी कहते हैं। इसीलिए यजुर्वेद अध्वरवेद या अध्वर्युवेद भी कहा जाता है।

यजुर्वेद में छन्दोबद्ध मन्त्र नहीं मिलते। ऋग्वेद के ही कई छन्दोबद्ध मन्त्र कुछ परिवर्तित रूप में यजुर्वेद में पाए जाते हैं।[3]

यजुर्वेद में मन्त्रों के गद्यात्मक रूप के उपलब्ध होने से 'गद्यात्मको यजु' अर्थात् 'गद्य रूप मन्त्र ही यजु है' यह प्रसिद्धि हुई। मन्त्रों में नियत अक्षर पर अवसान न होने से 'अनियताक्षरावसानो यजु' भी कहा जाता है। सायण ने वृत्त (छन्द) तथा गीति (—गान)—दोनों से रहित प्रश्लिष्ट रूप में पठित मन्त्रों को माना है।[4]

'साम' शब्द 'साम सान्त्वप्रयोग धातु से व्युत्पन्न होता है। स्वामी दयानन्द के मत में इसका अर्थ ज्ञान और आनन्द की उन्नति है। सामवेद में मन्त्र गेय रूप और

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४८

२ वही, पृ० ३४९

३ (क) ऋग्वेद, ६ १६ १३, त्वामग्ने पुष्कराद्ध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत॥

(ग) यजुर्वेद, ११ ३२
पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।
त्वामग्ने पुष्कराद्ध्यथर्वा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य वाघत॥

४ ऋग्वेद भाष्यभूमिका (सायण), पृ० ७१

गानात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। ऋक् मन्त्रों के ऊपर गाये जाने वाले गान ही 'साम' कहलाते हैं। उदगातानामक ऋत्विज स्तुतिपरक मन्त्रों को विविध स्वरो मे गाता है। ऋक् मन्त्र ही सामगान का आधार है।[1]

'साम' की व्युत्पत्ति करते हुए सा' अर्थात 'ऋक' के साथ किया गया 'अम' अर्थात गान्धार आदि स्वर प्रधान गायन-अय किया जाता है।[2] जिन ऋचाओ पर सामगान किया जाता है उन ऋचाओ को 'सामयोनि' कहा है। इसीलिए सामवेद की सहिताओं में सामगानोपयोगी ऋचाओ का ही सकलन है।[3]

मीमासा दर्शन के अनुसार उन मन्त्रो को ऋक् कहते हैं, जिनमे प्रयोजनवश पाद (चरण) की व्यवस्था है अर्थात मन्त्र छन्दोबद्ध हैं। गानात्मक मन्त्र साम कहे गए हैं। गानात्मकता रहित और छन्दोबद्धता रहित मन्त्र 'यजु' कहे गये है। मन्त्रो की त्रिविधरूपता के कारण 'वदत्रयी' शब्द भी वेदो के लिए सुप्रसिद्ध है।[4]

अथव शब्द मगलार्थक 'थव' धातु म निष्पन्न है। अथववेद से सब मगलो का निवारण होता है।[5]

अथवन् शब्द की व्युत्पत्ति (१) अथ पूवक 'ऋ (गतौ) धातु से वनिप् प्रत्यय द्वारा, (२) थव मगलार्थक धातु से 'अच प्रत्यय व नञ समास मे और (३) अथ पूवक अवा (--निश्चल व मङ्गल शील)[6] द्वारा की गई है। अथ को अग्नि का वाचक भी कहा गया है। 'दूरे दृश गृहपतिमथयु म'[7] मन्त्र मे अग्नि को 'अथयु' कहा है। थव धातु का अथ सशय कुटिल आचरण और हिंसा मानते पर अथवा से निस्सन्देह निश्चल व हिंसारहित व्यक्ति अभिप्रेत है। अथववेद म रोगो को

---

१ (क) छान्दोग्योपनिषद १ ६ १ ऋचि अध्यूढ साम।
(ख) मीमासा (शाबर भाष्य), ७ २ १
ऋचिगीतो साम शब्दो अभियुक्त उपजयते तथा स्तोतादिविशिष्टाऋक सामा।
२ (क) ऐतरेय ब्राह्मण ३ २३
यद वै तत सा चामश्च समभवता तत सामाभवत तत साम्न सामत्वम।
(ख) गोपथ ब्राह्मण, २ ३ २०, सव नामगाँसीत।
अमो नाम साम॥
३ वदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० १६३ ६५
४ शतपथ ब्राह्मण ६ ५ ३ ४, त्रेधा विहिता वाक ।
५ निरुक्त ११ १८ थवतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेध ।
६ गोपथ ब्राह्मण क्षेमकरणदासत्रिवेदी वाराणसी, द्वितीय सस्करण, पृ० ८
७ ऋग्वेद, ७ १ १

दूर करने के लिए दुष्टनाश के लिए व सुख प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रार्थनाएं व उपाय वर्णित किए गए हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार सूत्रकाल से पूर्व अथर्ववेद का उल्लेख नहीं मिलता।[1]

स्वामी जी ने अथर्ववेद के बारे में कहा है कि इसका प्रकाश ईश्वर ने इसलिए किया कि जिससे तीनों वेदों की अनेक विद्याओं के सब विघ्नों का निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके। अनेक स्थलों पर 'थर्व' धातु का हिंसा परक मानते हुए अथर्व शब्द का अहिंसक अर्थ किया गया है।[2] ज्ञानकाण्ड के लिए ऋग्वेद, क्रिया काण्ड के लिए यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिए सामवेद और शेष अन्य रक्षाओं के प्रकाश करने के लिए अथर्ववेद का प्रयोजन है।

वेद का मूल स्वरूप एवं शाखाओं व ब्राह्मण ग्रन्थों का अवेदत्व

कुछ विद्वानों के मतानुसार केवल मन्त्रसंहितायें ही वेद हैं।[3] कुछ समय पश्चात् संहिताओं के अनेक शाखा ग्रन्थ, प्रवचन भेद और पाठभेद आदि के आधार पर प्रकट हुए। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद की ११२७ शाखाएँ वेदार्थ का व्याख्यान करने वाली हैं। वेदानुकूल होने पर ही वे प्रमाण मानने योग्य हैं।[4] वेद परमेश्वर कृत माने जाते हैं और शाखाओं का ऋषियों के द्वारा कृत माना जाता है। शाखाओं में मन्त्रों के प्रतीक लेकर व्याख्या की गई है किन्तु वैदिक संहिताओं में कहीं कोई प्रतीक लेकर व्याख्या नहीं की गई है।[5] शाखा ग्रन्थों की आनुपूर्वी अनित्य है। काठक, कालापक, मौदक व पैप्पलादक शाखा ग्रन्थ हैं।[6] पतञ्जलि वेद की आनुपूर्वी को नित्य मानते हैं।[7] शाखा ग्रन्थ ऋषि प्रोक्त हैं। महाभाष्यकार ने 'अनुवादे

---

१ वैदिककोश, डा० सूर्यकान्त, पृ० ११

२ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० २९

३ वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० १५७—वैदिकमन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० २८७
तर्थवेकादशशतानि सप्तविंशतिश्च वेदशाखा वेदार्थव्याख्याना अपि वेदानुकूलतयैव प्रमाणमर्हन्ति।

५ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७, पृ० ३०१

६ या त्वासौ वर्णानुपूर्वी सा नित्या।
महाभाष्य, ४ ३ १०१

७ स्वरो नियत आम्नाये स्ववामशब्दस्य, वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता अस्य वामशब्दस्य।
महाभाष्य ५ २ ५९

चरणानाम" के भाष्य में स्पष्ट लिखा है कि कठ कलाप के प्रवचन का अनुवाद करता है।[१]

न्यासकार ने 'तेन प्रोक्तम'[३] सूत्र का अर्थ करते हुए स्पष्ट किया है कि कठ, कलाप, पिप्पलाद आदि शाखायें वेदों के व्याख्यान रूप ग्रन्थ हैं।[४] शाखा का अभिप्राय भाग अंग इत्यादि नहीं अपितु प्रवचन अध्ययन की शैली या ऋचाओं के पाठ का क्रम है। व्याकरण महाभाष्य के वार्तिक में चरण शब्द शाखा के लिए प्रयुक्त किया गया है।[५] कैयट के अनुसार यह 'चरण' शब्द कठ आदि शाखाओं का ही वाचक है।[६] प० सत्यव्रत सामश्रमी के मतानुसार वेद की शाखाएं न तो वृक्ष की शाखाओं के समान हैं और न नदी की शाखाओं के समान। पठन-पाठन के भेद से उत्पन्न सम्प्रदाय विशेष के रूप में उन्हें स्वीकार किया गया है।[७] शाखाओं के लिए भेद, विधि, वर्त्म, वा आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[८] इन शब्दों का अर्थ खण्ड, भाग, प्रकरण अंश आदि नहीं लिया जा सकता। इससे शाखा ग्रन्थों का अवेदत्व ही सिद्ध होता है। वाक्यपदीय के अनुसार भी शाखा ग्रन्थों का मूल वेद से भेद ही स्पष्ट होता है।[९] पाठ भेद के कारण शाखा ग्रन्थों का

---

१ अष्टाध्यायी २ ४ ३

२ महाभाष्य, २ ४ ३, अनुवदते कठ कलापस्य।

३ अष्टाध्यायी, ४ ३ १०१

४ वही ४ ३ १ १, न्यास।
तेन व्याख्यातं तदध्यापितं वा प्रोक्तमित्युच्यते।

५ महाभाष्य, ४ २ १३८
चरणसम्बन्धेन निवासलक्षणो ण।

६ प्रदीप टीका, चरणा कठादय, महाभाष्य, ४ २ १३८

७ वैदिक सम्पत्ति, पृ० ४४५

८ महाभाष्य भाग १, पृ० ६
एकशतमध्वर्युशाखा सहस्र वर्त्मा सामवेद।
एकविंशतिधा बाह्वृच्य नवधा थर्वणोवेद॥

९ वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड) १ ६
भेदाना बहुमार्गत्व कर्मण्येकत्र चाङ्गता।
शब्दानामत शक्तित्व तस्य शाखासु दृश्यते॥

प्रादुर्भाव हुआ ।[1] किसी संहिता का पाठ भेद के साथ प्रवचन ही शाखा का रूप धारण करता है । कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय काठक, मैत्रायणी, काण्व इत्यादि संहिताए इसके उदाहरण हैं ।

वेदो के स्वरूप निर्धारण में यह तथ्य ध्यातव्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं माने जा सकते । ब्राह्मण ग्रन्थ तो वेद मन्त्रो की व्याख्या करते हैं । स्वामी दयानन्द ब्राह्मण ग्रन्थो को वेद मन्त्रो के व्याख्यान ग्रन्थ मानते हैं ।[2] अपनी व्याख्यान रूपता के कारण ही ब्राह्मण ग्रन्थो को पराथ माना गया है ।[3]

विधि रूप मन्त्रो की स्तुति करने वाले ग्रन्थ को शेष अर्थात ब्राह्मण कहा जाता है । तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका में आचार्य सायण ने ब्राह्मण ग्रन्थो की व्याख्यान रूपता को स्वीकार किया है ।[4] ब्राह्मण ग्रन्थो का इतिहास पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी शब्दो में भी उल्लेख किया गया है ।[5] ब्राह्मणवाक्य अथवाद के रूप में मन्त्रो का अनुवाद ही प्रस्तुत करते हैं ।[6] स्तुति निन्दा प्रकृति और पुराकल्प आदि इन्ही के भेद हैं । ब्राह्मण ग्रन्थो को वेद मानने की प्रवृत्ति का प्रबल रूप से निराकरण करने के लिए विद्वानो ने अनेक तर्क दिए हैं ।[7] वेदो के परिगणन के समय वेदो और ब्राह्मण ग्रन्थो में ब्राह्मणो का नाम परिगणित नहीं किया गया ।[8] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सात अक्षरो वाला ब्रह्म अर्थात वेद माना गया है । ऋक् (एक), यजु (दो) साम (दो) और अथव (दो) । इन विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८६
ब्राह्मणानि तु वेद व्याख्यानान्येव सन्ति, नैव वेदाख्यानीति । कुत ? "इषे त्वोर्जे त्वेति" (शतपथ १ ७ १ २) इत्यादीनि मन्त्र प्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदाना व्याख्यानकारणात् ।

२ मीमांसा, ३ १ २—शेष परार्थत्वात ।

३ तैत्तिरीय संहिता पृ० ७ (आनन्द आश्रम, पूना),
यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वात ।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८०
न ब्राह्मणाना वेद संज्ञा भवितुमर्हति । कुत ? पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद
मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति ।

५ वही, पृ० ८४ ८५

६ न्यायदर्शन, २ १ ६३

७ वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, पृ० १५६-१६६, तथा मीमांसा भाष्य, विमर्शिनी व्याख्या युधिष्ठिर मीमांसक, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ७३-७७

८ ऐतरेय आरण्यक, २ २ ७ तथा बृहदारण्यक २ ४ १०

कि शतपथ ब्राह्मण के मत में ऋक्, यजु, साम और अथर्व—ये इन चार को ही वेद माना गया है।[1] पाणिनि के अनुसार मन्त्र दृष्ट हैं तथा शाखाएं व ब्राह्मण प्रोक्त।[2] वेदों की अनुक्रमणिकाएं होती हैं ब्राह्मण ग्रन्थों की नहीं। कृष्ण-यजुर्वेद, जिनकी संहिताओं में ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित है, की अनुक्रमणी में ब्राह्मण भाग के ऋषि आदि का उल्लेख नहीं किया गया है। मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्[3] अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों वेद हैं—यह सूत्र कृष्ण-यजुर्वेद शाखा के आपस्तम्ब सत्याषाढ आदि श्रौतसूत्रों में ही उपलब्ध होता है। ऋग्वेद व सामवेद के श्रौतसूत्रों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इन संहिताओं में ब्राह्मणों का मिश्रण न होने से इस वाक्य की आवश्यकता नहीं हुई। ब्राह्मणों और शाखाओं का अवेदत्व इस युक्ति से भी सिद्ध किया जा सकता है कि व्याख्येय तथा व्याख्यानभूत ग्रन्थ दोनों भी एक नहीं माने जा सकते। यथा महाकविकालिदास कृत रघुवंश की मल्लिनाथ कृत व्याख्या रघुवंश नहीं मानी जा सकती। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यान हैं वेद नहीं।[4] वैदिक विषय से सम्बद्ध होने के कारण गौण रूप से इन ग्रन्थों पर वेदत्व का आरोप कर लिया जाता है किन्तु वस्तु तत्व की दृष्टि से मूल वेदों के रूप में मूल चार वैदिक संहिताओं को ही वेद मानना होगा।

वेद का स्वरूप विवेचन करते हुए यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से ही वेद शब्द का प्रयोग होता रहा है। वेद शब्द का यौगिक अर्थ है ज्ञान या विचार अथवा ज्ञान या विचार का साधन अथवा आधार।[5] इस यौगिक अर्थ का बोध व्याकरण व निरुक्त आदि के आधार पर होता है। किन्तु लोक में अनेक आधारों पर शब्द का लोक प्रचलित अर्थ प्रसिद्ध हो जाता है। व्यवहार की प्रमुखता के कारण वेद शब्द किन्हीं विशेष ग्रन्थों के लिए रूढ़ हो गया। उन ग्रन्थों की लोक प्रसिद्ध विशेषताओं के कारण कोषकारों ने वेद शब्द का अर्थ प्रस्तुत किया।

---

१ शतपथ ब्राह्मण, १० २ ४ ६

२ पाणिनि ४ २ ८ तथा ४ ३ १०१, १०१

३ आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, २४ १ ३१ सत्याषाढ श्रौतसूत्र, १ १ ७ कात्यायनपरिशिष्ट-प्रतिज्ञासूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र २ ६ ३, मन्त्रब्राह्मण वेद इत्याचक्षत तथा कौशिक-सूत्र, १ ३ आम्नाय पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च। (वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण तथा आरण्यक भाग, पृ० १०३)।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ८६
ब्राह्मणानि [illegible] वेदव्याख्यानान्येव सन्ति, नव वेदाख्यानीति।

५ विद ज्ञाने व विद विचारणे आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय करके वेद शब्द व्युत्पन्न होता है।

अमरकोष मे श्रुति, वेद, आम्नाय और त्रयी—ये वेद के नाम बतलाए गए हैं। ऋक् साम और यजु ये तीन वेद त्रयी कहलाते हैं।[१] वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, पवित्र ज्ञान, पवित्रशिक्षा और हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ भी है।[२] प्राचीनकाल मे त्रयी के अन्तर्गत ऋक्, यजु और साम को ही गिना जाता था, बाद म अथर्ववेद को भी गिना जाने लगा।[३] कई अथर्ववेद को भी अन्य वेदो के समान प्राचीन मानते हैं।[४] ऋक् साम और यजुष् त्रिविध मन्त्रो के कारण वेदत्रयी शब्द प्रचलित हुआ किन्तु इससे चारो वेदो का बोध हो जाता है। स्वामी दयानन्द ने युक्ति और प्रमाणो के आधार पर वेद की व्यवस्था निर्धारित करने का प्रयास किया। चारो मन्त्र सहिताए ही वेद हैं। अन्य कोई ग्रन्थ वेद नही। शाखाओ व ब्राह्मणो को वेद कहना अप्रामाणिक है। स्वामी जी के शब्दो मे वेद का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है—जो ईश्वरोक्त सत्यविद्याओ से युक्त ऋक् सहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यो को सत्यासत्य का ज्ञान होता है उनको वेद कहते हैं।[५]

वेद नित्यता तथा स्वामी दयानन्द

वेद के स्वरूप पर विचार करने के पश्चात् यह भी विचार करने योग्य है कि वेद नित्यता के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है।

व्याकरण के अनुसार नि उपसर्ग से त्यप् प्रत्यय करके नित्य शब्द की निष्पत्ति की जाती है।[६] 'नित्य' शब्द सदा कूटस्थ पदार्थों के लिए ही नहीं प्रयुक्त किया जाता अपितु आभीक्ष्ण्य (=निरन्तर, सतत) अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। यथा नित्यप्रहसित नित्यप्रजल्पित।[७] नित्य शब्द का नियत शब्द के समान अर्थ मे भी प्रयोग पाया जाता है।[८] अमरकोष के अनुसार सतत अनारत, अश्रान्त सन्तत, अविरत,

---

१ अमरकोष
श्रुति स्त्री वेद आम्नायस्त्रयीधर्मस्तुतद्विधि।
स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी॥

2 V S Apte, Sanskrit—English Dictionary

3 Monier William Sanskrit English Dictionary,
Subsequently a fourth deda was added called the Atharvaveda

४ जयन्तभट्ट, न्यायमञ्जरी, पृ० २३२

५ आर्योद्देश्यरत्नमाला, पृ० ६५

६ महाभाष्य, ४ २ १०४
त्यब नेर्ध्रुवे।

७ वही, पस्पशाह्निक, पृ० ४६

८ वही, ४ ३ १०१, यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ
वर्णानुपूर्वी सानित्या॥

अनिश, नित्य अनवरत और अजस्र ये नित्य के पर्याय हैं।[1] निरन्तर रहने वाला, चिरस्थायी, शाश्वत निर्बाध नियमित, आवश्यक प्रतिदिन, सदा इत्यादि भी नित्य शब्द के अर्थ लिए जाते हैं।[2] भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भी नित्य शब्द प्रयुक्त हुआ है।[3] वैशेषिक सूत्र में नित्य लक्षण करते हुए कहा गया है कि जो विद्यमान हो और जिसका कोई कारण न हो अर्थात जो किसी से उत्पन्न न हो वह नित्य कहलाता है।[4] वेद नित्यता के विषय में विचार करने पर ये सभी दृष्टिकोण भी मन्तव्य हैं। वेद को नित्य सिद्ध करने के लिए उनके वर्ण, शब्द और वाक्य सभी नित्य माने जायें। शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य माना जाये सृष्टि और प्रलय की बाधा भी स्वीकार न की जाए। स्वामी दयानन्द के अनुसार वेद नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं।[5] वेद नित्य हैं से अभिप्राय यह है कि ज्ञान रूप में वेद नित्य हैं और जिन शब्दों, छन्दों एवं स्वरों से वेदों को प्रकट किया गया है वे नित्य हैं।[6] नित्य वस्तु उत्पत्ति व विनाश से पृथक् होता है। पृथक्-पृथक् द्रव्यों के संयोग विशेष से उत्पत्ति होती है और उत्पन्न भाव द्रव्यों के कारणों का विनाश हो जाने से विनाश होता है। ईश्वर एक रस है उसका संयोग वियोग से सम्पर्क न होने से वह नित्य है और ईश्वर के नित्य होने से उसका ज्ञान भी नित्य है।[7] नित्य पदार्थ के गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य होते हैं।[8] ईश्वर की ज्ञान क्रिया को नित्य माना गया है।[9] ईश्वर की विद्यारूप जो वेद हैं वे

---

१ अमरकोष
सततानारताश्रान्तसन्ततविरतानिशम्।
नित्यानवरताजस्रम् ॥
२ वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोष
३ मीमांसा सूत्र १ १ १८, नित्यस्तुस्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्।
नित्यो नित्यानाम् श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ १३
४ वैशेषिक सूत्र, ४ १ १
सदकारणवन्नित्यम्।
५ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १० पृ० २६७
६ वेद तथा ऋषि दयानन्द पृ० ५७
७ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७, पृ० २०६
नित्य योरुत्पत्तिविनाशाभ्यामितरद भवितुमर्हति।
८ वहीं पृ० २०५
यन्नित्य वस्तु वर्तते तस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति।
९ वाचस्पतिमिश्र, न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका, पृ०५६७
तस्य ज्ञानक्रियाशक्ती नित्ये।

नित्य ही हैं ।[1] वेद शब्द रूप मे भी नित्य हैं । शब्द दो प्रकार का है—नित्य और काय । जो परमात्मा के ज्ञान मे स्थित शब्द, अथ, इनके सम्ब ध हैं उन्हे नित्य मानना ही उचित है । जो हम लोगो के शब्द हैं वे काय हैं ।[2]

वैदिक देवता

स्वामी दयानन्द ने मन्त्रो के देवता तत्व का विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मन्त्रद्रष्टा ईश्वर ने जिस कामना वाला होकर जिस देवता म अथ का अधिपति बनाना चाहते हुए उस प्रतिपाद्य अथ से सम्बद्ध गुण आदि का वणन किया है, वही उस मन्त्र का देवता है ।[3] निरुक्त के अनुसार जिस कामना वाला ऋषि जिस देवता मे अधिपति होने की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है उस देवता वाला ही वह मन्त्र होता है ।[4] मन्त्र का अभिधेय ही उसका देवता है ।[5] मन्त्रो मे प्रधान व नैघण्टुक (=गौण)—दो प्रकार के देवता पाये जाते हैं । देवता का वह नाम नैघण्टुक अर्थात गौण है जो अन्य देवता वाले मन्त्र म आ जाता है ।[6] 'अश्व न त्वा वारवन्तम्'[7]—'घोड़े के समान बालो वाले तुझे'—इस मन्त्र म प्रधान देवता 'अग्नि' है क्योकि प्रधान रूप से 'अग्नि' का वणन किया गया है । अश्व केवल उसके उपमान के रूप मे प्रयुक्त होने से नैघण्टुक देवता है ।

शौनक के मतानुसार ऋषि जिस जिस अथ (वस्तु) की कामना करता हुआ। प्रधान रूप से जिस जिस देवता से भक्ति पूवक स्तुति (प्राथना) करता है (कि यह

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, प० २६२
ईश्वरविद्यामयत्वेन वेदाना नित्यत्व वय

२ वही, प० ३१
शब्दोद्विविधो नित्यकार्यभेदात् । ये परमात्मज्ञानस्था शब्दाथ सम्बन्धा सन्ति त नित्याभवितुमहन्ति । येऽस्मदादीना वत्तन्ते ते तु कार्याश्च ।

३ वही, पृ० ५८

४ निरुक्त, ७ १
यत्काम ऋषिर्यस्या देवतायामार्थपत्यमिच्छन स्तुति प्रयुङ्क्ते तद्दैवत स मन्त्रो भवति ।

५ उवट, यजुर्वेद भाष्य, आरम्भ म
अर्थदेवता मन्त्रवाक्याभिधेया ।

६ तद्यदन्यदैवते मन्त्रे निपतति नैघण्टुक तत ।
निरुक्त, १ २०
नघण्टुक तदित्युच्यते, गुणभूतमित्यथ । दुर्गाचाय ।

७ ऋग्वेद, १ २७ १

वस्तु मुझे प्राप्त हो) वह उस मन्त्र का देवता होता है।[1] स्कन्द स्वामी के अनुसार जिस स्वर्ग, आयु, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की इच्छा वाला मन्त्र द्रष्टा ऋषि जिस विषयभूत देवता के प्रति, मैं अर्थ अर्थात ऐश्वर्य आदि का स्वामी बनूं इस भावना से स्तुति का प्रयोग करता है वह उस मन्त्र का देवता है।[2]

मन्त्रों के इन देवताओं को जानने में देवता लिङ्ग साधन है। मन्त्र में जिस अर्थ का कथन है उस अर्थ का वाचक शब्द उसके देवता का ज्ञापक होता है। उदाहरणार्थ 'अग्नि दूत पुरोदधे'[3] इस मन्त्र में अग्नि का वर्णन किया गया है। अग्नि इस मन्त्र का देवता है। उसका ज्ञापक अग्नि शब्द विद्यमान है यह देवता लिङ्ग है।[4]

जिन मन्त्रों में देवता लिङ्ग प्राप्त नहीं अथवा देवता वाचक शब्दों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, उन अनादिष्ट देवता वाले मन्त्रों में याज्ञिक दृष्टि से मन्त्र का सम्बन्ध जिस देवता से होगा वही देवता होगा। व्याख्याकार अपनी इच्छानुसार प्रतिपाद्य की दृष्टि से देवता की कल्पना भी कर सकता है ? जहाँ विशेष नाम आदि नहीं दिखलाई देता वहाँ यज्ञ का यज्ञाङ्ग ही देवता है। याज्ञिकों के मतानुसार जो मन्त्र यज्ञ से अन्यत्र प्रयुक्त होते हैं वे प्राजापत्य होते हैं अर्थात परमेश्वर (=प्रजापति) उनका देवता होता है। नैरुक्त इन मन्त्रों को नाराशंस अर्थात मनुष्य विषयक मानते हैं।[5] स्वामी जी ने गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदमन्त्र, यज्ञ, यज्ञाङ्ग प्रजापति नर, काम विद्वान अतिथि माता पिता तथा आचार्य इत्यादि को सामान्य कर्मकाण्ड की दृष्टि में ही देवता स्वीकार किया है।[6] स्वामी जी के अनुसार यास्क के 'नाराशंस' पद की व्याख्या यह है कि यज्ञ से अन्यत्र प्रयुक्त हुए मन्त्र

---

१ बृहद्देवता १.६
अर्थमिच्छन् ऋषिर्देवं यमाहायमस्त्विति।
प्राधान्येनस्तुवन् भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः ॥

२ यत्कामो यस्मिन्-यस्मिन् स्वर्गायुरै—स्वर्गादौकामइच्छायस्य यत्काम ऋषिर्द्रष्टा मन्त्रस्य। यस्या देवताया विषयभूताया स्तुति प्रयुङ्क्ते आधपत्यमर्थपतित्वमिच्छन् अयस्यऐश्वर्यादे पति स्यामिति तद्दैवत स मन्त्रो भवति। सातस्य मन्त्रस्य देवता।
स्कन्दस्वामिमहेश्वरविरचिता निरुक्त भाष्य टीका, तृतीय भाग, पृ० २

३ यजुर्वेद, २२।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३३

५ निरुक्त ७.४—सा नाम देवता स्यात्।

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३४

'नाराशंस' अर्थात मनुष्य विषयक हैं।[1] नैरुक्त आचार्यों के मत में अग्नि, वायु और सूर्य इन तीन देवताओं की प्रधान रूप में सत्ता स्वीकार की जाती है। यास्क ने कात्थक्य आचार्य के अनुसार 'नाराशंस' का अर्थ यज्ञ और शाकपूणि के अनुसार अग्नि लिया है।[2] यास्क ने 'नाराशंस' पद का अर्थ करते हुए लिखा है—'येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्रः। तस्यैषा भवति।[3]

आध्यात्मिक दृष्टि से सभी देवता एक महान देवता परमात्मा के नाम हैं। कर्मकाण्ड की दृष्टि से तो भिन्न भिन्न देवता हैं, किन्तु मन्त्र में मन्त्र व ईश्वर ही देवता हैं।[4]

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय देवता है। वेद मन्त्रों का विनियोज्य विषय भी देवता है और यज्ञ में वेद मन्त्र व परमेश्वर ही देवता है।[5]

मन्त्रों में जड़ पदार्थों की भी स्तुति होती है। इन्द्रियों की स्तुति भी मन्त्रों में मिलती है। इससे यह नहीं मानना चाहिए कि वेदों में जड़ की पूजा का विधान है। वेदों में उल्लिखित ३३ देवों को देवता इसलिए मानते हैं कि इनमें दान आदि गुण किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं[6] किन्तु इनकी पूजा उपासना अभीष्ट नहीं। स्वामी जी के अनुसार वेदों में जहां जहां उपासना विहित है वहां देवता रूप से ईश्वर का ही ग्रहण होता है।[7] स्वामी जी का दृढ़ मत है कि वेदों में प्राकृतिक अथवा भौतिक देवताओं की पूजा का विधान नहीं है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६०
नाराशंसामनुष्यविषया इति नैरुक्ता ब्रुवन्ति।

२ निरुक्त ८.६

३ वही, ६.१०

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ०६०
कर्मकाण्डादीन प्रति एता देवता सन्ति परन्तु मन्त्रेश्वराव
गानदवत भवत इति निश्चयः।

५ वैदिक ज्योति, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, पृ० ६०.६४

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६३.६६

७ (क) वही, पृ० ६६
वेदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र-तत्र देवतात्वेन ईश्वरस्यैव ग्रहणात्
(ख) वही, पृ० ६६
नातो वेदेषु ह्यपरा काचिद्देवता पूज्योपास्यत्वेन निहितास्तीति निश्चीयताम्॥

इस प्रकार अग्नि आदि नामों से व जड़ पदार्थों और इन्द्रियों की स्तुतियों में एक ही परमेश्वर की उपासना यहाँ की गई है।[1]

अध्यात्म दृष्टि से देवता निरुक्त में भेद का स्थान नहीं। अधिदैव पक्ष में देवता भेद [illegible] स्वीकार करना है। [illegible] सर्वानुक्रमणी बृहद्देवता तथा [illegible] के अनुसार याज्ञिक दृष्टि से विभिन्न मन्त्रों पर देवता [illegible] उल्लिखित [illegible] हैं। [illegible] और [illegible] का यह कथन उचित ही है कि देवता तत्त्व का ज्ञान [illegible] होता है। [illegible] बार [illegible] मन्त्र में देवता भेद की स्थिति का [illegible] करना होता है।

> चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
> द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
> त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
> महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥[3]

इस मन्त्र में गोपथ ब्राह्मण और यास्क के अनुसार देवता यज्ञ है। पतञ्जलि ने व्याकरण [illegible] शब्द रूप इसका देवता माना है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार अग्नि, सूर्य, जल अथवा घृतस्तुति इस मन्त्र का देवता है। [illegible] ने भाष्य करते हुए [illegible] अथवा [illegible] उसका देवता स्वीकार किया गया है। [illegible] इसका देवता माना है। स्वामी दयानन्द के मत में परमात्मा [illegible] उसका देवता है। ऋग्वेद में प्रकरण के अनुसार उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार स्वीकार किया है।[4]

स्वामी दयानन्द ने वैदिक शब्दों के यौगार्थिक और व्यावहारिक पक्ष के रूप में वैदिक शब्दों की यौगिकता उनकी अनेकार्थता और वैदिक शब्दों की उपयोगिता का सिद्धान्त बताया है। इसी आधार पर इन्द्र मरुत विष्णु इत्यादि वैदिक शब्द प्रकृति प्रत्यय के विभिन्न अर्थों के आधार पर परमेश्वर का विभिन्न [illegible] प्रकट करते हैं [illegible] विद्वान् राजा [illegible] [illegible], [illegible] आदि अर्थों को भी अभिव्यक्त करते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वामी जी यौगिक प्रक्रिया के पक्षधर हैं। उन्होंने देवता शब्द का भी यौगिक अर्थ लिया है। जैसे दिव (क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति (प्रकाश) स्तुति (गुणों का वर्णन) मद (हर्ष) मद,

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ७७

२ वैदिक ज्योति पृ० ६८

३ ऋग्वेद ४.५८.३

४ वैदिक ज्योति पृ० ६८

स्वप्न, कान्ति और गति (ज्ञान, गमन और प्राप्ति), इन अर्थों वाली दिव् धातु से निष्पन्न देव शब्द से अग्नि इन्द्र आदि व्यावहारिक देव और ईश्वर दोनों का ग्रहण होता है।[1] देव शब्द का यौगिक अर्थ लेना ही उचित स्वीकार किया गया है।[2] व्यवहारोपयोगी देवताओं में आत्मा ही मुख्य देवता है, वह महान भाग्य वाला है।[3]

देवताओं के आकार पर विचार करते हुए चार मत सम्मुख आते हैं। प्रथम यह है कि देवता मनुष्यों के ही समान हैं क्योंकि चेतन की तरह उनकी भी स्तुति की जाती है। पुरुषों जैसे अङ्गों का वर्णन किया गया है। उनके समान ही खाना पीना, सुनना आदि कर्मों व द्रव्यों का संयोग कहा गया है। द्वितीय मत में देवता पुरुषों के समान नहीं माने जाते। अग्नि वायु, आदित्य, पृथिवी, चन्द्रमा आदि दिखाई देने वाले देवता पुरुषों के समान नहीं हैं। अचेतन होते हुए भी उनमें गौण रूप से चेतन के व्यवहारों का आरोप किया है। तृतीय मत में कुछ पुरुषों के सदृश व कुछ पुरुषों से भिन्न दोनों प्रकार के देवता हैं। चतुर्थ मत में कुछ आख्यानवादी देवताओं को पुरुषों के समान ही मानते हैं, पृथिवी आदि उनके कर्म शरीर मान गए हैं।[4] स्वामी दयानन्द के मत में विग्रहवती (=शरीरधारी) और अविग्रहवता (=शरीर रहित) ये दो प्रकार के देवता हैं। मातृदेवो भव और 'त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि' आदि वचनों[5] में कथित माता पिता, आचार्य व अतिथि तो शरीरधारी हैं तथा ब्रह्म शरीर रहित देवता है। इन्हें मूर्तिमान और अमूर्तिमान् देव ही कहते हैं। इसी तरह अग्नि, पृथिवी आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र मूर्तिमान देव हैं। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ और मन्त्र—ये अमूर्तिमान देव हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बिजली व विधि यज्ञ मूर्तिमान व अमूर्तिमान् दोनों प्रकार के देव मान गए हैं।[6] शक्ति रूप सूक्ष्म इन्द्रिय व यज्ञ सम्बन्धी शब्द व ज्ञान तो अमूर्तिमान् (=निराकार) है तथा इन्द्रिय का बाह्य आकार व यज्ञ की सामग्री मूर्तिमान (=साकार) है। पारमार्थिक देव परमेश्वर निराकार माना गया है।

---

1 ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४३

२ देवो दानाद् वा, दीपनाद् वा द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा।
निरुक्त, ७ १५

३ निरुक्त, ७ ४
माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

४ निरुक्त, ७ ६ ७

५ तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली, अनुच्छेद, १० ११

६ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४५, ३४६

वदिक शब्दों की प्रतीकात्मकता व यौगिकता

वैदिक शब्दा की प्रतीकात्मकता व यौगिकता अपना विशेष महत्त्व रखती है। वैदिक ऋषि रहस्यवादी थे तथा वे देवताओ राजाओ, यजमानो, अपन नामा व जीवन की सभी परिस्थितिया के लिए प्रतीका, रूपको और सकेतो का प्रयोग करन मे अति प्रवीण थे। वदिक शब्दा के यौगिक होने का सकेत इससे भी मिल जाता है कि 'कण्व' पद के साथ ऋग्वेद मे 'तमप प्रत्यय का प्रयोग'[1] तथा 'इन्द्र' व 'अङ्गिरस' शब्दा के साथ भी तमप प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। सज्ञा वाचक शब्दो के साथ 'तमप्' प्रत्यय का प्रयोग नही किया जाता। विशेषणा के साथ ही तुलना करन म इसका प्रयोग होता है।

मन्त्र द्रष्टा ऋषियो ने शब्दो के प्रकृति प्रत्यया का अनेक स्थला पर स्वय निर्देश किया है।

अदिति—आदित्यासो अदितय स्याम[2]
अश्विनौ—अश्न तावश्विना[3]
केतपू—केतपू केत न पुनातु[4]
भानु—भानुना भात्य त[5]

विद्वान एक अग्नि रूप तत्त्व को इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुपण, यम तथा मातरिश्वा आदि नामो से सम्बोधित करते हैं।[6] इससे भी इन्द्र, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्द यौगिक अथवा योगरुढि ही सिद्ध होते हैं। प्राय सभी वेद भाष्यकार भी वैदिक शब्दो को यौगिक ही स्वीकार करते हैं। इस यौगिकता के सिद्धान्त को मानते हुए वेदो मे अनित्य इतिहास का पाया जाना भी व्यर्थलाप सिद्ध होता है।

वेदार्थ का स्वरूप

वैदिक भाषा का अनुशीलन करते हुए 'बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति'[7] यह सिद्धान्त भी ध्यातव्य है। वैदिक शब्दा की मूलधातुए अनेक अर्थों वाली हैं।

---

१ ऋग्वद, १ ४८ ४ कण्व एषा कण्वतमो
२ वही, ७ ५ २ १
३ वही ८ ५ ३१
४ यजुर्वेद ११ ७
५ ऋग्वद, १० ४५ ४
६ यजुर्वेदभाष्य (स० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु) भाग १, भूमिका पृ० ७६ ८६
७ महाभाष्य, १ ३ १,
वयाकरण सिद्धान्त परमलघुमञ्जूषा पृ० १९९-२०६

धातुओं के अनेक अर्थों से युक्त होते हुए भी मन्त्र के अर्थ का निर्धारण श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण स्थान, औचित्य, देश, काल आदि को आधार बना कर किया जाता है। वेदार्थ का स्वरूप निर्धारित करने के लिए यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि वेद की भाषा व्याकरणानुसारी ही हो यह निश्चित नहीं। अर्थ को प्रधानता देनी चाहिए, अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए मन्त्रार्थ की परीक्षा करें, शब्द संस्कार को बहुत प्रधानता न दें।[1] लौकिक व्याकरण के सभी नियम वैदिक शब्दों पर पूर्णरूप से नहीं लग सकते हैं। आचार्य पाणिनि ने बहुलं छन्दसि[2], 'व्यत्ययो बहुलम्'[3] इत्यादि सूत्रों द्वारा वैदिक भाषा को व्याकरण से अच्छी प्रकार से सङ्गत करने का प्रयास किया है। वैदिक भाषा में विकरण, सुबन्तविभक्ति, तिङन्त विभक्ति वर्ण, लिंग, पुरुष, काल आत्मनेपद, परस्मैपद, स्वर कर्तृ, यङ् आदि प्रत्यय इन सबके सम्बन्ध में बहुलता की स्थिति पाई जाती है।[4] वैदिक शब्दों के लिए तोसुन्', 'कसुन्' आदि प्रत्ययों लेट्, आदि लकारों कारक विभक्तियों व स्वरों का विधान भी किया गया है। यह वैदिक शब्दों के वैशिष्ट्य को प्रकट करता है।[5]

स्वामी दयानन्द ने तत्कालीन भाष्यों के मिथ्यात्व व लोकोपकार के लिए वेदों का सत्य अर्थ प्रकट करने हेतु यौगिक प्रक्रिया को अपनाया। स्वामी जी ने वेद मन्त्रों का आधार लेकर कई नवीन निरुक्तियाँ प्रस्तुत कीं। उदाहरणार्थ 'शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये'[6] मन्त्र में स्वामी जी ने 'आप' शब्द का सर्वव्यापक ईश्वर अर्थ किया है। अथर्ववेद के 'यत्र लोकाश्च '[7] मन्त्र में 'आपो ब्रह्म जना विदु' कहा गया है।[8] इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'आप' शब्द ब्रह्म का वाचक है। इसी प्रकार कई स्थलों पर नवीन निर्वचन भी किए हैं। उदाहरण—'वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगत् स

---

१ न संस्कारमाद्रियेत अर्थनित्य परीक्षेत।
निरुक्त २ १

२ अष्टाध्यायी २ ४ ३, ३ ४ ७३, २ ४ ७६, ३ २ ८८, ५ २ १२२, ६ १ ३४, ७ १ ८ ७ १ १०, ७ १ १०३, ७ ३ ६७, ७ ४ ७८

३ वही, ३ १ ८५

४ महाभाष्य, ३ १ ८५

५ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ६६६ ७१४

६ ऋग्वेद, १० ९ ४

७ अथर्ववेद १० ४ ७ १०

८ विद्वांस आपो ब्रह्मणो नामास्तीति जानन्ति।
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६४४

विष्णु ईश्वर:'।[1] निरुक्त में विष्णु की निरुक्ति इस प्रकार की है— अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति, विष्णुर्विशतेर्वा ।[2] तात्पर्य दोनों का समान ही है।

वेद के शब्द यौगिक हैं तथा उनमें विशेष्य-विशेषण भाव का बहुत महत्त्व है। यदि यह स्पष्ट न हो कि विशेष्य क्या है और विशेषण क्या है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

वेदों में कई स्थलों पर आलङ्कारिक वर्णन भी उपलब्ध होता है। 'पिता दुहितुर्गर्भमाधात्'[3] मन्त्र में पिता आदि शब्दों का लौकिक (=लोक प्रसिद्ध) अर्थ सङ्गत नहीं बैठता। यहाँ 'पिता' का अर्थ है—पर्जन्य (=मेघ), 'दुहिता' का अर्थ है—पृथिवी तथा 'गर्भ' का अर्थ है जल समूह। मेघ पृथिवी में जल का सेचन करता है—यह अर्थ बना। यहाँ रूपक अलङ्कार है। यौगिक प्रक्रिया से पिता आदि शब्दों का उपर्युक्त अर्थ सम्भव है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी ऐसा रूपक मिलता है।[4] निरुक्त में भी इस मन्त्रांश का समान अर्थ किया है।[5]

स्वामी जी ने वेद मन्त्रों का अर्थ करते हुए समस्त वैदिक शब्दों की यौगिकता व प्रतीकात्मकता व्याकरण के नियमों का अनुसरण अर्थानुसारी निर्वचन, विशेषण-विशेष्य भाव व आलङ्कारिकता आदि तथ्यों पर ध्यान दिया है तथा सिद्ध किया है कि वेद केवल मन्त्रपरक नहीं हैं। वेदों में व्यावहारिक व पारमार्थिक सभी ज्ञान विद्यमान हैं।

मन्त्रों का त्रिविध अर्थ

वेदों के भाष्यकार, हरिस्वामी उवट भट्टभास्कर, आत्मानन्द, आनन्दतीर्थ, जयतीर्थ राघवेन्द्रयति शत्रुघ्न, वरदपाल आदि वेद मन्त्रों का आध्यात्मिक आधिदैविक व आधिभौतिक त्रिविध अर्थ स्वीकार करते हैं। आत्मा परमात्मा का निरूपण करने वाला अर्थ आध्यात्मिक प्राकृतिक तत्त्वों का प्रतिपादक अर्थ आधिदैविक तथा यज्ञ आदि कर्मकाण्ड विषयक अर्थ आधिभौतिक कहलाता है। यास्क ने वेद के अर्थ ज्ञान की आवश्यकता और महत्त्व पर विचार करते हुए लिखा है कि यज्ञ का ज्ञान, देवता का

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३५२

२ निरुक्त, १२ १८

३ ऋग्वेद १ १६४ ३३

४ ऐतरेय ब्राह्मण ३ ३३ ३४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६०७ ६०८

५ निरुक्त ४ २१

तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः ।

ज्ञान और आत्म सम्बन्धी ज्ञान वेदवाणी का अर्थ है।[1] अभ्युदय रूप धर्म से अभिप्राय होने पर यज्ञ ज्ञान पुष्प व देवता ज्ञान फल है। प्रथम पुष्प तत्पश्चात फल होता है। यज्ञ ज्ञान भी प्रथम देवता के लिए किया जाता है अतः 'याज्ञ' पुष्प व 'दैवत' फल है। निःश्रेयसरूप धर्म से अभिप्राय होने पर 'याज्ञ' व 'दैवत' दोनों पुष्परूप होते हैं। दैवत पुष्प व अध्यात्म फल कहा गया है। याज्ञ भी दैवत के लिए होने के कारण 'दैवत' में ही याज्ञ का अन्तर्भाव कर दिया गया है। निरुक्त के अनुसार वेद मन्त्रों के तीन प्रकार के आध्यात्मिक (= अध्यात्म विषयक), आधिदैविक (= दैवता या प्रकृति के तत्वों के प्रतिपादक) तथा अधियज्ञ (= यज्ञ विषयक) अर्थ होते हैं। दुर्गाचार्य के मतानुसार जहां इन अर्थों में से तीनों, दो या एक भी अर्थ सम्भव हो तो वह अर्थ कर लेना चाहिए।[2] पण्डित ब्रह्मदत्तजिज्ञासु जी के मत में सब मन्त्रों का तीनों प्रक्रियाओं में अर्थ होता है। महापुरुष दयानन्द ने वेदार्थ की इस लुप्त त्रिविध प्रक्रिया का पुनरुद्धार किया।[3] ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्वामी जी ने लिखा है कि इस वेद-भाष्य में जिस-जिस वेद मन्त्र का पारमार्थिक तथा व्यावहारिक अर्थ श्लेषादि अलंकारों के द्वारा सप्रमाण होना सम्भव है, उन उनके दो-दो अर्थ दर्शाये जायेंगे। किसी भी मन्त्र के अर्थ में ईश्वर का त्याग नहीं है अर्थात आध्यात्मिक अर्थ तो हर एक मन्त्र का है।[4] भर्तृहरि ने महाभाष्य की टीका करते हुए 'इदंविष्णुर्विचक्रमे' मन्त्र के विष्णु शब्द को अनेकार्थक बताया है तथा तीनों अर्थों में सङ्गति लगाई है।[5] सम्पूर्ण वैदिक मन्त्रों के तीनों प्रकार

१ निरुक्त १ २०

(क) अथ वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले दैवताध्यात्मे वा।

(ख) यज्ञ परिज्ञानं याज्ञम् देवता परिज्ञानं दैवतम्, आत्मन्यधि यद् वर्तते तद् ध्यात्मम्। स एष सर्वोपि मन्त्र ब्राह्मणराशिरेव त्रेधा विभक्तः। ऋजुवर्थव्याख्या (दुर्गाचार्य), निरुक्त १ २०, पृ० ६०

२ ऋज्वर्थ व्याख्या निरुक्त २ ८ पृ० १२६

तत्रैवं सति लक्षणोद्देशमात्रमेवे तस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते, क्वचि-च्चाध्यात्माधिदैवाधियज्ञोपदर्शनायम्। तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रया सर्व एव ते योज्याः, नात्रापराधोऽस्ति।

३ यजुर्वेदभाष्य विवरण पृ० ६३

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ५८३ ८४

अत्र वेदभाष्ये यान्योऽस्ति—अयात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिकव्याव-हारिकयोः द्वयोरर्थयोः श्लेषालङ्कारादिना सप्रमाणं सम्भवोऽस्ति तस्यद्वौ द्वावर्थौ विधास्येते। नैवेश्वरस्यकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्त त्यागो भवति।

५ यजुर्वेदभाष्य विवरण भूमिका, पृ० ६२

यथा इदं विष्णुर्विचक्रमे इत्यत्र एक एव विष्णुशब्दः अनेकशक्ति सन्निधि दैवतमध्यात्माधियज्ञ परमात्मनि च नारायणे च यज्ञे च तया शक्त्या प्रवर्तते। एवं च कृत्वा वर्कोमासकृदित्यवप्रहभेदेऽपि भवति मन्त्रमपि प्रवृत्ता मास गर्ज्ञो गृहते बहु मा सकृदिति।

के अर्थों को यास्क ने वाणी का पुष्प और फल स्वीकार किया है।[1] दुर्गाचार्य के अनुसार वैदिक शब्द अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं। व्यक्ति की बुद्धि के अनुसार ये वैदिक शब्द अनेक अर्थों को प्रकट करते हैं।[2]

यह त्रिविध मन्त्रार्थ का सिद्धान्त पूर्णरूपेण युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ मन्त्रों का त्रिविध अर्थ किया जा सकता है। किन्तु जिन मन्त्रों में परमेश्वर अथवा परमतत्त्व का ही वर्णन है उन मन्त्रों में तो त्रिविध अर्थ असम्भव है।

ऋग्वेद व यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में सूर्य देव से बुद्धि को सत्कार्यों में प्रेरित करने की प्रार्थना है।[3] एक अन्य मन्त्र में अग्नि से मेधा की प्रार्थना की गई है।[4] इन मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ ही सम्भव है।

स्वामी दयानन्द ने मन्त्रों का पारमार्थिक और व्यावहारिक द्विविध अर्थ प्रस्तुत किया है। यज्ञ यागादि अनुष्ठानों का तो ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मीमांसा श्रौतसूत्र आदि में पहले ही विस्तार से वर्णन किया हुआ है। किसी भी मन्त्र का अर्थ करते हुए ईश्वर का अत्यन्त त्याग नहीं मानना चाहिए क्योंकि कार्य रूप संसार में निमित्त कारण ईश्वर सर्वाङ्ग रूप से व्याप्त है।[5] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार समस्त वेदों का पर्यवसान अध्यात्मविद्या में है। यह दृष्टिकोण स्वामी जी ने अपनी प्रतिभा से जिस दृढ़ता से रखा, उससे वैदिक अर्थों की शैली सचमुच बहुत लाभान्वित हुई।[6] महर्षि अरविन्द ने भी स्वामी जी के वेदभाष्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वेदों का ऐसा पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थ, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के उपकारक भावों विविध विद्याओं के निर्देश के साथ साथ परमतत्त्व प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है अन्यत्र दुर्लभ है। दयानन्द के इस विचार में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों से सम्बद्ध ज्ञान उपलब्ध है कोई उपहासास्पद या काल्पनिक अंश नहीं। वेदों में कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्य भी हैं जिन्हें आज का विज्ञान अभी तक नहीं जान सका है। स्वामी जी ने वैदिक ज्ञान की गम्भीरता के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति से काम न लेकर वास्तविक स्थिति का ही उल्लेख किया है।[7]

---

१ निरुक्त दुर्ग वृत्ति भाष्य भाग ३ पृ० ३६ ३७
२ वही (दुर्गाचार्य कृत टीका) भाग १ पृ० ६४
३ ऋग्वेद ३ ६२ १०, यजुर्वेद ३ ३५
४ यजुर्वेद ३२ १३।
५ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३५५
६ ऋत ज्योति डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, भूमिका पृ० ग
७ वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ५७

There is nothing fantastic in Dayananda s idea that Veda

and range of the vedic wisdom

यह तो सर्वविदित ही है कि वेद अतिप्राचीन कृति है। भाषा की कठिनाई और विचारों की गम्भीरता के कारण वेद को समझना और भी अधिक जटिल बन गया। वैदिक पर्यालोचन और वैदिक रहस्यों का अन्तस्तल तक प्रवेश अत्यन्त दुष्कर कार्य है किन्तु इस समस्या के समाधान का प्रयास भी प्राचीन काल से किया जाता रहा है। वेदों की जटिलता, दुर्बोधता और सूक्ष्मता को दूर करने के लिए ही तो वेदों पर भाष्य करने की आवश्यकता अनुभव की जाती रही। भाष्यों के द्वारा ही तो जाना जाता है कि वेदों में किन किन विषयों का वर्णन है। वेदों की शिक्षाएं मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हैं। इसलिए वेदों पर भाष्य करके व उसका सरल व्याख्यान करके इस वैदिक ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है।

वेदज्ञ ऋषि मुनियों द्वारा स्थापित सत्यभाष्य की कसौटी यह है कि वेदार्थ कहीं न कहीं यज्ञ में काम आता हो। समस्तवेदवाणी यज्ञ के द्वारा ही स्थान पाती है। वेदार्थ बुद्धि के विपरीत न हो। वेदार्थ तर्क से सिद्ध किया गया हो। तर्क से गवेषणा करके अर्थ निश्चित करने वाला ही सही वेदार्थ है।[1] स्वामी दयानन्द की दृढ धारणा है कि अर्थ ज्ञान सहित वेदाध्ययन करने से ही परमोत्तम फल प्राप्त होता है।[2] वेदों को पढ़कर और समझकर श्रेष्ठ गुण, कर्म और आचरण का ग्रहण करके सबका उपकार करना ही सर्वश्रेष्ठ है। अर्थज्ञान के बिना पढ़ने का तो निषेध किया गया है।[3]

(ख) यजुर्वेद के भाष्यकार तथा स्वामी दयानन्द

यजुर्वेद अथवा यजुष संहिता शुक्ल और कृष्ण दो रूपों में उपलब्ध है। शुद्ध मन्त्र भाग से युक्त शुक्ल तथा मन्त्र और ब्राह्मण भाग से मिश्रित कृष्ण यजुर्वेद प्रसिद्ध हुआ।[4] विंटरनित्स महोदय के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद से पुराना है।[5] किन्तु शुद्ध शुक्ल यजु का अशुद्ध कृष्ण से पूर्व का मानना उचित प्रतीत होता है क्योंकि वेदों में भी शुद्ध मन्त्र रूप ही प्राप्त होता है। पौराणिक कथानुसार वैशम्पायन के द्वारा

---

१ वैदिक सम्पत्ति, पृ० ४६२

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ६५३

अर्थज्ञानेन सहैव पठने कृते परमोत्तम फलम् प्राप्नोति।

३ वही, पृ० ६५४

अर्थज्ञानेन विनाऽध्ययनस्य निषेधः क्रियते।

४ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०१

(क) शुक्लं कृष्णमिति द्वेधा यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्॥

(ख) बुद्धिमालिन्यहेतुत्वात् तद्यजुः कृष्णमीर्यते।
व्यवस्थित प्रकरणं तद्यजुः शुक्लमीर्यते॥

५ प्राचीन भारत का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४१

लापरवाही के कारण ब्रह्महत्या कर दी गई। इस पाप को दूर करने के लिए उसने तित्तिरि और याज्ञवल्क्यादि शिष्यों को प्रायश्चित्त करने के लिए कहा। तब से याज्ञवल्क्य ने कहा कि अल्पशक्ति वाले ब्राह्मणों को प्रायश्चित्त का कष्ट देने की आवश्यकता नहीं। मैं ही एकाकी प्रायश्चित कर लूगा। गुरु वैशम्पायन को शिष्य याज्ञवल्क्य की यह घमण्ड वाली बात अच्छी न लगी और याज्ञवल्क्य को पढ़ाया गया वेद छोड़ कर जाने की बात कह दी गई। याज्ञवल्क्य ने भी गुरु वैशम्पायन से पढ़े हुए वेद को वमन (= उल्टी) रूप में निकाल दिया। तित्तिरि आदि शिष्यों ने गुरु आज्ञा से वह वमन किया हुआ वेद खा लिया। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य ने भी सूर्य नारायण की स्तुति से पुन नवीन 'अयातयाम यजु' को प्राप्त कर लिया।[1] यहा 'अयातयामयजु' से अभिप्राय है— अप्रयुक्त तथा प्रभाव युक्त नवीन यजु। 'तानि यजूंषि बुद्धिमालिन्य हेतुत्वात् कृष्णानि जातानि'—महीधर द्वारा यजुष सहिता के भाष्यारम्भ में उद्धृत यह वचन इस कथा पर ही आधृत है।[2]

महीधर विद्यारण्य स्वामी शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार द्विवेद गङ्ग आर्यविद्या सुधाकर के रचयिता भट्ट यज्ञेश्वर चरण व्यूह के टीकाकार महीदास एव प॰ युधिष्ठिर मीमासक शुक्ल एव कृष्ण के भेद से यजु सहिता को दो रूपों में स्वीकार करते हैं। याज्ञवल्क्य प्रोक्त शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयि सहिता कहा जाता है तथा यही माध्यन्दिन सहिता भी कहलाती है। कण्व ऋषि प्रोक्त काण्व सहिता का महाराष्ट्र प्रान्त में अधिक प्रचार है।[3] स्वामी दयानन्द जी ने शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन सहिता को ही मूल यजुर्वेद स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि प्राचीन सम्प्रदाय में भी इसकी बहुत प्रतिष्ठा रही है तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रामाण्य से भी इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। यजुर्वेद के पाठ का प्रारम्भ भी शुक्लयजुर्वेद के प्रथम मन्त्र से ही होता है।[4]

पतञ्जलि कृत महाभाष्य में यजुर्वेद की सौ शाखाओं का उल्लेख मिलता है।[5] प॰ भगवद्दत्त ने माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद के १७ भेद तथा काण्व शुक्ल यजुर्वेद के ११ भेद गिनाए हैं।[6] वर्तमान काल में तैत्तिरीय मैत्रायणी कठ और कापिष्ठल कठ—ये

---

१ भागवत पुराण, विष्णुपुराण व अग्नि पुराण।
२ वैदिक सिद्धान्त मीमासा पृ॰ २३६
३ वैदिक साहित्य, बलदेव उपाध्याय, पृ॰ १८५
४ (क) गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग १ २६
 (ख) वायु पुराण, २६ २०
५ वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग पृ॰ २०२-२०४
६ व्याकरण महाभाष्य (कीलहार्न), प्रथम भाग पृ॰ ६
 एक शतमध्वर्युशाखा।

चार शाखाएं ही पाई जाती हैं। शुक्ल-यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ को शतपथ नाम दिया गया है। १०० अध्यायों से युक्त होने के कारण ही इसे शतपथ कहते हैं। इसके ज्ञान से व्यक्ति याज्ञिक क्रिया का विद्वान् बनता है।[1] ब्रह्म अर्थात् वेदमन्त्रों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ ही ब्राह्मण कहलाते हैं। यज्ञ सम्बन्धी कर्म-काण्ड की व्याख्या करना इन ब्राह्मणों का मुख्य विषय है।[2] विधि अर्थात् यज्ञों के विधान सम्बन्धी विवरण, अपवाद अर्थात् याग में निषिद्ध वस्तुओं की निन्दा व यज्ञ के लिए उपयोगी द्रव्यों की प्रशंसा हेतु अर्थात् विधि के साथ कारण का निर्देश, निर्वचन अर्थात् शब्दों की व्युत्पत्ति करना आदि कई विशेषताओं से ये शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ भरे हुए हैं।[3]

शुक्ल-यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता के मुख्य सात भाष्यकार हुए। आचार्य शौनक, हरिस्वामी, उवट, गौरधर, रावण, महीधर एवं स्वामी दयानन्द ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मन्त्रों का भाष्य व व्याख्यान किया। लगभग ६०० ईस्वी पूर्व आचार्य शौनक ने शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता के ३१ वें अध्याय पर अपना मौलिक भाष्य लिखा। यह अध्याय पुरुष सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाष्य की विशेषता यह है कि इसमें पहले पदच्छेद तत्पश्चात् अन्वय, समास और मन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की गई है। भाष्य करते हुए याज्ञिक और आध्यात्मिक अर्थों का समन्वय कर दिया है। शब्दों के यौगिक अर्थों का भी दृष्टिगत रखा गया है। योगी भी प्रत्नीप्त होते हैं अत: वे देव' कहे गए हैं।[4] ऋक् प्रातिशाख्य व बृहद्देवता के रचयिता आचार्य शौनक महर्षि तथा आश्वलायन के गुरु भी माने गये हैं।[5]

६३८ ई० में हरिस्वामी ने यजुर्वेद पर अपना भाष्य लिखा। जम्मू के प्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में हरिस्वामी के मतानुकूल यजुर्वेद के रुद्राध्याय का पद पाठ सुरक्षित है। ये हरिस्वामी स्कन्द स्वामी के शिष्य माने जाते हैं।[6]

संवत् ११०० में शुक्ल यजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार उवट हुए। यह महाराज भोज का शासन काल था। इन्होंने भाष्य करते हुए याज्ञिक पद्धति का ही मुख्यतया

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, पृ० १४-१५

२ (क) वैदिक साहित्य बलदेव उपाध्याय पृ० २३९ २४१

(ख) तैत्तिरीय संहिता भाष्य, १ ५ १

३ शाबर भाष्य, २ १ ८

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु ॥

४ ऋग्वेद प्रातिशाख्य, स० डा० वीरेन्द्र कुमार भूमिका, पृ० २९

५ वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० २६१

६ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २, पृ, ६५

अनुसरण किया है।[1] प्रसंगवश कहीं कहीं मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है।[2] एक स्थान पर 'अग्नि' का सर्वप्रकाशक परमात्मा अर्थ किया है। यास्क विरचित निरुक्त और निघण्टु के भी उद्धरण दिये गए हैं। यजुष सर्वानुक्रमणी के उद्धरण कहीं पर भी प्राप्त न होने से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ उवट से अर्वाचीन है। उवट अपने नाम से काश्मीरी अनुमानित होते हैं। इन्होंने ऋक् प्रातिशाख्य, यजु प्रातिशाख्य तथा ऋक् सर्वानुक्रमणी ग्रन्थों पर भी अपना भाष्य लिखा।

संवत् १३५० के लगभग गौरधर का काल माना जाता है। इन्होंने ऋजु-भाष्य नामक यजुर्वेद का भाष्य लिखा। बड़ौदा से उपलब्ध वाजसनेयिसंहिता भाष्य-कोष में ऋजु व्याख्यान भाष्य का उल्लेख मिलता है। स्तुति कुसुमाञ्जलिस्तोत्र प्रणेता काश्मीरी कवि जगद्धर भट्ट के ये पितामह थे। इन्हें अनेक सिद्धान्तों का ज्ञान था। शास्त्ररूपी समुद्र के ये पारदर्शी थे।[3]

विक्रमपूर्व १६वीं शती में दाक्षिणात्य पण्डित रावण ने यजुष शाखा पर रावण भाष्य लिखा। रुद्र प्रयोग दर्पणकार मदनमाथ ने रुद्रभाष्य करने में रावण भाष्य से साहाय्य प्राप्त किया। ध्रुव पण्डित के लेखानुसार सायण भाष्य आधिदैविक अर्थ प्रस्तुत करता है तथा रावण का अर्थ आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करने वाला है।[4]

संवत् १६४२ के लगभग महीधर ने शुक्ल यजुर्वेद पर वेद दीप भाष्य की रचना की। इसमें मन्त्रों का यज्ञों में विनियोग बताते हुए यज्ञ और यागों की विविध प्रक्रियाओं के द्वारा मन्त्र और मन्त्रांशों को सम्बद्ध किया गया है तथा यज्ञपरक व्याख्या की गई है। महीधर कृत भाष्य उवट कृत भाष्य का अनुकरण व विस्तार प्रतीत होता है। महीधर के द्वारा कात्यायन श्रौतसूत्र की प्रतीकों का यथा स्थान निर्देश कर दिया गया है। कहीं कहीं आध्यात्मिक अर्थों का संकेत भी किया है।[5] अनेक मन्त्रों के अर्थों में अश्लीलता भी प्रकट होती है।[6]

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २, पृ० ६६
२ तमु पाप्मा वृथा, मनो व पाप्मो वृथा इति श्रुतिः।
   मनसा हि मुक्त पश्या उपलभ्यते।
   यजुर्वेदभाष्य (उवट) पृ० १६३
३ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २ पृ० ९९ १००
४ वही, पृ० ७४ ७६
५ वही, पृ० १०० १०२
६ (क) यजुर्वेद, २३ १६ ४४
   (ख) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषय, पृ० ३३६ एवमेव महीधरेण महानर्थरूप वेदार्थदूषणम् वेददीपाख्यम् विवण (विवरणम्) कृतम् तस्यापीह दोषादिग्दर्शनवत्प्रदर्श्यते।

१९वीं शताब्दी में (संवत १९३९) स्वामी दयानन्द ने शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य प्रस्तुत किया। इस भाष्य की विशेषता यह थी कि स्वामी जी ने इस भाष्य में वेद मन्त्रों के आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक तथा व्यवहारोपयोगी अर्थ को दृष्टिगत रखा। महीधर, उवट, सायण आदि भाष्यकार तथा पाश्चात्य वैदिक-विद्वान भी वेदों के परमार्थ अर्थात् आध्यात्मिक अर्थ तक नहीं पहुँच पाए। वेदार्थ की गहराई तक पहुचने वाली दृष्टि तथा वैदिक भाषा की यौगिकता के प्रति आस्था का उनमें नितान्त अभाव था। अज' का केवल बकरा मानने में ही उनकी विचार बुद्धि की इति श्री हो गई थी। किन्तु स्वामी दयानन्द ने वेदों का परम अर्थ ब्रह्म माना। व्यावहारिक अर्थ के रूप में मन्त्रों में विविध विद्याओं के संकेत को प्रस्तुत किया। स्वामी जी द्वारा प्रस्तुत समाजोपयोगी व लोककल्याणकारी वेदार्थ सर्वथा मौलिक व अपूर्व है।

नवीन भारत के निर्माताओं में स्वामी दयानन्द का विशिष्ट स्थान है। भारत को रूढ़िवादिता व पराधीनता के गर्त से निकाल वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त वैदिक ज्ञान-विज्ञान से पुनः परिचित कराकर स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर करने वाले स्वामी दयानन्द ही थे। सन् १८२४ में गुजरात राज्य में मोरवी प्रदेशान्तर्गत टंकारा ग्राम के एक औदीच्य सामवेदी ब्राह्मण श्री करसन जी भाटा के घर स्वामी जी का जन्म हुआ। मूलशंकर इनका बचपन का नाम था।[1] दण्डी स्वामी विरजानन्द जी से स्वामी दयानन्द ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य इत्यादि ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा अपने गुरु की प्रेरणा प्राप्त कर स्वामी जी अपनी विद्वत्ता और निर्भयता के साथ वेदों के प्रचार और समाज सुधार के कार्य में लग गये।[2]

स्वामी दयानन्द वेद को अपने जीवन का मार्गदर्शक अपनी आन्तरिक सत्ता का नियम और अपने बाह्य कार्य का प्रेरणा स्रोत समझते थे। इतना ही नहीं, वे इसे शाश्वत-सत्य की वाणी मानते थे जिसे मनुष्य मात्र अपने ईश्वर विषयक ज्ञान के लिए तथा भगवान व मानव साथियों के प्रति अपने सम्बन्धों के लिए उचित और दृढ़ आधार बना सकता है। महर्षि अरविन्द के शब्दों में स्वामी दयानन्द के आकार में मानो निरा बल ही मूर्तिमान होकर पहाड़ के रूप में खड़ा हो गया है, नग्न और सुदृढ़ ठोस चट्टान का पुञ्ज विशाल और उत्तुङ्ग। इसकी हरी भरी चोटी पर खड़ा सरोवर का वक्ष आकाश से बातें कर रहा है। शुद्ध, प्राणदायी और उर्वरक जल का एक

---

१ वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग-२ पृ० ८५

> व्योमोमाहीन्दुभिरभियुते वैक्रमे वत्सरे य ।
> प्रादुर्भूतो द्विजवर-कुले दक्षिणे देशवर्ये ।
> मूलेनामौ जननविषय शङ्करस्यापरेणा—
> बराति प्रापत् प्रथमवयसि प्रोदितः सज्जनानाम् ॥

२ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित, प्रथम भाग, पृ० ६६

सुविशाल जल प्रपात मानो उसके इस शक्ति पुञ्ज में से ही फूट फूट कर निकल रहा है जो इस सारी घाटी के लिए पानी का ही क्या, स्वयं स्वास्थ्य और जीवन का भी झरना है।[१]

जब वेदों का ह्रास हो रहा था तथा सर्वत्र वेदों की नितान्त उपेक्षा की जा रही थी। वेदों का यथार्थ व वैज्ञानिक स्वरूप समझने की ओर वैदिक पण्डितों का भी ध्यान नहीं जा रहा था। वेदों की पठन-पाठन परम्परा वेदों के जन्म-स्थल भारत में ही लगभग समाप्त हो रही थी। कहीं कहीं पर सायणाचार्य, महीधरादि पौराणिक भाष्यकारों के अनुसार वेदार्थ पढ़ाये जाते थे। किन्तु इस वेदार्थ को पढ़कर वेदों पर लोगों की रही सही श्रद्धा भी लुप्त प्रायः हो रही थी। जनसाधारण की यह धारणा दृढ़ हो जाती थी कि वेद पशु हिंसा, असंगत, ऊटपटांग व अश्लील बातों से ही भरे हुए हैं। ऐसे भीषण अन्धकार के युग में स्वामी दयानन्द ने अपने सत्यवेद भाष्य का प्रकाश किया। वेदाध्ययन की ऐसी दयनीय स्थिति में स्वामी दयानन्द का वेद-भाष्य वेदाध्ययन के क्षेत्र में एक महान प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हो रहा है। अब तक वेदों पर अनेक भाष्य किये जा चुके हैं। उपलब्ध भाष्यों में स्वामी जी का भाष्य ही ऐसा भाष्य है जिसके आधार पर वेद सभी दृष्टियों से सर्वाङ्गीण व मानवोन्नति साधक सिद्ध हो सकता है। स्वामी जी ने अपने भाष्य में व्यावहारिक अर्थों का भी प्रदर्शन किया। जो अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत आदि देवता वाचक शब्द प्राचीन भाष्यकारों की दृष्टि में केवल आधिदैविक देवताओं को ही ये तथा नैरुक्त जिन्हें प्राकृतिक शक्तियों के द्योतक ही मानते थे, स्वामी दयानन्द जी के भाष्य में वही शब्द राजा प्रजा सेनापति, न्यायाधीश, पति-पत्नी गुरु शिष्य आदि के वाचक बने। यह महर्षि दयानन्द की ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही परिणाम था। अपने वेद भाष्य द्वारा स्वामी जी ने यह सिद्ध कर दिया कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।[२]

वेदार्थ के क्षेत्र में स्वामी जी के योगदान को महामनीषी योगी अरविन्द ने भी स्वीकार किया है। वेद व्याख्या के सम्बन्ध में यह निश्चित विचार है कि वेद की जो भी पूर्ण एवं अन्तिम व्याख्या होगी स्वामी दयानन्द को इस बात का गौरव दिया जायेगा कि वे सत्य अर्थ के प्रथम अन्वेषक हैं। वेदार्थ के क्षेत्र में युगों से प्रचलित भ्रान्तियों तथा अज्ञान से उत्पन्न अस्पष्टताओं में प्रथम बार उनकी प्रतिभा ने सत्य का उद्घाटित किया। दयानन्द ने वेदार्थ के दरवाजे की वास्तविक पर विलुप्त चाबी को पा लिया तथा वेदार्थ के प्रति-बद्ध स्रोत पर लगी मोहर को तोड़कर दूर किया।[३]

---

१ महर्षि दयानन्द, प० जगन्नाथ वेदालंकार द्वारा अनूदित, पृ० १
२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ११६ २२७
३ बंकिम तिलक एण्ड दयानन्द, पृ० ७१ से
हरविलास शारदा के ग्रन्थ, लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती, पृ० ३११

अपने वेद भाष्य के विषय में स्वामी जी की अपनी सम्मति को उद्धृत करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। ब्रह्मा से लेकर याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, जैमिनी पर्यन्त विद्वान ऋषियों ने जो ऐतरेय शतपथादि भाष्य रचे थे, पाणिनि, पतञ्जलि, यास्कादि ने जो वेद व्याख्यान और वेदांग निर्मित किये थे, उनकी सहायता लेते हुए मैं अपने भाष्य में सत्य अर्थ का प्रकाश कर रहा हूँ, कोई बात अप्रामाणिक अथवा कपोल कल्पित नहीं।[1]

वेद विषय से सम्बन्धित और वेदांग विषयक अपने मौलिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने हेतु स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का निर्माण किया। इस भूमिका का महत्व इस बात से विदित हो जाता है कि भूमिका को लिए बिना वेद भी न दिए जाने का विज्ञापन स्वयं स्वामी जी द्वारा निकलवाया गया था।[2] ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेदोत्पत्ति, वेदनित्यता, वेद संज्ञा, वेदों में ब्रह्म विद्या, सृष्टि-विद्या, पृथिव्यादिलोक-भ्रमणविषय इत्यादि अनेक विषयों का विवेचन किया गया है। भूमिका को समझने के पश्चात ही वेदभाष्य को समझा जा सकता है।

१७ जनवरी, १८७८ को शतपथ, निरुक्त आदि प्रमाणों से युक्त यजुर्वेद भाष्य प्रारम्भ किया गया। भारतीय संवत् के अनुसार पौष सुदी १३ गुरुवार संवत १९३४ को यजुर्वेद भाष्य प्रारम्भ होकर मार्गशीर्ष कृष्ण १ संवत १९३९ तक यह पूर्ण हो गया इसका पूर्ण प्रकाशन स्वामी जी के जीवित रहते न हो सका।[3]

स्वामी जी की यजुर्वेद भाष्य शैली

स्वामी जी की यजुर्वेद भाष्य शैली की कई विशेषताएँ सामने आती हैं। एक तो भाष्य करते हुए प्रमाण स्वरूप शतपथ, निरुक्त आदि के सन्दर्भ दिए गए हैं। मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। मन्त्र ऋषि, मन्त्र देवता व मन्त्र के छन्द का भी क्रमशः उल्लेख किया गया है। मध्यम ऋषभ आदि स्वरों के निर्देश के साथ साथ मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को संस्कृत व हिन्दी में लिख दिया गया है ताकि संस्कृतज्ञ और असंस्कृतज्ञ दोनों वेद मन्त्रों को रुचि पूर्वक समझने का प्रयत्न करें।[4]

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३७०

२ भ्रान्ति निवारण, पृ० १३७

३ ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास, पृ० १४२-४३ व १४७-४८

४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १.१

इषे त्वेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापति ऋषिः । सविता देवता ।
इषेत्वा इत्यारभ्य भाग' पर्यन्तस्य स्वराड्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ।
अग्रे सवस्य ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।
अथोत्तमकर्मसिद्ध्यर्थमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते ॥
ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में उत्तम-उत्तम कामों की सिद्धि के लिए मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, इस बात का प्रकाश किया है। १

मन्त्रों का संहिता पाठ, पद-पाठ, संस्कृत पदार्थ, मन्त्रान्वय व संस्कृत में भावार्थ करने के पश्चात् हिन्दी के अन्वयानुसार पदार्थ व भावार्थ भी दिया गया है।[1]

स्वामी जी द्वारा किया गया वेद भाष्य संस्कृतज्ञों के लिए जितना लाभकारी है उतना ही हिन्दी जानने वालों के लिए भी। स्वामी जी ने हिन्दी को आर्य-भाषा से सम्बोधित किया है। यद्यपि तत्कालीन हिन्दी भी अनेक स्थलों पर अस्पष्ट प्रतीत होती है। तथापि इस प्रयास की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वामी जी के वेदार्थ को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक सरल हिन्दी में वेद मन्त्रार्थ प्रस्तुत करना अभी शेष है। वेद भाष्य की रचना कुछ विशिष्ट मान्यताओं का आधारभूत मानकर की गई। स्वामीजी द्वारा लिखित चतुर्वेद विषय सूची और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का दृष्टिगत रखते हुए उन मान्यताओं का स्पष्ट रूप से हृदयङ्गम किया जा सकता है। स्वामी जी ने वेदों का अपौरुषेय माना है। वेद परम मनीषी एवं स्वयम्भू ऋषि के काव्य हैं। पर ब्रह्म के निश्वास के रूप में प्रादुर्भूत होने के कारण वेद नित्य है। अनुक्रमणी आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं, रचयिता नहीं। वेद में आख्यान रूप में प्राप्त होने वाली कथाएं आलंकारिक प्रतीकात्मक है। वेद में प्रयुक्त सभी नाम रूढ नहीं हैं अपितु धातुज हैं। वेदों में निर्दिष्ट अग्नि, वायु इन्द्र मरुत आदि देवता वाचक पद आध्यात्मिक दृष्टि में परम तत्त्व के द्योतक हैं। वेद की सारी वाक्य रचना अति शुद्ध है एवं बुद्धि पूर्वक की गई है। इसमें अश्लीलता वगैरह मांस भक्षण आदि व्यर्थ की बातों का उल्लेख नहीं है। ऋषि मुनियों एवम् आचार्यों ने आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से मन्त्र व्याख्या की है। इसे स्वीकार करने पर भी स्वामी जी ने मन्त्रों का पारमार्थिक और व्यावहारिक अर्थ प्रस्तुत किया है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेद भाष्य के प्रयोजन का स्पष्ट करते हुए स्वामी जी ने स्वीकार किया है कि वे आर्यों मुनियों की सनातन व्याख्या रीति को अपनाते हुए वेद मन्त्रों के अर्थ को प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे आधुनिक भाष्यों और टीकाओं द्वारा वेद को दूषित करने वाले सारे दोष नष्ट हो जायँ। उनके भाष्य के द्वारा वेदों का सनातन सत्यार्थ सामने आ जाएगा।

प्रस्तुत अध्याय में स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदार्थ का स्वरूप स्पष्ट कर दिया गया है तथा साथ ही यजुर्वेद के भाष्यधारा का विवरण देते हुए स्वामी दयानन्द को एक तेजस्वी प्रतिभासम्पन्न भाष्यकर्त्ता स्वीकार किया है। निस्सन्देह विषय प्रवेश की दृष्टि से इसका ज्ञान आवश्यक है। वेद और वेदार्थ का स्वरूप समझकर ही आगे वैदिक देवताओं का विवेचन सम्भव है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३६०

२ वही, पृ० १-२

द्वितीय अध्याय

इन्द्र एव मरुत् शब्दो की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

प्रस्तुत अध्याय म 'इन्द्र' और 'मरुत' शब्दो की व्युत्पत्ति व निवचन एव अभिप्राय पर प्रकाश डाला गया है। वेदा म इन्द्र देव का वाचक 'इन्द्र' शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बहुत म सूक्त इन्द्र की स्तुति म प्रयुक्त दिखाई देते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथववद के बहुत से मन्त्रो के दवता इन्द्र व मरुत् हैं। इन्द्र का मरुत के साथ अटूट सम्बन्ध है। इन्द्र मरुता के बल स ही वत्र वध करते हैं।[1] इन्द्र और मरुत् के गूढ सम्बन्ध का दृष्टिगत रखते हुए इन्द्र और मरुत का युगल रूप मे वणन किया गया है।

(क) 'इन्द्र' शब्द की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

'इन्द्र' यह शब्द सवप्रथम ऋग्वेद म प्रयुक्त हुआ है। तत्पश्चात यजुर्वेद आदि विस्तत वदिक वाङ्मय म भी इसका प्रचुर मात्रा मे प्रयोग मिलता है। सस्कृत के लौकिक साहित्य म भी यह भूरिश प्रयुक्त होता रहा है। किसी भी शब्द की अन्तर्भावना व आत्मा की खोज के लिए व्युत्पत्ति शास्त्र व निवचन शास्त्र का आश्रय लेना अनिवाय है। वैदिक शब्दो पर तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। व्याकरण व निरुक्त क अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थ भी वदिक शब्दो का विश्लेषण करके पूणतया व्याख्यान करत हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य म इसका भिन्न-भिन्न अर्थों म प्रयोग किया है और इसके क्या-क्या पारमार्थिक एव व्यावहारिक अथ किए हैं इसके सूक्ष्म विवचन स पूव व्याकरण शास्त्र के आधार पर इन्द्र का व्याकरणिक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

व्याकरण शास्त्र म पाणिनि, कात्यायन एव पतञ्जलि की मुनित्रयी सुप्रसिद्ध है। प्रथम मुनि आचाय पाणिनि न 'इन्द्र' शब्द को उणादि सूत्र स निपातित सिद्ध किया है।[2]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ५
इन्द्र वै वृत्र जघ्निवास नास्तृतति मन्यमाना सर्वादेवता अजहु । त मरुत एव स्वापयोनाजहु । प्राणा वै मरुत स्वापय । प्राणा हैवैन त नाजहु ।

२ उणादि सूत्र २ २९
ऋज्रेन्द्राग्रवज्र...

'इदि' धातु से कर्ता में रन् प्रत्यय व नुमागम करने पर 'इन्द्र' शब्द व्युत्पन्न होता है।[1] इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'इन्द्र' का अर्थ हुआ—'इन्दति परमैश्वर्यवान भवति इति इन्द्र' अर्थात् जो सर्वोच्च ऐश्वर्य सम्पन्न है वह इन्द्र है। ऐश्वर्य का स्वामी ईश्वर अथवा ऐश्वर्य का उपभोक्ता जीव—दोनों रूपों में वह इन्द्र है। शासन करना भी ऐश्वर्य का द्योतक है अतः शासन कर्ता शासक भी इन्द्र पद वाच्य है। चराचर जगत का शासक ब्रह्म और मण्डल का शासक सूर्य वायु व विद्युत्, पृथिवी का शासक राजा राष्ट्र का शासक राष्ट्राध्यक्ष या सेनापति, देह का शासक जीवात्मा, प्राण व मन—इन सभी को इन्द्र शब्द से अभिहित किया गया है।[2]

यास्क मुनि प्रणीत निरुक्त ग्रन्थ में इन्द्र का निर्वचन करते हुए कहा गया है कि इन्द्र का इन्द्र नाम इसलिए है कि वह इरा अर्थात् व्रीहि आदि अन्न का विदीर्ण करता है उसका दो भागों में विभाजन करता है वर्षा करके व्रीहि के बीज को गीला करके अंकुरित कर देता है। 'इरादार' होने के कारण 'इन्द्र' कहा जाता है। वर्षा से 'इरा' अर्थात् अन्न का देता है। 'इरादाता' होने के कारण 'इन्द्र' कहलाता है। अन्न को वर्षा द्वारा धारण करता है। अतः 'ईराधारयिता' भी इन्द्र कहा जाता है। वर्षा से अन्न के बीज का तथा भूमि का फाड़ता है अतः इन्द्र कहलाता है। 'इन्द्र' अर्थात् सोम के लिए दौड़ता है। सोम पान में रमण करता है। प्राणियों को अन्न से दीप्तियुक्त करता है। शरीर में विद्यमान होने से प्राणों से संदीप्त करता है। यही 'इन्द्र' का इन्द्रत्व है। इस जगत का कर्ता है अतः 'इन्द्र' कहा जाने लगा।[3]

औपमन्यव आचार्य के मतानुसार सब का साक्षी व दर्शनीय होने से इन्द्र है। 'इन्दति' धातु से भी इन्द्र शब्द निष्पन्न होता है। शत्रुओं का विनाश करने वाला, भय द्वारा भगाने वाला याजक व यजमानों का आदर करने वाला होने से इन्द्र है।[4]

---

१ इदि परमैश्वर्ये भ्वादिगण

२ उणादिकोषवृत्ति (दयानन्द), २ २६, पृ० ३०
इन्दति परमैश्वर्यवान भवतीति इन्द्र
समर्थोऽन्तरात्मादियो योगावा।

३ निरुक्त, १० १०८ पृ० १०
इन्द्र इरा दृणाति इतिवा इरा ददाति इतिवा इरा दधातीतिवा इराम् दारयत इति इरा धारयत इतिवा इन्दवे द्रवतीति वेन्दौ रमते इति वेन्धे भूतानि इति वा। तद्यदेनं प्राणैः समैन्धस्तादिन्द्रस्य इन्द्रत्वादिति विज्ञायते। इदं करणादित्याग्रायणः।

४ वही, पृ० १०२
इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः। इन्दतेर्वैश्वयकर्मणः इन्द्रञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा दरयिता च यज्वनाम्।

बृहद्देवताकार ने इन्द्र के बारे मे लिखा है कि रश्मियो के आश्रय से पृथिवी के रसों को खींचकर वायु के साथ आकाश मे विचरण करता है तथा पृथिवी पर बरसता है। अत 'इन्द्र' कहलाता है।[1]

इस पृथिवी लोक मे 'अग्नि' देवता है, अन्तरिक्ष म 'इन्द्र और 'वायु तथा द्युलोक म सूर्य' ये तीन देवता ही ऋग्वेदादि म भी प्रधान हैं।[2]

यजुर्वेद भाष्य विवरण म पण्डित ब्रह्मदत्तजिज्ञासु ने इन्द्र की व्युत्पत्ति 'इदि परमैश्वर्ये' धातु से 'रन्' प्रत्यय द्वारा मानी है।[3]

वाचस्पत्यम' मे भी इसे 'इदि' धातु से रन' प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न माना है तथा द्वादशादित्यो के मध्य परिगणित किया है।[4]

---

१ बृहद्देवता, १ ६८-५९

रसान् रश्मिभिरादाय वायुना म गत सह।
वपर्यप च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मत ॥
अग्निरस्मिन्नथन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च।
सूर्यो दिवीति विज्ञेयास्तिस्र एवेह देवता ॥

२ निरुक्त, ७ २ तिस्र एवेह देवता इति नैरुक्त।

३ इति परमैश्वर्ये (भ्वा० ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्र (उणादि सूत्र २ २८) इति कर्तरि रन् प्रत्यय। इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति ञ्नित्यादिर्नित्यम (अ० ६ १ १९७) इत्याद्युदात्तत्वम। विभक्त्यनुदात्तत्वे शेषनिघात आद्युदात्तस्वरसिद्धि। एवमित्र तद्वत् भुत्ये पूर्ववत॥ देवराजस्तु स्वनिघण्टु भाष्ये 'रक' प्रत्ययमाह। स च लेखक प्रमाद एवेत्यनुमिमीमहे वेदेऽन्तोदात्तस्येन्द्र शब्दस्य सर्वथा सत्त्वात्, रन् प्रत्ययस्यानुवृत्तनाच्च॥ ३०२ २७।

यत्तु सायणाचार्या (तै० स० भाष्ये, पृ० ४६) इन्द्र शब्द वृषादित्वाद् (अ०६ १ २०३)आद्युदात्तमाह स तु तथा स्ववचोविरोध एव। ऋग्भाष्य १ २ ६, इन्द्र शब्दस्य व्युत्पत्तिपक्षे रन प्रत्ययान्तन ञ्नित्यादिर्नित्यम (अ० ६ १ १९७) इत्याद्युदात्तत्वप्रतिपादनात्॥ उणादयो व्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि इत्यस्मिन पक्षेऽपि ग्रामादीना च (फि०सू०३८) इति सूत्रेनेष्ट स्वरसिद्धौ वृषादीनामित्यन॰ र्थकमेवति नास्त्यविदितमेतद व्याकरणानाम।

यजुर्वेदभाष्य विवरण पृ० १६

४ वाचस्पत्यम पृ० ६४०

इन्द्र (पु०) इदि रन्। परमैश्वर्ये।
'इन्द्रो मायाभि पुरुरूपम् ईयते' श्रुति।
द्वादशादित्यमध्ये आदित्य भेदे। ते च आदित्या काश्यपेनोत्पादिता।
धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणोऽशुभगस्तथा।
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशम स्मत।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यज ॥

सर मोनियर विलियम द्वारा सम्पादित संस्कृत इगलिश शब्द कोश के अनुसार 'इन्द्र' को भारतीय जुपिटर कहा गया है। यह वर्षा का देवता है। अपने वज्र से यह अंधकार रूपी दुष्टा को विजित कर लेता है। उसके काय मानवता के लिए कल्याणकारी हैं।[1]

ब्राह्मण ग्रथो आरण्यको और उपनिषदो में इन्द्र विषयक एव मरुत्-विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होती है। इन्द्र एवम मरुत के अभिप्राय एवम् स्वरूप को समझने के लिए इसका विवेचन विशेष रूप से अपेक्षित है।

शतपथ ब्राह्मण मे विविध प्रसगो मे कई ढगो से इन्द्र का निर्वचन किया गया है। जो यह पुरुष के मध्य मे प्राण रहता है वह इन्द्र है। वह उन अन्य प्राणो के मध्य मे रहकर इन्द्रिय द्वारा दीप्त करता है। दीपन के कारण उसे इन्द्र कहते हैं। इन्द्र को ही परोक्ष रूप मे 'इन्द्र' कहते हैं। क्योकि विद्वान लोग परोक्ष अर्थ की कामना वाले होते हैं। वे सात प्राण ही दीप्ति युक्त होने पर अनेक पुरुषो को उत्पन्न करते हैं।[2]

ऐतरेय आरण्यक मे भी आत्मा के प्रकरण मे इन्द्र शब्द का निर्वचन प्राप्त होता है। आत्मा ने इसी पुरुष ब्रह्म को व्याप्त देखा। इसको मैंने देखा इसलिए उसका नाम 'इदन्द्र' हुआ। यह 'इदन्द्र' शब्द ही परोक्षतया 'इन्द्र' बन गया।[3] कुछ पाठ भेद से इसी प्रकार की इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति एतरेय उपनिषद मे भी प्राप्त होती है।

स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्श मिति। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम। तमिदन्द्र सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवा।[4]

बृहदारण्यकोपनिषद मे दायी आख मे विद्यमान पुरुष को ही इन्द्र कहा गया है।[5] याज्ञवल्क्य ने जनक से कहा—जो यह दायी आख मे पुरुष है, वह इन्ध है। इन्ध

---

1 Indra the God of the atmosphere and sky the Indian Jupitor, Pluvius or Lord of rain he fights against and conquers with his thunderbolt
Sanskrit English Dictionary Sir Monier William p 166

२ शतपथ ब्राह्मण ६ १ १ २
स योऽय मध्ये प्राण । एष एवेन्द्रस्तानेष प्राणान मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्ध इन्धोह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्ष परोक्षकामा हि देवास्त इद्धा सप्त नाना पुरुषा न सृजन्त।

३ ऐतरेयआरण्यक २ ४ ३, पृ० १२० २१
स एतमेव पुरुष ब्रह्म ततमपश्यत् । इदमदर्शमितीं तस्मादिद न्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्र सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवा ।

४ ऐतरेयोपनिषद् १ ३ १४

को ही परोक्ष रूप से 'इन्द्र' कहते हैं क्योकि देव लोग परोक्ष अर्थ से प्रेम करने वाले और प्रत्यक्ष अर्थ से द्वेष करने वाले होते हैं।[1]

ऐतरेय ब्राह्मण मे इन्द्र को मध्यम स्थान का अर्थात् अन्तरिक्ष का देवता माना गया है। वह इन्द्र माध्यन्दिन सवन का प्रमुख देव है।[2] रुद्र तथा मरुद्गण इन्द्र के सहायक हैं।[3] सायण ने मरुतो के साथ इन्द्र के उत्क्रमण का भी वर्णन किया है।

'देवासुरा सयत्ता आसस्ते देवा मिथो विप्रिया आसस्तेऽन्योन्यस्मै ज्येष्ठ्यायानिष्ठमाना पचधा व्यक्रामन। अग्निर्वसुभि सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भि वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देव।[4]'

ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार इन्द्र माध्यन्दिन सवन का देवता है। इन्द्र इस लोक का विजय करके स्वर्ग लोक मे सभी कामनाओ को पूर्ण करके अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। महाभिषेक से युक्त इन्द्र इस लोक के साम्राज्य को जीत लेता है तथा स्वर्ग लोक का भी राजा बन कर रहता है।

'स एतेन महाभिषेकेणाभिषिक्त इन्द्र सर्वा जितीरजयत सर्वाँल्लोकानविन्दत सर्वेषा देवानाम् श्रैष्ठ्यमतिष्ठा परमतामगच्छत साम्राज्य भौज्यम् स्वाराज्य वैराज्य पारमेष्ठ्यम राज्य माहाराज्यम् जित्वा अस्मिन् लोके स्वयभू स्वराडमृतोऽमुष्मिन् स्वर्ग लोके सर्वान् कामान आप्त्वामृत समभवत्।'[5]

ऐतरेय ब्राह्मण के मरुत्वतीय सूक्त मे आता है कि इन्द्र वृत्र को मार कर, मैं सम्भवत इसे मार नहीं पाया, इस प्रकार डरता हुआ अनुष्टुप् वाक तक चला गया और वह वहा सो गया। अलग-अलग सभी प्राणी उसका अन्वेषण करने लगे। पितरों

1 बृहदारण्यकोपनिषद्, ४ २ २
स होवाच। इन्धो वै नामैष योऽय दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्त वा एतमिन्ध सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणैव परोक्षप्रिया इव हि देवा प्रत्यक्षद्विष ॥

2 ऐतरेय ब्राह्मण, ६ ५ ३
स होवाचेन्द्रो वै मध्यन्दिन।
ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३० ३० ४, पृ० ७७५
माध्यन्दिनसवन इन्द्रदेवताक।

3 ऐतरेय ब्राह्मण, १ ४ २४
स देवा अबिभयुरस्माक विप्रेमाणमविदमसुरा आभविष्यन्तीति ते व्युत्क्रम्या मन्त्रयन्ताग्निर्वसुभिरुद्क्रामदिन्द्रो रुद्रैर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः इति।

4 ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ४,७ २४,पृ० १०३

5 ऐतरेय ब्राह्मण, ८ ३ १४

ने यागारम्भ से एक दिवस पूर्व ही उसे प्राप्त कर लिया। किन्तु देवता एक दिवस पश्चात ही उसे प्राप्त कर सके। लोक म भी देखा जाता है कि पहले दिन अर्थात अमावस्या म पितरो के कार्य व एक दिन बाद अर्थात् प्रतिपदा मे देवो के काय किए जाते हैं। सोम का अभिषेक करके देव इन्द्र को अभिषव प्रदेश की ओर ले आए और मन्त्र सुनाया। मन्त्र सुनकर इन्द्र प्रकट हो गया।[1]

इस वैदिक आख्यान के सायण भाष्य मे कहा गया है कि इन्द्र वृत्र नामक दैत्य को मारकर दूर चला गया क्योंकि इन्द्र को उसकी मृत्यु मे सन्देह था। इसे अथवाद अर्थात कल्पित आख्यान माना है। इन्द्र का अथ जीवात्मा है जो वाक के रूप मे विशेषतया व्यक्त होता है।[2]

वैदिक वाङ्मय म इन्द्र को यज्ञ का प्रमुख देवता स्वीकार किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण म भी यज्ञ के साथ इन्द्र का सम्बन्ध पाया जाता है। 'ऐन्द्रो वै यज्ञ इन्द्रो यज्ञस्य देवता'।[3]

प्रधान देव के रूप मे इन्द्र तथा गौण देवो के रूप मे अग्नि, वरुण आदि देवताओ को भी प्रदर्शित किया गया है।[4] सोमयाग का प्रमुख देव इन्द्र है। प्रात माध्यन्दिन

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ३, २, १५,
इन्द्रो वै वृत्र हत्वा नास्तृपीति मन्यमान परा परावतो गच्छत् स परमामेव परावतमगच्छदनुष्टुब् वै परमापरावद वाग वाग् वा अनुष्टुप स वाच प्रविश्याशयत्त सर्वाणि भूतानि विभज्यान्वैच्छस्त पूर्वेद्यु पितरो विदन्नुत्तरमहर्देवा तस्मात पूर्वेद्यु पितृभ्य क्रियत उत्तरमहर्देवान यजन्ते ते अभिषुण्वन्तमभिषुणवमिव तथा वाव न आशिष्ठमागमिष्यतीति तथेति तेऽभ्यषुण्वस्त आत्वा रय यथोत य 'इत्यैवैनमावतय त्विद वसो सुतमध' इत्यथर्वेभ्य सुतकीर्त्यामाविरभवत् इन्द्रनदीय ऐदिहीत्यर्वेवत मध्य प्रापादयतागतन्द्रेण यज्ञेन यजते सेन्द्रेण यज्ञेन राध्नोति य एव वेद।
२ ऐतरय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३ २ १५ पृ० ३२२-२६।
३ (क) ऐतरेय ब्राह्मण, ५ ५ ३४।
(ख) वही ६ ३ ९-१०।
४ (क) यज्ञस्वैन प्रियमेधा इन्द्र सत्राचा मनसा।
सोऽभूत सोमै सत्यमद् वा॥ ऋग्वेद, ८ २ ३७।
(ख) वही २ १४ ८।
अध्वय वो भरत सामयाग्नेश्रुष्टीवह तोनश्या ब्रदिन्दे।
गभस्तिपूत भरत श्रुताये द्राय सोमयज्यवो जुहात॥
(ग) वही, ५ ५ ११।
स्वाहामग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्य।
स्वाहा देवेभ्योहवि॥

और सायंकाल के मंत्रों में इन्द्र का एकाधिकार है। इन्द्र के लिए पुरोडाश के ग्यारह ग्यारह कपालों से हवि का निर्णय विधान किया गया है।

"तदाहुरनुसवनं पुरोडाशं नवपेदष्टाकपालम् प्रातः सवन एकादशकपालं माध्यंदिनसवने द्वादशकपालम् तृतीयसवनेनथाहिसवनानां रूपं तथा छन्दसामिति तत्त्वनादृत्यमैन्द्रा वा एते सर्वे निरूप्यन्ते यदनुसवनम् पुरोडाशस्तस्मात्तानेकादशकपालनव निवपेदा।"[1]

शतपथ ब्राह्मण में भी अनेक स्थलों पर इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता[2] अर्थात् इन्द्र ही यज्ञ का देवता है। ऐसा कथन आया है। शांखायन ब्राह्मण में भी ऐन्द्रो हि यज्ञक्रतु[3] वचन कहा गया है।

ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र की सेना का इन्द्र की स्त्री के रूप में वर्णन भी मिलता है। सेना रूपी स्त्री का पति होना ही इन्द्र का सेनापतित्व है। इन्द्र की प्रासहा 'वावाता' नाम की स्त्री है।[4] मध्यम जाति की राजरानी वावाता, उत्तम जाति की महिषी तथा अधमजाति की परिवृक्ति कही जाती है।[5] वावाता अर्थात् सेना का पति होने से इन्द्र शब्द का अर्थ सेनापति उपपन्न होता है। वावाता का श्वसुर 'क' अर्थात् प्रजापति कहा गया है।

पूर्वमस्येन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामेति येयमुक्ता सेयं लोकव्यवहारे सेना वै युद्धार्थोद्यत सेनारूपेण वर्तते। इन्द्र जाजाया सेनाभिमानित्वात्। तच्च शाखान्तरे समाम्नातम् 'इन्द्राणी वैसेनाया देवता' इति। को नामक इत्येन नाम्ना युक्त प्रजापतिस्तस्या इन्द्र जायाया श्वशुर प्रजापतेरिन्द्रोत्पादकत्वात्। तथा चान्यत्र श्रूयते 'प्रजापतिरिन्द्रमसृजतानुजावरं देवानाम्'। इति।[6]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, २ ३ २३ ।

२ शतपथ ब्राह्मण, १ ४ १ ३३, १ ४ २ ४, २ ३ १ ६७, २ ४ १ ११, ३ ३ ४ १८ ।

३ शांखायन ब्राह्मण, ५ ५, २८ २ ।

४ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ २२ ।
ते देवा अब्रुवन्नित्य वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामास्यामेवेच्छामहा इति ।

५ वावाता मध्यमजातीया । राज्ञो हि त्रिविधास्त्रिय तत्र उत्तमजातेर्महिषीति नाम । मध्यमजातेर्वावातेति, अधमजाते परिवृक्तिरिति ।
—ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य, १२ ११ २२, पृ० ३४४

६ वही, १२ ११ २२, पृ० ३४६ ।

इन्द्र का महाभिषेक

देवताओं ने इन्द्र का क्षत्रिय रूप इन्द्र का महाभिषेक किया और सम्राट पद पर आसीन कर दिया।

अथेन्द्रो वै देवतया क्षत्रिया भवति त्रैष्टुभश्छन्दसा, पंचदश स्तोमेन, सामो राज्यन बन्धुना ।[1]

तभी से क्षत्रिय राजाओं के महाभिषेक में भी इन्द्र के समान ही अभिषेक काम प्रारम्भ हो गया। इस लोक में ऐन्द्रमहाभिषेक कहा जाता है।[2] इसमें यह भी सिद्ध हो जाता है कि क्षात्र शक्ति का एक दिव्य व उत्कृष्ट रूप इन्द्र भी है।

ऐतरेय ब्राह्मण में माध्यन्दिन सवन का देवता इन्द्र है तथा मरुद्गण उसके सहायक है।[3] इन्द्र का वृत्र को मारकर परम परावत अनुष्टुप वाक में प्रविष्ट होना भी पाया जाता है। वृत्र हन्ता इन्द्र का मरुतो के साथ स्थायी सम्बन्ध है। इन्द्र वृत्र का मारनेर विश्वकर्मा बन जाता है। द्वादशाह क्रतु में द्वितीय दिन का देवता भी इन्द्र बनता है।[4]

ऐतरेय ब्राह्मण में उक्त गौन शेप आख्यान के अनुसार इक्ष्वाकुवंशी राजर्षि हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित जब यह सुनता है कि उसका पिता उदर रोग से पीड़ित है तो वह जंगल से ग्राम में लौट आता है। पुरुष रूपधारी इन्द्र उसे वन में ही विचरण करते रहने का उपदेश देता है। इन्द्र स्वावलम्बी व परिश्रमी विचरण करने वाले जन का मित्र होता है। प्रत्येक सम्वत्सर के अन्त में जब-जब रोहित वन से ग्राम की ओर वापिस आता तब तब पुरुष रूप धारी इन्द्र उसे वन में ही विचरण करने का उपदेश

---

१ (क) ऐतरेय ब्राह्मण, ७,४ ३३।
(ख) ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण) ३ ४ ५ ८३, पृ० ८९६।
यास्य क्षत्रियाऽस्ति साऽस्य देवतयेन्द्रो वा इन्द्र सम्बन्ध एव भवति। देवताना मध्ये इन्द्र क्षत्रियाभिमानिनी देवतत्त्व। तथा त्रैष्टुभश्छन्दसाम् मध्ये त्रष्टु-बेवाभिमानिनी।

२ ऐतरेय ब्राह्मण ८ ४ १५।
स य इच्छेदेवंविन क्षत्रियमय सर्वा जितीजयताय सर्वाल्लोकान् विन्देताय सर्वेषा राज्ञा श्रैष्ठ्यमतिष्ठाम परमता गच्छेत् साम्राज्य भौज्य स्वाराज्य वैराज्यम पार-मेष्ठ्य राज्य महाराज्यमाधिपत्यमय समन्तपर्यायी स्यात् तमेतेनन्द्रेण महा॰ भिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाभिषिचेत।

३ ऐतरेय ब्राह्मण १ ४ २४।
■ देवा अबिभयुरस्मात् त्रिप्रेमाणमविरसमुरा आमाविष्यन्तीतिते व्यूतक्याम न-मन्त्रानिवर्मुषित दक्षामदिदो रूदवक्ष आदित्यैव हृस्पतिविश्वदेवं, इति।

४ वेद में इन्द्र पृ० १९९ २०१।

देता। ऐसा पाँच वर्षों तक चलता रहा।[1] सायण के अनुसार ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र एक देहधारी व्यक्ति विशेष है। विचरण शील मनुष्य का मित्र इन्द्र ही परमेश्वर है।

'आगच्छन्त रोहित मागमध्य इन्द्र केनचिद ब्राह्मण-पुरुषरूपेण प्राप्यदमुक्त वान्—न चारण्ये चरतो मम सहायो नास्तीति शकनीयम्। इन्द्र एव परमेश्वर एव चरतस्तव सखा भविष्यति। तस्माच्चरैव सर्वारण्य चरस्वेत्येवमुवाच। एवं बहुष्वपि पर्यायेषु द्रष्टव्यम।'[2]

यहाँ एक रूपक के माध्यम से 'चरैवेति' कहकर सदा आगे बढ़ने का उपदेश दिया गया है।

शाखायन ब्राह्मण में भी ऐतरेय ब्राह्मण के समान वैदिक देवताओं के यांत्रिक उपयोग का वर्णन किया गया है। इन्द्र के विषय में भी शाखायन ब्राह्मण में पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है। पुरुष प्राण व अपान (श्वास प्रश्वास) की क्रियाओं का करता है। किन्तु 'सांस मैंने ली' व 'सांस मैंने छोड़ी' ऐसा ही वाणी में कहा जाता है। प्राण व अपान दोनों का विलय वाणी में होता है। आँख देखती है किन्तु आँख नहीं कहती कि मैंने देखा है। 'आँख देखती है' ऐसा वाणी से ही कहा जाता है। इसी प्रकार सुनने, विचारने व स्पर्श करने का वर्णन भी वाणी से सम्भव है। सम्पूर्ण आत्मा का विलीनीकरण वाणी में ही होता है। इसीलिए कहा गया है कि इन्द्र के बिना अथवा वाणी के बिना कोई धाम अर्थात् नाम, स्थान जन्म आदि कुछ भी शुद्ध नहीं होता। वाणी ही इन्द्र है।[3]

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ७ ३।१५।
अथ हैक्ष्वाक वरुणो जग्राह तस्य होदर जज्ञे, तदु रोहित शुश्राव सोऽरण्याद् ग्राम मेयायनमिन्द्र पुरुषरूपेण पर्येत्यावाच—नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत सखा चरवेति चरैवेति वैभा ब्राह्मणोऽवोचदिति है।

२ एतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), ३३ ३ १५, पृ० ८४४।

३ शाखायन ब्राह्मण, अध्याय २, खण्ड ७, पृ० ५।
साम्य पुरुषो य प्राणिति वा पानिति वा न तन प्राणेन ना पानेनाहृति प्राणिष वापानिष वति वार्चव तदाह तत्प्राणापानौ वाचमपीता वाड मया भवतोप्य यच्च-क्षुषा पश्यति न तच्चक्षुषाहत्यद्राक्षमिति वाचेव तदाह तच्चक्षुर्वाचमप्यति वाड मय भवत्यथ यच्छ्रोत्रेण शृणोति न तच्छोत्रेणाहेत्यश्रौषमिति वाचव तदाहतच्छ्रोत्र वाचमप्यति वाड मय भवति, तत्सवआत्मा वाचमप्यति वाङ्मयोभवति तदनदृषा ऽभ्युदित नेन्द्रादृते पवत धामकिञ्चनेति वाग्वा इन्द्रो न ह्यृते वाच पवत धाम किंचन स वै साम जुहोति ॥

इन्द्र को त्रिष्टुप् छन्द युक्त मन्त्रों से स्तुत होने के कारण त्रैष्टुभ कहते हैं।[1] पूर्वपक्ष अर्थात् शुक्लपक्ष और अपरपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष—प्रत्येक में पन्द्रह दिन होते हैं। सामिधेनी ऋचाएं भी पन्द्रह हैं। ये ही वज्र हैं। वज्र से यजमान के पाप कट जाते हैं।[2] इन्द्र देवों में ओजस्वी तथा बलशाली है। ब्रह्म अर्थात् वेद से ही इन्द्र की सर्वाधिक तीव्रता व उग्रता का श्रवण किया जा सकता है। अतः इन्द्र ही ब्रह्म है। इन्द्र को व्यष्टिगत और समष्टिगत प्राण के अभिप्राय से ही ओजिष्ठ व बलिष्ठ कहा जाता है। इन्द्र ही इन्द्रिय आदि व्यष्टिगत तथा अग्नि आदि समष्टिगत देवों में सबसे अधिक ओजस्वी व यशस्वी है।

इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठस्तस्मा एनत् परिहरन्ति तदस्मै परिगृह्यस्य ...मेवाचकार तस्मादाहेन्द्रा ब्रह्मेति।[3] इन्द्र पद आधिदैविक, आध्यात्मिक व आधिभौतिक दृष्टि से विभिन्न अर्थों का वाचक है। समष्टिजगत् अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक में इन्द्र वायु अथवा वायु से आवेष्टित विद्युत् के रूप में अन्तरिक्ष स्थान या मध्यम स्थान देवता है।[4] व्यष्टिजगत् अर्थात् मानव के शरीर में इन्द्र ही हृदय, मन, प्राण, वाक्, बल तथा वीर्य कहा गया है।[5] ये सब पदार्थ भी शरीर के मध्यवर्ती पदार्थ हैं। अतः व्यष्टि में भी इन्द्र मध्यम स्थानीय देवता है। इस प्रकार समष्टि और व्यष्टि उभयत्र इन्द्र मध्यम स्थान का देवता है। इसी कारण ब्रह्म यज्ञों में जिन्हें सृष्टि

---

१ निरुक्त ७।१०।
अथैतानीन्द्र भक्तीनि।
अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनं ग्रीष्मस्त्रिष्टुप्।

२ शतपथ ब्राह्मण, ३।१।५।३, पृ० ७५३।
अथ यस्मात् सामिधेनीना उक्ता, स्वयमयनमेव तत्कुरुते हिङ्कृत्य सामिधेनी-रन्वाह वज्रो वै हिङ्कारो वज्रेणैव तद् यजमानस्य पाप्मानम् हन्ति हिङ्कारो त्रिवृद्वज्रो वज्रमेव तदभिनिधायान्वाह वै देवा अग्निवृता वज्रेणेभ्यो लोकेभ्यो द्विषन्तं भ्रातृव्यमनुदन्त एकादश सामिधेनीरन्वाहैकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् त्रैष्टुभ इन्द्रस्तद्वज्रमेवाकरोत् त्रि प्रथमया त्रिरुत्तमया पञ्चदश सम्पद्यन्ते पञ्चदशो वै पूर्वपक्षापरपक्षयोरहानि तत्सामिधेनीभिः पूर्वपक्षापरपक्षावाप्नोति यावन्तो व सामिधेन्य पाप्मानं हन्ति।

३ शतपथ ब्राह्मण ६।१४ पृ० ७१,
वही, १।१५।४ पृ० ७५८।
पञ्चदशो वै वज्रो वज्रेणैव तद्यजमानस्य पाप्मानं हन्ति।

४ निरुक्त ७।५, सर्वानुक्रमणी २।८, बृहद्देवता १।६८-६९।

५ शतपथ ब्राह्मण, १२।१।१।५, १२।९।१।१३, ६।१।२।२८, १३।८।१।१४, १४।४।३।१९, १४।५।४।११, ११।६।१८, ११।४।३।१२, २।५।४।८।

रूप का प्रतीक माना जाता है प्रात माध्यन्दिन साय सवनों के त्रिक में इन्द्र को मध्यम सवन का देवता माना गया है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड का सादृश्य अतिप्राचीन काल से माना गया है।[1]

इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में प्रशसित इन्द्र कोई व्यक्ति विशेष नहीं है अपितु वह तो विभिन्न रूपों में वर्णित है विविध पदार्थों का वाचक है। सचमुच इन्द्र वैदिक आर्यों का देवी चिरकालिक राष्ट्रपति है। शासनारूढ दुर्दान्त बना हुआ है प्रतिवक्ता इन्द्र स्तुति करने वालों का रक्षक तथा दुष्टों का दमन करने वाला है।

'नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाम अस्ति वृत्रहन्
नकिरेवा यथा त्वम्।[2]

अर्थात् हे ऐश्वर्यवन् इन्द्र! हे बढ़ते हुए शत्रु और बाधक विघ्नों के नाश करने वाले राजन्! हे प्रभो! तुम से बढ़कर तेरा प्रतिपक्षी कोई नहीं। तुम से बड़ा भी कोई नहीं। जैसा तू है वैसा तेरे समान भी कोई नहीं।

ऐतरेयारण्यक में महाव्रताह से इन्द्र का सम्बन्ध जोड़ा गया है। महाव्रताह याग का नामकरण भी रोचक घटना पर आधारित है जब इन्द्र ने वृत्र को मारा तभी वह इन्द्र महान् बन गया। इन्द्र का महान् बनना ही महाव्रत है।[3] महाव्रत का निर्वचन तीन प्रकार से किया जाता है। सर्वप्रथम निर्वचन इस प्रकार है कि इस व्रत से महान् होता है अत यह महाव्रत है। द्वितीय—महान देव का यह व्रत है, अत एव यह महाव्रत है। तृतीय—महान यह व्रत होता है अतएव महाव्रत कहा जाता है।[4] प्राणात्मक इन्द्र को 'उक्थ' भी कहा गया है। ऐतरेयारण्यक में शरीर के अभ्यन्तरवर्ती प्राणत्व का प्रतिपादन करते हुए प्राण को उक्थ कहा है इन्द्र प्राण से वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ कहने लगीं—हे इन्द्र! प्राण तुम उक्थ हो।[5]

---

१ शुक्ल यजुर्वेद ७ ५।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्। सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व।

२ ऋग्वेद, ४ ३० १

३ ऐतरेयारण्यक, १ १ १, पृ० ३
अथ महाव्रतम्। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महानभवत्।
यन्महानभवत् तन्महाव्रतमभवत् तन्महाव्रतस्य तन्महाव्रतत्वम्।

४ ऐतरेयारण्यक भाष्य, १ १ १ पृ० ३-४।

५ ऐतरेयारण्यक २ १ ४, पृ० ११८।
ते देवा अब्रुवन्नयमुक्थमसि त्वमिदं सर्वमसि तव वयं स्मस्त्वमस्माकमसीति।
तदप्येतदृषिणोक्तम् त्वमस्माकं तव स्मसीति।

इन्द्र ही सूर्य के रूप में बाह्य प्राण और शरीर में वायु के रूप में आन्तर प्राण है। आधिदैविक पक्ष में इन्द्र शब्द से सूर्य का अर्थ ग्रहण किया जाता है। यह सूर्य ही बाह्य प्राण है।[1] प्रश्नोपनिषद् के अनुसार सूर्य ही प्राण है।[2] यह इन्द्र पद वाच्य आदित्य ही अपने तेज के कारण से प्राण कहा जाता है।[3] ऋग्वेद के एक मन्त्र में दीर्घतमा ऋषि कहता है कि मुझ ऋषि ने उस प्राणदेव का साक्षात्कार किया हुआ है जो कि इन्द्रियों का रक्षक और अविनाशी है। शरीर के मुख और नासिका के द्वारों से वह प्राण बाहर व अन्दर आता-जाता है। यह प्राण ही मनुष्य के शरीर में वायु रूप में वर्तमान है तथा शरीर के बाहर आधिदैविक जगत में आदित्य रूप में विद्यमान है।[4]

न च प्राणः स्वयमध्यात्मे वायुरूपेण वर्तमानोऽप्यधि दैवतमादित्यरूपेणावस्थितः सन् सध्रीचीर्विषूचीश्च द्विविधा अपि मुख्या दिशो वान्तरदिशश्च वसान आच्छादयन् पर्याप्नुवन् वर्तते।[5]

आदित्य में और शरीरान्तर्गत प्राण में मूलतः कोई भेद नहीं है। केवल स्थान का भेद है। एक ही पदार्थ देह को प्रवर्तित करने के लिए प्राण वायु के रूप में अन्तः स्थित है तथा दृष्टि को प्रेरित करने हेतु आदित्य रूप से बहिः स्थित है।[6] देह के अन्त-

१ यद्यप्यादित्य एव स्वप्रकाशेन तादिशः आच्छादयति न तु प्राणस्तथापि नास्ति विरोधः। आदित्यस्य बाह्यदेशवर्ति प्राणरूपत्वात। आदित्योवै बाह्य प्राण उदयन्नेष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णीत इति श्रुत्यन्तरात्।

ऐतरेय आरण्यक भाष्य (सायण), २ १ ६ पृ० १२४।

२ प्रश्नोपनिषद् १ ८।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

३ वही, २ ९

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥

४ ऋग्वेद, १ १६४ ३१ तथा १० १७७ ३।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
सध्रीचीः [redacted] विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥

५ ऐतरेय आरण्यक भाष्य (सायण) २ १ ६ पृ० १२३।

६ वही २ २ १ पृ० १३५।

य एष मण्डलस्थोऽस्माभिर्दृश्यमानस्तपति स एष प्राणो हि। न खल्वादित्यप्राणयोर्भेदोऽस्ति। अध्यात्ममधिदैवं चेत्येव स्थानभेदमात्रम्। अतएव—आदित्यो ह वै बाह्य प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णीत इति श्रुत्यन्तरे पठ्यते। एक एव पदार्थो देहं प्रवर्तयितुमन्तः स्थितो दृष्टिमनुग्रहीतुम् बहिः स्थितः इत्येतावदेव अपार्थक्यम्।

स्थित वायुरूप प्राण देह से बाहर विद्यमान आदित्यरूप प्राण ही इन्द्र नाम से वर्णित किए गए हैं।[1] आध्यात्मिक पक्ष में इस इन्द्र रूप प्राण के हाथ प्राण और अपान नामक वृत्तियाँ हैं तथा आधिदैविक पक्ष में उस इन्द्र रूप आदित्य के हाथ उत्तरायण और दक्षिणायन है।

एक ऋचा में इन्द्र को हंस कहा गया है। इसका कारण यह है कि इन्द्र वर्षा के निमित्त मेघ का हनन करता है। आकाशीय जल अपने प्रवर्त्तक रूप में इन्द्र को अपना मित्र स्वीकार करते हैं। अनुष्टुप् मेघाजन रूपी वाक् है। इसके साथ विचरण करने वाले परमैश्वर्य युक्त प्राणदेव इन्द्र को कवि अर्थात् मेधासम्पन्न लोग ज्ञान पूर्वक ध्यावें।[2]

उपासना योग्य आत्म तत्त्व की विवेचना प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि जिससे समस्त इन्द्रियाँ देखने, सुनने इत्यादि व्यवहार करती हैं, वह प्रज्ञानात्मा उपास्य है। वही ब्रह्म है, वही इन्द्र है, वही प्रजापति है तथा वही सर्वदेवमय है। सम्पूर्ण विवरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्याता जीवात्मा, ध्येय परमात्मा तथा ध्यानाधार प्राण—ये तीनों इन्द्र शब्द के ही विभिन्न अर्थ हैं।[3]

शांखायन आरण्यक के अनुसार इन्द्र एक ऐतिहासिक ऋषि है। ऋग्वेद यजुर्वेद संहिता में भी अनेक सूक्तों और मन्त्रों का द्रष्टा 'इन्द्र' नामक ऋषि स्वीकार किया गया

---

१ ऋग्वेद १।६।८।
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाढं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः॥

२ (क) ऋग्वेद, १०।१२४।९।
बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम्।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा॥

(ख) ऐतरेय आरण्यक भाष्य (सायण), २।३।५ पृ० १६२।

३ ऐतरेय आरण्यक २।६।१, पृ० २०३-१३।
को ऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा। येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति। एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि—येदप्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्।—प्रज्ञानं ब्रह्म।

है ।[1] इन्द्र ने प्रजापति से अध्ययन किया और विश्वामित्र को पढ़ाया—ऐसा उल्लेख भी मिलता है ।[2]

इन्द्र ऋषभ रूप में

इन्द्र नाना रूपो मे ज्ञातव्य है । पशुओ मे इन्द्र का रूप ऋषभ (=साड) है ।[3] इन्द्र बलवत्ता तथा वीर्यसेचन समर्थता का द्योतक है। जिस प्राणी मे ये गुण विद्यमान हो वह भी इन्द्र का प्रतीक माना जा सकता है । वेद के अनुसार पशु शब्द की 'पश्यतीति पशु' व्युत्पत्ति मानने पर पशु शब्द मनुष्यादि जीवमात्र का बोधक है ।[4] इन्द्र त्रिष्टुप छन्द से अभिष्टुत होने पर समद्ध होता है ।[5] निरुक्त एवम बृहद्देवता के अनुसार भी इन्द्र त्रिष्टुप् छन्द से सम्बन्धित माना गया है ।[6]

इन्द्र विश्वामित्र सवादात्मक आख्यान

विश्वामित्र सत्र और व्रतचर्या से इन्द्र के धाम पहुँच जाते हैं। इन्द्र प्रसन्न होकर विश्वामित्र से कोई उत्तम वर मागने के लिए कहते हैं। विश्वामित्र यह वर मागते हैं कि तुम्हे जान जाऊँ—यही कामना है । इन्द्र दूसरी बार व तीसरी बार पुन

---

१ ऋग्वेद १ १६५ १ २४ ६, ८, १० १२ ११७० १, ३ ४ ४ १८ १, ४ २६ १ ३ ८ १०० ४ ५, १० २८ २,६ ८,१०,१२ १० ८६ १, ८,११ १२ १४ १९ २२ ।
यजुर्वेद—९ १-३४, १ २२ २३, १८ ६८ ७४ ।

२ शाखायान आरण्यक, १५ १, पृ० ४७ ४८
अथ वश नमो ब्रह्मणे नम आचार्येभ्यो गुणाख्याच्छाखायनादस्माभिरधीत गुणाख्य शाखायान कहोलात देवरातो विश्वामित्राद विश्वामित्र इन्द्रादिन्द प्रजापत प्रजापतिब्रह्मणो ब्रह्मा स्वयभूर्नमो ब्रह्मणे ।

३ शाखायन आरण्यक पृ० १
अथो एतदेव पशुष्विन्द्र रूप यदृषभ ।

४ अथर्ववेद १४ २ २५
वितिष्ठन्ता मातुरस्या उपस्थान्नाना रूपा पशवोजायमाना ।

५ शाखायन आरण्यक पृ० २
इन्द्रस्यवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप तदेन स्वेन छन्दसा समर्धयति ।

६ निरुक्त, ■ १०
अथतानीन्द्रभक्तीनि । अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिन सवन ग्रीष्मस्त्रिष्टुप ।
बृहद्देवता १ १३०
छन्दस्त्रिष्टुप च पक्तिश्च लोकाना मध्यमश्च य । एतष्वेवाश्रयो विद्यात् सवन मध्यम च यत ॥

उचित वर की याचना करने को कहते हैं। विश्वामित्र केवल इन्द्र का जानने की ही इच्छा प्रकट करते हैं। इन्द्र कहते हैं—"मैं बड़ी पुरुष शक्ति और बड़ी स्त्री शक्ति हूँ, देव और देवी हूँ, ब्रह्म और ब्रह्माणी हूँ। यदि तुम इससे अधिक तप करोगे तो वही बन जाओगे जो मैं हूँ।"[1]

यह एक रूपकात्मक वर्णन है। इन्द्र भजनीय है व विश्वामित्र भक्त है। इन्द्र का प्राप्यत्व व श्रेष्ठत्व तथा विश्वामित्र साधकत्व वक्तव्य अभिव्यक्त करता ही इस आख्यान का लक्ष्य है।

प्रज्ञात्मा प्राण ही इन्द्र है

इन्द्र जब तक उस प्रज्ञात्मा को नहीं जानता तब तक वह असुरों से पराजित होता रहता है। जब वह स्वयं को जान लेता है तब असुरों को मार कर जीत लेता है तथा सभी देवों (=इन्द्रियों) में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और आधिपत्य को प्राप्त कर लेता है। प्रज्ञात्मा प्राण का चक्षुरादि अन्य इन्द्रियों के साथ भाग्य भोक्तृत्व का सम्बन्ध है। जो विद्वान इस इन्द्र की श्रेष्ठता के रहस्य का जानता है वह भी अपने पाप का नाश करके श्रेष्ठता, स्वाराज्य व आधिपत्य प्राप्त कर लेता है।[2]

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि इन्द्र कोई व्यक्ति विशेष न होकर सभी इन्द्रियों का शासक प्रज्ञात्मा प्राण है।

दैवोदासि प्रतर्दन तथा इन्द्र का आख्यान

दिवोदास का पुत्र दैवोदासि प्रतर्दन युद्ध और अपने बल से इन्द्र के प्रिय धाम

---

१ शाङ्खायन आरण्यक, १ ६, पृ० ३
विश्वामित्रो ह वा इन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम शस्त्रेण च व्रतचर्यया च तं हेन्द्र उवाच विश्वामित्र वरं वृणीष्वेति स होवाच विश्वामित्रस्त्वामेव विजानीयामिति द्वितीयमिति त्वामेवेति तृतीयमिति त्वामेवेति स हेन्द्र उवाच महांश्च महती चास्मि देवश्च देवी चास्मि ब्रह्म च ब्राह्मणी चास्मीति तत उ ह विश्वामित्रो विजिज्ञासामेव चक्रे तं हेन्द्र उवाचैतद्वा अहमस्मि यदेतदवोच यद्वा ऋषे तपो भूयो तपस्तदेव तत् स्याद् यदहमिति।

२ वही, पृ० २५ २६ ६ २०
तमेतमात्मानमेत आत्मनोऽन्ववस्यन्ते यथा श्रेष्ठिनं स्वास्तद्यथा श्रेष्ठी स्वैर्भुङ्क्ते यथा वा स्वाः श्रेष्ठिनं भुञ्जन्त्येवमेवैष प्रज्ञात्मैतैरात्मभिर्भुङ्क्ते एवमेवैत आत्मान एतमात्मानं भुञ्जन्ति स यावद्ध वा इन्द्र एतमात्मानं न विजज्ञे तावदेनमसुरा अभिबभूवुः स यदा विजज्ञेऽथ हत्वासुरान्विजित्य सर्वेषां च देवानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येत्तथो एवैवं विद्वान् सर्वान् पाप्मनोऽपहत्य सर्वेषां च भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति य एवं वेद य एवं वेद।

में पहुँचता है। इन्द्र उसे वर मांगने के लिए कहता है। तब प्रतर्दन बोला देव, तुम्हीं माँग लो न, जिसे तुम मनुष्य के लिए सबसे अच्छा समझते हो। प्रतर्दन के वचन को सुनकर इन्द्र ने कहा—बड़ा छोटे से नहीं मांगा करता। तुम मेरे से छोटे हो। इन्द्र ने अपना बड़प्पन व सत्य नहीं छोड़ा। सत्य ही इन्द्र है। प्रतर्दन के वर मांगने पर इन्द्र ने कहा मुझे ही विशेष रूप से पहचानो। यही मनुष्य के लिए सबसे हितकर है। मैं प्रज्ञात्मा प्राण हूँ। मेरे प्राण स्वरूप की आयु और अमृत मानकर उपासना करो। इस प्राण के प्राणित होने पर सभी प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ अनुप्राणित होती हैं। प्रज्ञात्मा प्राण से ही शरीर उत्थान योग्य बनता है। प्राण की पहचान यह है कि जब पुरुष सो जाने पर कोई स्वप्न नहीं देखता तब भी यह प्राण जागृत रहता है तथा शरीर को धारण करता है।[1] यह प्रज्ञात्मा प्राण शरीर में बाल और नाखून पर्यन्त व्याप्त है। जैसे ब्रह्माण्ड में ईश्वर व्याप्त रहता है वैसे ही यह शरीर में व्याप्त है।[2]

इस दैवोदासि प्रतर्दन और इन्द्र के आख्यान में शरीर में विभु प्रज्ञात्मा प्राण ही इन्द्र नाम से वर्णित किया गया है। वास्तव में यह एक आलंकारिक कथा है।[3]

इन्द्र का बल में समावेश

प्रजापति ने जब पुरुष का निर्माण किया तो पुरुष के शरीर में ब्रह्माण्ड के सर्व देवताओं को भी प्रविष्ट कराया। वाणी में अग्नि, प्राण में वायु, अपान में वैद्युत, उदान में पर्जन्य, आँखों में आदित्य, मन में चन्द्रमा, कान में दिशाएँ, शरीर में पृथ्वी, वीर्य में जल, बल में इन्द्र, मन्यु में ईश्वर, मूर्धा में आकाश और आत्मा में ब्रह्म प्रविष्ट किए गए। जिस प्रकार अमृत का घट बढ़ता है उसी प्रकार इन देवों से शरीर

---

१ शांखायन आरण्यक, ५.१.२, पृ० १८-१९
ओं प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रियं धामोपजगाम युद्धेन च पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वरं वृणीष्वेति कथा खल्विन्द्र सत्यादेव नयाय सत्यं हीन्द्र इन्द्र उवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यो मां विजानीयादिति स होवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वायुः प्राणः प्राणो वा आयुर्यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः प्राणेन ह्येवास्मिंल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।

२ शांखायन आरण्यक ६.२०, पृ० २५
स एष प्राण एव प्रज्ञात्मा शरीरमनुप्रविष्ट आ लोमभ्य आ नखेभ्यस्तद्यथा क्षुरः क्षुरधाने ऽवहितो विश्वम्भरो वा विश्वम्भरकुलाय एवमेवैष प्रज्ञात्मेदं शरीरमात्मानमनुप्रविष्ट आ लोमभ्य आ नखेभ्यः।

३ वेद में इन्द्र, पृ० २१८-२२६

भी बढता है।[1] इन्द्र का सम्बन्ध बल से है। यही वैदिक साहित्य में ऐन्द्र शक्ति के रूप में वर्णित है। इन्द्र बल में, बल हृदय में तथा हृदय शरीर में विद्यमान रहता है।[2]

ऐतरेय उपनिषद तो ऐतरेय आरण्यक का ही अन्तिम भाग होने से इन्द्र विषयक समान विवरण ही प्रस्तुत करता है। शाखायन ब्राह्मण को कौषीतकी ब्राह्मण भी कहा जाता है। कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद में सत्य से विचलित न होने वाले इन्द्र की सहार शक्ति का वर्णन किया गया है। इन्द्र को सत्य स्वरूप व प्रज्ञात्मा प्राण के रूप में वर्णित किया गया है।[3] इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र त्रिशीर्षा को मार कर अधोमुख किए हुए यतियो को प्रदान किया। कई सीमाओ व सीढियो को पार कर द्युलोक में प्रह्लादियो को अन्तरिक्ष में पौलोमो को तथा पृथ्वी में कालकाश्यो को नष्ट किया। यहा त्रिशीर्षा आदि इन्द्र द्वारा नष्ट होने वाली प्राकृतिक शक्तिया प्रतीत होती हैं। इन्द्र भी वायु, विद्युत या आदित्य रूप शक्ति है।[4]

---

१ प्रजापति वा इम पुरुषमुदयत तस्मिन्नेता देवता आवेशयद वाच्यग्नि प्राणो वायुमपाने वद्युतमुदाने पर्जन्यम चक्षुष्यादित्य मनसि चन्द्रमसम श्रोत्रे दिश शरीरे पृथिवी रेतस्यपो बल इन्द्र मन्यावीशान मूर्धन्याकाशमात्मनि ब्रह्म स यथा महान्मतकुम्भ पिन्वमानस्तिष्ठेदेव हैव समुत्तस्थौ।
शाखायन आरण्यक ११ १, पृ० ३६

२ वही, ११ ६, पृ० ४१
बले म इन्द्र प्रतिष्ठितो बले हृदये दयमात्मनि।

३ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद, ३ १ २।
प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिरिन्द्रस्य प्रिय धामोपजगाम युद्धेन पौरुषेण च त हेन्द्र उवाच प्रतर्दन वर ते ददानीति स होवाच प्राणोस्मि प्रज्ञात्मा त मामायुरमृतमित्युपास्वायु प्राण प्राणो वा आयु। प्राण उवाचामृत यावद्ध्यस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायु प्राणेन ह्येवामुष्मिँल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति प्राण प्राणान्त सर्वे प्राणा अनुप्राणन्तीत्येवमु हैवतदिति हेन्द्रउवाचास्त्वीत्येव प्राणाना नि श्रेयसादानमिति।

४ वही, ३ १
अथो खल्विन्द्र सत्यादेव नेयाय सत्य हीन्द्र स होवाच मामेव विजानीह्येतदेवाह मनुष्याय हिततम मन्ये यन्मा विजानीयात् त्रिशीर्षाण त्वाष्ट्रमहनमवाङ्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्य प्रायच्छ बह्वी सधा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीनतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्या कालकाश्यास्तस्य मे तत्र न लोम च मामीयत स यो मां विजानीयान्नास्य केन च कर्मणा लोको मीयते।

उपनिषद् वाक्य कोष में इन्द्र से सम्बन्धित वाक्यांशों का संग्रह किया गया है। इन्द्र को ब्रह्म भी प्रतिपादित किया है। इन्द्र को अन्य देवों से बढ़कर माना है। इन्द्र से श्रेष्ठ धन की याचना की गई है।[1]

(ख) 'मरुत्' शब्द की व्युत्पत्ति व निर्वचन एवम् अभिप्राय

मरुत् देवता का अभिप्राय व स्वरूप निर्णय करने से पूर्व 'मरुत्' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति एवम् निर्वचन का विचार आवश्यक है। मरुत् शब्द की निष्पत्ति मृ धातु से प्रतीत होती है। मृ धातु मरणार्थक है या दमनार्थक अथवा रोचनार्थक। इस बात का समुचित ढंग से निर्णय करना कठिन है। ऋग्वेद के अनुसार मरुतों के वर्णन के सन्दर्भ में 'रोचन' (=चमकना) अर्थ ही अधिक प्रतीत होता है।[2] 'मृग्रोरुति' इस सूत्र द्वारा भी 'मृङ् प्राणत्यागे' धातु से 'उति' प्रत्यय करने पर 'मरुत्' शब्द बनता है।[3]

ऋग्वेद में मरुतों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। मरुतों का एक देवगण है। 'गण' शब्द का प्रयोग मरुतों के लिए ही हुआ है। इनका उल्लेख एक वचन में न

---

१ उपनिषद् वाक्य-कोष, पृ० २०६-२१०
ऐतरेयोपनिषद् ३ १४—तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते ।
५ ३—एष ब्रह्मैष इन्द्र
कौषीतकी उपनिषद् १ ३—इन्द्र प्रजापति द्वारगोपौ
२ ६—एष उ सर्वविदिन्द्रस्यात्मा भवति
२ ११—इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
केनोपनिषद् २४—अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि
२७—यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शु
२८—तस्माद्वा इन्द्रो ऽतितरामिवान्यान् देवान्
छान्दोग्योपनिषद् २ २२ १—इन्द्रस्य बलवदिन्द्रस्य
३—सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मान
इन्द्र शरणं प्रपन्नोऽभूवम् ।
१—इन्द्रे बलं ददानीति
बृहदारण्यकोपनिषद् १ ४ ११—इन्द्रो वरुण सोमो रुद्र
१ ५ १२—स इन्द्र स एषोऽसपत्न ।
२ २ २ —यदुक्तं तदिन्द्र

२ वैदिक देवशास्त्र, पृ० २०४।

३ उणादि-सूत्र, १४।

होकर बहुवचन मे हुआ है। ये सख्या मे ६० के तीन गुणा अर्थात् १८० माने जाते हैं।[1]

एक मत के अनुसार ७ के तीन गुने २१ सदस्य युक्त भी मरुत् गण माने जाते हैं।[2] इन्हें रुद्रा[3] अथवा रुद्रिया[4] कहा गया है। रुद्र के पुत्र मरुतो की माता का नाम पृश्नि है। फलत मरुतो के लिए अनेक बार 'पृश्निमातर' विशेषण का प्रयोग भी किया गया है।[5] पृश्नि से उत्पन्न मरुतो की अग्नि के साथ तुलना की गई है।[6]

'मरुत्' शब्द से स्पष्ट रूप से झझावात से सम्बन्ध रखने वाली और तीव्र गति से बहने वाली वायु का ही बोध होता है। निरुक्तकार यास्क ने मरुत शब्द की त्रिविध व्याख्या की है।

> मरुतो मितराविणो वा मित रोचिनो वा।
> महद् द्रवन्ति इति वा।[7]

मित शब्द का अर्थ योग्य, अनुरूप या सुश्लिष्ट किया गया है। जो उचित रूप से गर्जन करते हैं उन्हें ही 'मरुत्' कहा गया है।

व्याकरणिक निर्वचन करते हुए 'मित नाम सुश्लिष्टम्', 'यथा तथा योग्य रविनु तथा रवन्ति स्तनयन्ति' कहा जा सकता है। उत्तम रूप से दीप्त होने के कारण, अत्यधिक भागने के कारण भी ये मरुत् कहलाते हैं। दुर्गाचार्य के मतानुसार

---

१ (क) त्रिषप्तिस्त्वा मरुतो वावृधाना। ऋग्वेद ८ ९६ ८।

(ख) The storm Gods Indra's companions and in RV VIII 96 8 are held to be three times sixty in number Sanskrit-English Dictionary, Sir Monier Williams, p 790।

२ ऋग्वेद, १ १३३ ६—शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूरसत्वभि॥

अथर्ववेद, १३ १ ३—त्रिषप्तास।

३ ऋग्वेद १ ३८ ४—युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे।

४ वही १ ३८ ७—सत्य त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियास।

५ वही, १ २३ १—विश्वान् देवान् हवामहे—मरुत हि पृश्निमातरः।

६ वही ६ ६६ २—ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त।

७ (क) निरुक्त, ११ १३

(ख) वेदस्य व्याकरणिक तत्त्व पृ० ११६
मित सुमिलितकरम् ध्वनिकुर्वाणा, मितमकरम ज्वलयन्त महदतीव द्रवन्त गच्छन्त मरुत विवरन्ति।

मित शब्द के स्थान पर 'अमित' शब्द का पाठ भी कुछ आचार्यों को अभीष्ट है तदनुसार इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा—मरुत अमित अर्थात अत्यधिक गति करते हैं अथवा महान अन्तरिक्ष में गति करते हैं।[१]

यास्क प्रणीत निघण्टु में 'मरुत'[२] और मरुत[३] दोनों का उल्लेख किया गया है।

मरुत का व्याख्यान करते हुए दुर्ग ने उसे हिरण्य भी सिद्ध किया है।[४]

मरुत के तीन तात्पर्य भी सम्भव हैं—(१) जो प्रकाशवान् है। (२) जो चूर्ण करता है अथवा बादलों को नष्ट करता है, (३) मृत पुरुषों का आत्मा, जो हवा में वेग पूर्वक दौड़ता है। तृतीय तात्पर्य में कल्पित वैदिक धातु 'मर' मानी गई है। अज्ञातवश कुछ वेफे इ०एच०मायर ट्रायडर और हिलेब्राटने इस तृतीय तात्पर्य का समर्थन किया है।[५]

ऋग्वेद में मरुतों का उपस्तम्भन करते हुए कहा गया है कि हे मरुतो! तुम्हारे अस्त्र शस्त्र शत्रुओं को भगाने अथवा अपनोदन के लिए स्थिर हों और उनके प्रतिबन्ध के लिए दृढ़ हों। तुम्हारा बल अतिशय स्तोतव्य अथवा तेजपूर्ण हो। मायावी मनुष्य को बल न हो।[६]

---

१ निघण्टु (दुर्ग भाष्य), ५.५

मरुत इति पदनामसु पठिता मितं रुवन्ति विद्युदाविष्ट च शब्द मितमेव व्यञ्जन्ति, अमितं वा बहुप्रकारं रुवन्ति स्तनयित्नुलक्षण शब्द कुर्वन्ति महदुच्चद्र-वन्ति महदन्तरिक्ष द्रवन्तीति वा मरुत।

२ निघण्टु १.२ ३.७।

३ वही ३.१८, ५.५।

४ निघण्टु (दुर्ग भाष्य), १.२

तत्र मरुत हि हिरण्य भवति कस्मात्? मितममित वा रोचते मितममित वा रोचयति माते पूर्वार्द्धम रोतेश्चोत्तरार्द्धम्। हिरण्यं हि यस्यादितजरिवमदार्भ्यो मितं भोगादिभ्यो मितं रोचते अर्थिभ्यादीयमान लाक्षद्वयऽपि कीर्ति कारयति। अयमेवार्थिहस्तस्थो रौति रोचते वा यद्वा म्रियनघातोरुति प्रत्यये रूपम्। म्रियते अनेन पुरुषा इति मरुत। हिरण्यार्थ हि तस्करा पुरुषम् व्यापादयन्ति।

५ वैदिक राजनीति शास्त्र, पृ० १२६।

६ ऋग्वेद, १.३९.२

स्थिरा व सन्त्वायुधा पराणुदवीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥

मरुत् शक्तिशाली हैं। वे अपनी महिमा से बढ़े[1]। वे युद्ध में व्यवस्थापूर्वक खड़े रहे।[2] मरुत् क्रूरतायुक्त राजाओं के समान हैं।[3] वे शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले हैं।[4]

तैत्तिरीय संहिता में मरुतों को देवों की प्रजा कहा गया है।[5] ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि हे मरुद् गण! तुम अत्यन्त दीप्ति, श्रेष्ठ गति आयुधों से युक्त हुए उड़ने वाले अश्वों को रथ में जोत कर आओ। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। अधिक अन्नों के साथ हमको प्राप्त होओ।[6]

मरुत दीप्तिमान है, अतः इनकी दीप्तिमत्ता का भी उल्लेख किया गया है। मरुत अग्नि व सूर्य के तुल्य तेज युक्त हैं।[7] मरुत् अग्नि की लपटों के समान प्रकाशित होते हैं।[8] मरुत जब धरती पर घृत की वर्षा करते हैं तो विद्युत धरती की ओर मुस्कुराती है।[9]

---

१ ऋग्वेद, १ ८५ ७
त वर्धन्त स्वतवसो महित्वना।

२ वही, १ ८५ ८
पृतनासु यतिरे।

३ वही, १ ८५ ८
राजान इव त्वेष सदृशो नरः।

४ वही, ३ २६ १५
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः।

५ तैत्तिरीय संहिता, २ २ ५ ५
मरुतो वै देवाना विशोदेवविशेनैवास्मै मनुष्यविशमवरुन्धे सप्तकपालोभवति सप्त-गणा वै मरुतो गणश एवास्मै स जाता नवरुन्धे नूच्यमान आ सादयति विशमेवास्य अनुवतमान करोति।

६ ऋग्वेद १ ८८ १
आ विद्युन्मद्भिर्मरुत स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः॥

७ (क) ऋग्वेद, ६ ६६ २
ये अग्नयो न शोशुचन्।
(ख) वही, ७ ५९ ११ सूर्यत्वच।[1]

८ वही, १० ७८ ३
अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः।

९ वही, १ १६८ ८
अवस्मयन्त मरुत पृथिव्या यदी घृत मरुत प्रष्णुवन्ति।

शुक्ल यजुर्वेद में भी मरुतो के स्वरूप का वर्णन करने वाले मन्त्र मिलते हैं। ऋग्वेद में वर्णित मरुतो के स्वरूप में और शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित मरुतो के स्वरूप में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होता। एक मन्त्र में मरुतो के सम्बन्ध में 'पृश्नि' माता तथा 'पृषती' घोडिया का उल्लेख मिलता है।[1] मरुतो के भयंकर रूप का वर्णन करते हुए उन्हें 'प्रघासिन' अर्थात 'घातक' भी कहा गया है।[2] वे रक्षा करने में अति चतुर हैं।[3] मरुतो से ऊर्जा एवम शक्ति को धारण करने की प्रार्थना भी की गई है।[4]

वाजसनेयि सहिता के अनुसार मरुत यातविक कृत्यों से भी सम्बन्ध रखते हैं। मरुतो से यह प्रार्थना की गई है कि शत्रुओ की सेना समूह को इस प्रकार अन्धकार से ढक लें कि शत्रु वर्ग के लोग एक दूसरे को बिल्कुल न देख सकें।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थो में मरुतो को विश (प्रजा) कहा गया है। कृषक और वश्य कह कर भी इन्हें सम्बोधित किया गया है। मरुतगण देवो की प्रजा है।[6]

तैत्तिरीय सहिता के अनुसार मरुतो को सात कपालो में यज्ञ भाग प्रदान करना चाहिए।[7] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार मरुतो के सात गण हैं और यह प्रत्येक गण सात-

---

१ यजुर्वेद, २ १६
मरुता पृषतीमच्छ वशापृश्निर्भूत्वा।

२ वही ३ ४४
प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादस।
करम्भेण सजोषस ॥

३ वही, ८ ३१
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहस।
स सुगोपातमो जन ॥

४ वही, १७ १
ता न इषमूर्ज धत्त मरुत।

५ वाजसनेयि सहिता १७ ४७
असौ या सेना मरुत परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्द्धमाना।
ता गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्योऽन्य न जानन ॥

६ ऐतरेय ब्राह्मण १ २ ३, कौषीतकी ब्राह्मण ७ ८
विशो वै मरुता देवविश।
शतपथ ब्राह्मण, २ ५ १ १२, ५ १ ३ ३ व ६ २ १ १३

७ तैत्तिरीय सहिता, २ २ ५
मारुत सप्तकपालो भवति। सप्तगणा वै मरुत।

सात का है। इस प्रकार मरुतों की कुल संख्या ४९ सिद्ध होती है।[1] मरुद्गण वर्षा के अधिपति हैं।[2] मरुत् संतपनकारी हैं। मरुतों ने वृत्र को सतप्त कर दिया तो वह लम्बी सास भरने लगा।

मरुतो ह वा सा तपना मध्यन्दिने वृत्र सन्तेपु।
सन्तप्तो अनन्नेव प्राणन् परिदीर्ण शिश्ये॥[3]

मरुतों को क्रीडिन् और क्रीडनका (=खिलाडी) कहा है। मरुत इन्द्र द्वारा वृत्र-वध के समय इन्द्र की शक्ति को बढाते हैं।

मरुतों ह्व कीडिनो वृत्र हनिष्यन्तम्।
इन्द्रमागतम् समभित परिचिक्रीडु महयन्त॥[4]

प्रस्तुत अध्याय में 'इन्द्र' और 'मरुत्' का स्वरूप विवेचन किया गया है। इन्द्र देवता का मरुत् देवता के साथ अटूट सम्बन्ध है। इन्द्र मरुतों के बल से ही वृत्र का वध करते हैं। इन्द्र मरुतों को बुलाते हुए उन्हें अपने पास रहने के लिए कहते हैं।[5] मरुतों की इन्द्र के साथ बहुत गहरी दोस्ती है। वृत्र से इन्द्र का युद्ध हुआ। इसमें मरुतों ने इन्द्र को प्रोत्साहित किया। शबर वध के समय में भी मरुतों ने इन्द्र की सहायता की और तत्पश्चात् भी मरुत् इन्द्र के साथ रह कर प्रसन्न होते हैं।[6] ऐतरेय ब्राह्मण में मनुष्यों की श्वास-प्रश्वास की प्राणवायु से मरुतों का तादात्म्य मिलता है। मरुत् ही श्वास प्रश्वास हैं। श्वास प्रश्वास रूप ही मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट सहायक व मित्र हैं। इन्द्र का वृत्र से युद्ध होने पर सब देवता इन्द्र को छोड गए। मरुतों ने ही उस समय इन्द्र का साथ दिया।[7]

---

१ शतपथ ब्राह्मण, २ ५ १ १३
सप्त-सप्त हि मारुतो गण।

२ वही, ७ २ २ १०, ९ १ २ ५
मरुतो वै वर्षस्येशते।

३ शतपथ ब्राह्मण, २ ५ ३ ३

४ वही, २ ५ ३ २

५ वही, ४ ३ ३ ७
उप मा वर्तध्वम्। युष्माभिर्बलेन वृत्र हनानीति।

६ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ६

७ इन्द्र वै वध्न जघ्निवास नास्तृतेति मन्यमाना सर्वा देवता अजहु।
त मरुत एव स्वापयो नाजहु। प्राणा वै मरुत स्वापय। प्राणा है वन त नाजहु॥
ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ ५

इसी प्रकार एक कथा के माध्यम से इन्द्र और मरुत् के गूढ़ सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। इन्द्र ने वृत्र को मारने के समय दूसरे सभी देवताओं से सहायता मांगी। जब सभी देवता वृत्र पर एक साथ आक्रमण करने के लिए बढ़ने लगे तो वृत्र ने भयंकर गर्जन किया। वृत्र की घोर गर्जना सुनकर सभी देवता भाग खड़े हुए। केवल मरुत ही इन्द्र का उत्साह बढ़ाने के लिए साथ रहे।[1]

इन्द्र और मरुत के गूढ़ सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए इन्द्र और मरुत को युगल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वायु का मरुतों से सम्बन्ध

वायु का मरुतों के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इन्हें दिव्य लोक की नदियों से उत्पन्न कहा गया है। वायु प्रवाहों की सहायता से मरुत मेघों को इधर-उधर ले चलते हैं जिससे वर्षा होती है तथा वर्षा से पुष्टिकारक अन्न की प्राप्ति होती है।[2] ऋग्वेद में ही एक स्थान पर वायु की मरुतों के साथ तुलना करते हुए मरुतों को वायु और तूफान का देवता कहा गया है।[3] वात के साथ भी मरुतों की तुलना की गई है इन्हें वात के समान स्वयुज कहा है क्योंकि ये रथ को स्वयं जोतते हैं।[4]

संस्कृत कोषकारों के मतानुसार वायु शब्द के पर्याय एवं नानार्थ

हलायुध कोश में 'वा गतिगन्धनयोः' से 'कृ वा पा—' सूत्र से उण् प्रत्यय तथा 'आतो युक् चिण् कृतोः' से युक् आगम होने पर 'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति माना है। श्वसन स्पर्शन, मातरिश्वा, सदागति, पृषदश्व, गन्धवह गन्धवाह, अनिल, आशुग,

१ ऐतरेय ब्राह्मण, ३ २ १६

इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन् सर्वा देवता अब्रवीद्। अनु मा उपतिष्ठध्वम् उपमा आह्वयध्वम्। तथेति। तम् हनिष्यन्त आद्रवन्। सो वेद माम् वै हनिष्यन्त आद्रवन्ति। हन्त इमान् भीषये तानभि प्राश्वसीत। तस्य श्वसथाद् ईषमाणा विश्वेदेवा अद्रवन् मरुतो हैनं नाजहुः। 'प्रहर भगवो जहि वीरयस्व' इत्येतां वाच वदन्त उपातिष्ठन्त।

२ ऋग्वेद, ८ ७ ३

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥

३ वही १० ७८ ३

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितृणां न शंसा सुरातयः ॥

४ ऋग्वेद १० ७८ २

वातासो न स्वयुजः।

समीर, मारुत, मरुत जगत्प्राण, समीरण, नभस्वान वात, पवन, पवमान, प्रभञ्जन, जगत्प्राण, वाह, धूलिध्वज फणिप्रिय, वाति, नभप्राण भोगिकान्त, स्वकम्पन, कम्पलक्ष्मा, आवक, हरि, वास सुखाश मृगवाहन, सार चपल विहग, प्रकम्पन, नभस्वर, निश्वासक स्तनून, पृणता पति आदि वायु के पर्याय के रूप मे अभिप्रेत है।[1]

अमरकोश मे श्वसन, स्पर्शन, वायु मातरिश्वा, सदागति, पृषदश्व, गन्धवह, गन्धवाह, अनिल आशुग, समीर, मारुत, मरुत, जगत्प्राण, समीरण नभस्वान वात, पवन, पवमान, प्रभञ्जन आदि को वायु के पर्याय के रूप मे स्वीकार किया गया है।[2]

उणादिकोश के अनुसार—

उणादिकोश मे महादेव वेदान्तिन ने भी वायु शब्द को वा से 'कृवा पा०' सूत्र द्वारा उण् प्रत्यय लगा कर ही वायु शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार की है।[3]

पौराणिक कोश के अनुसार—

पौराणिक कोश मे उपनिषद्, वेदान्त, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन आदि मे वायु के विषय मे जो उल्लेख उपलब्ध होते हैं उन सबका सार दिया है जो कि निम्न प्रकार से है—उपनिषद और वेदान्त इसे आकाश से उत्पन्न मानते हैं। वैशेषिक दर्शन इसे द्रव्य मानता है। सांख्यानुसार यह स्पर्शतन्मात्रा से उत्पन्न होता है तथा इसे अनिल भी कहा गया है और यह देवता के रूप मे स्वीकार किया गया है।[4]

दयानन्द वैदिक कोश के अनुसार—

'दयानन्द वैदिक कोश' मे वायु के विषय मे इस प्रकार उल्लेख किया गया है—'यो याति स पवन'[5] अर्थात जो गमन करता है वह पवन अर्थात वायु है। 'प्राण इव प्रिय' अर्थात यह प्राणो से भी प्रिय है।[6] वायु को सब जगत का धारण करने वाला और अत्यन्त बलवान कहा गया है।

---

१ हलायुधकोश, पृ० ६०२
वातीति वा गतिगन्धनयो। कृ-वापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण इति उण आनायुक् विण् कृना इति युक्।
२ अमरकोश, १ १ ६१, ६२
श्वसन स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागति।
पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगा॥
समीरमारुतमरुज्जगत्प्राणसमीरणा।
नभस्वद्वातपवन पवमान प्रभञ्जना॥
३ उणादिकोश, १ १।
४ ब्रह्मवत्त पुराण, २ २१ १२।
५ ऋग्वेद भाष्य ६ ४ ५।
६ यजुर्वेद भाष्य २ २ १५।

निर्वचन करा जा सकता है कि 'वा' अथवा 'वी' से ही वायु शब्द व्युत्पन्न हुआ। यास्क तथा दुर्ग आदि ने भी इन्ही दोनो धातुओं से ही 'वायु' शब्द की व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। निरुक्त व्याख्याकारो ने वायु के पर्याय के रूप मे वात शुन, मातरिश्वा, त्वष्टा तथा मरुत् आदि को स्वीकार किया है। लेकिन संस्कृत कोशकारो ने सदागति, अनिल, समीर जगत्प्राण, पवन आदि को भी वायु के पर्याय के रूप मे ही सम्बोधित किया है।

अग्नि, वायु और सूर्य की त्रयी मे इन्द्र वायु के प्रतिनिधि हैं। इन्द्र का वायु के घोड़े ले जाते हैं।[1] इन्द्र वायु के सारथि हैं। विल्सन के अनुसार इन्द्र ही वायु के सारथि माने गए हैं।[2] इन्द्र और वायु क्षत्रिय देव हैं। ये सहस्र आँखो वाले, बुद्धि के अधिपति तथा मन के समान वेगवान हैं। अपनी रक्षार्थ लोग इन्हें आह्वान करके बुलाते हैं।[3]

वायु का इन्द्र से सम्बन्ध

वायु और इन्द्र दोनो अन्तरिक्ष स्थानीय देवता हैं। निरुक्त के अनुसार जहाँ अग्नि और सूर्य को पार्थिव और दिव्य देवता माना है वहाँ वायु और इन्द्र को अतरिक्ष स्थानीय देवता माना गया है।[4] कुछ मन्त्रो मे इन्द्र को वायु का विशेषण भी बनाया गया है।[5] कुछ स्थलों म इन्द्र को वायु के रूप मे परिलक्षित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण म भी कहा गया है कि जो यह वायु है वह इन्द्र है और जो इन्द्र है वही वायु

---

१ ऋग्वेद, १० २२ ४
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्यवज्रिव ।
वही, १० २२ ५
त्व त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रात्मना वह ध्यै ।
२ वही ४ ४६ २
शतना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वा इन्द्रसारथि ।
वायो सुतस्य तृम्पतम ॥
वही, ४ ४८ २
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वा इन्द्रसारथिः ।
वायवाचन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥
द्र०—ऋग्वेद संहिता विल्सन तृतीय भाग पृ० २०६-११।
३ ऋग्वेद १ २३ ३—इन्द्रवायू मनोजुवा विप्राहवन्त ऊतय।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥
४ निरुक्त, ७ ५—तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता अग्नि पृथिवी स्थानो
वायुर वा इन्द्रो वा अतरिक्षस्थान सूर्यो द्युस्थान ॥
५ ऋग्वेद, ६ १४ १०— इन्द्रेण वायुना
वही ६ २७ २—एव इन्द्राय वायवे स्वर्जितरिरिच्यते।

है, जो पवित्र करता है वह इन्द्र अर्थात वायु है।[1] वायु और इन्द्र धन से समृद्ध हैं तथा सोमरस की विशेषताओं को जानते हैं।[2] वायु और इन्द्र ये दोनों उन लोगों को उत्तम मार्ग पर ले जाते हैं जो इन्हें साम प्रदान करता है।[3]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इन्द्र और मरुत दोनों देवता परस्पर अटूट सम्बन्ध रखते हैं। इन्द्र परम ऐश्वर्य का द्योतक है तथा मरुत् तीव्रता से प्रवहमान वायु के सूचक हैं। संहिताओं, ब्राह्मणों आरण्यकों और उपनिषदों में विविध रूपों में इनका वर्णन उपलब्ध होता है। आधिभौतिक एवम् आधियाज्ञिक व्याख्याकार अपनी अपनी दृष्टि से इनका देवत्व प्रतिपादित करते हैं। इन्द्र और मरुत विषयक अनेक आख्यान व कथाएं प्रचलित हैं। इन्द्र द्वारा वृत्रवध, इन्द्र द्वारा सोमपान, इन्द्र की मरुतों द्वारा सहायता आदि सभी वृत्तान्त इनके सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। इससे इनका स्वरूप भी निखर कर सामने आता है। आध्यात्मिक दृष्टि से ये परमात्म तत्त्व के ही द्योतक हैं। इनकी शक्ति ईश्वरीय शक्ति है।



१ शतपथ ब्राह्मण, ४ १ ३ १९
यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः ।
वही, १४ २ २ ६
अयं वा इन्द्रो यो यं पवते ।
२ ऋग्वेद, १ २ ५
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू ।
३ वही, १ २ ६
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् ।
मक्ष्वित्था धिया नरा ॥

तृतीय अध्याय

पाश्चात्त्य विद्वानों को अभिमत 'इन्द्र' एवम् 'मरुत्' का स्थूल स्वरूप

प्रस्तुत अध्याय मे पाश्चात्य एवम तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानो का अभिमत 'इन्द्र' एवम 'मरुत' का स्थूल स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यूरोपीय विद्वानो ने वेदार्थ व वेदानुशीलन प्रस्तुत करते हुए सायणाचार्य के भाष्य को आधार ग्रन्थ के रूप मे लिया है। वैदिक ग्रन्थो के शुद्ध सस्करणो का सम्पादन एव प्रकाशन अनुवाद तथा व्याख्या—इन तीन भागो मे पाश्चात्य विद्वानो द्वारा किया गया वेद कार्य विभाजित किया जा सकता है। प्रबुद्ध, चिन्तनशील व प्रतिभाशाली होने के बावजूद भी पाश्चात्य वैदिक विद्वान वेद के सास्कृतिक एवम् आध्यात्मिक स्वरूप से अपरिचित ही थे। इनकी वेद व्याख्या सामान्य रूप से वायुमण्डल से सम्बन्धित और अनुष्ठान परक है।[1]

वेदो का वेदार्थ व व्याख्यान करने वाले पाश्चात्य विद्वानो को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में उन विद्वानो को लिया जा सकता है जिन्होने प्राचीन भारतीय भाष्यकारो के दोष दिखाए तथा उनकी व्याख्या को निन्दनीय समझा। उनकी स्थापना थी कि आधुनिक युग मे वेद मन्त्रो का अर्थ तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक व ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर बेहतर रूप से किया जा सकता है। बनफी और राथ इसी समीक्षात्मक पद्धति (Critical Method) के समर्थक थे। राथ ने वैदिक जर्मन कोष का निर्माण किया तथा वैदिक भाषा विज्ञान की स्थापना की। राथ के अनुसार रूप तथा अर्थ मे समानता रखने वाले सभी वैदिक शब्दो की बारीकी के साथ तुलना करते हुए वेद के आन्तरिक प्रमाणो के आधार पर प्रसग, व्याकरण एव शब्द निरुक्ति का ध्यान रखते हुए संस्कृत के सन्दर्भ मे वैदिक भाषा के अध्ययन का उपयोग करते हुए तथा अवेस्ता तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान मे उपलब्ध सामग्रियो की उपेक्षा न करते हुए ही वेदार्थ किया जाना उचित है। राथ ने शब्दों की व्युत्पत्ति पर तो जोर दिया किन्तु भारतीय परम्पराओ की पूर्णरूपेण अवहेलना की।[2]

द्वितीय वर्ग मे वे विद्वान है जिन्होने राथ के विरोध मे सायण आदि के मध्यकालीन भाष्यो की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होने स्वीकार किया कि वेद मन्त्र

---

१ A Comparative Analytical Study of the Vedas p 67।

२ A Comparative Analytical Study of the Vedas p 20।

शुद्ध भारतीय हैं। उत्तरवैदिक काल के वाङ्मय और तत्कालीन सभ्यता व संस्कृति के आधार पर ही वेद व्याख्या करना ठीक है।[1] एम०एच० विल्सन, मैक्समूलर तथा ग्रिफिथ आदि ने इसी दृष्टि से वेद-भाष्य किए। परम्परा से अभिज्ञ होने के कारण तथा वेदाङ्ग के पर्याप्त ज्ञान के अभाव से इनके अनुवादों में मध्यकालीन वेदभाष्यों की न्यूनताओं के साथ साथ अन्य दोष भी समाविष्ट हो गए।

तृतीय वर्ग में वे विद्वान हैं जिन्होंने समन्वित वेद व्याख्या पद्धति का समर्थन किया। आर० पिशल तथा के० एफ० गैल्डनर जैसे जर्मन विद्वानों ने आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार व्याख्या करते हुए सायण आदि भारतीय भाष्यकारों का भी सहयोग लिया।

इस समन्वित पद्धति के अनुसार वेद की व्याख्या स्वयं वेद के आधार पर की जानी चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के साथ साथ सायण आदि भारतीय भाष्यकारों से भी यथायोग्य सहायता अवश्य लेनी चाहिए तथा बाह्य विचारों व पूर्वाग्रहों को वेद पर लागू नहीं करना चाहिए। पिशल, गैल्डनर, लुडविग आदि ने इसी पद्धति को अपनाया। गोल्डस्टुकर ने भी प्राचीन भाष्यकारों के योगदान की सराहना की।

"Without the vast information which those commentators have disclosed to us—without their method of explaining the abscurest text, —in one word without their scholarship we should still stand at the outer doors of Hindu antiquity[2]

कालब्रुक, विल्सन, रूडाल्फ राथ, मैक्समूलर, ग्रिफिथ ग्रासमान, व्हिटनी, लुडविग, पिशल गैल्डनर, मैक्डानल, ओल्डन बर्ग, ब्लूमफील्ड, विन्टर नित्स कीथ, स्टीवेन्सन आदि पाश्चात्य वैदिक विद्वानों ने वेदों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया।[3]

---

१ वैदिक रीडर (मैक्डानल), इन्द्राध्ययन, पृ० ३०।

२ वैदिक व्याख्या विवेचन, भूमिका, पृ० ११।

3 An Encyclopaedia of Indian Literature Ganga Ram Garg (Mittal Publishers Delhi 1982)
   (1) Sir Henry Thomes Colebrooke Essay on the Vedas or Sacred writings of the Hindus (1765 1836)
   (2) Horace Hayman Wilson (1786 1860), Rgveda Samhitā (English Translation)
   (3) Rudolph Roth (1826-1896) Atharvaveda Śaunaka Śākhā (Roth & Whitney) Atharvaveda, Paippalāda Śākhā Nirukta Sanskrit Worter Buch (Nāma Vaidika Kośa)
   (4) Max Muller Fridrich (1823 1900) Rgveda (Sāyana Bhāṣya), Rgveda (Text) Rkprātiśākhya (Text & German

इन्होंने वदिक ग्रन्थो के शुद्ध सम्पादन के साथ साथ अनुवाद, कोश व विवेचनात्मक ग्रन्थ निर्माण का कार्य भी किया।

Translation) History of Ancient Sanskrit Litrature The Vedas India what can it teach us The Sacred Books of the East English Translation of Brhaddevatā Hymns of Rgveda in Samhitā and Pada Texts Essays on Comparative Mythology

(5) T H Raejh Griffith, (1826 1906), English Translation of Four Vedas

(6) Hermann Grassonann (1809 1977) Worter Buch Juin Rg-veda (Sanskrit German Dictionary of the words of Rg-veda), German Translation of Rgveda

(7) William Dwight Whitney, (1827 1894) Atharveda (Śaunaka Śakha) (Roth & Whitney) Atharvaveda Prātisākhya Taittirīya Pratisakhya Vedic Research in Germany, History of Vedic Texts

(8) J C Ludwig (1792 1862) Rgveda (English Translation)

(9) Richard Pischel (1849 1908) History of Ancient Indian Literature

(10) Karl F Geldner (1152 1929) German Translation of Rgveda Vedische Studies (Vedic Studies)

(11) Arthur Antony Macdonell (1864 1930) Sarvanukramani (Critical Editions) A History of Sanskrit Literature Brhaddevatā, Vedic Grammar Vedic Mythology, Vedic Reader India s Past Vedic Index of Names and Subjects Vedic Religion English Translation of Uṣas, Hymns of the Rgveda Lectures on Comparative Religion Vedic Metre and Vedic Accent

(12) Hermann Oldenberg (1854 1920) Hymns des Rgveda Vedic Hymns Religion des Veda (The Religion of the Veda) Ancient India It s Language and Religion Translation of Agni Hymns of the Rgveda (I st Mandala), Rgveda Text Critische und Exegetische Noten A Hitory of Ancient Indian Literature in German German Translation of Sankhayana Gṛhyasutra

(13) Maurice Bloomfield (1855-1928) Atharva Samhitā (Paippalada Śākha) Text Edition Hymns of the Atharvaveda, Vedic Concordance Rgvedic Repetitions The Atharvaveda and Gopatha Brahmana The Vedic Variants Religion of the Veda Kauśika Sutra of Atharvaveda

इन विदेशी विद्वानों ने भी वेदाध्ययन के प्रति पूर्ण रूपेण पक्षपात रहित होने का परिचय नहीं दिया। वैदिक धर्म को अपमानित करने के लिए उसे हेय रूप में प्रस्तुत किया गया। ईसाई धर्म को श्रेष्ठ बताकर भारतीयों को उसकी ओर प्रेरित किया गया। मैक्समूलर के पत्रों व मोनियर विलियम्स द्वारा संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी की भूमिका में लिखे शब्दों से इसकी पुष्टि का प्रमाण मिलता जाता है।[1] इन्होंने वेदों में आदिम युग की बहुत पिछड़ी व अन्धविश्वास ग्रस्त संस्कृति की ही खोजने में तत्परता की। वैदिक देवताओं और उनके उपासकों को असभ्य कहा गया।[2]

पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित एतद्देशीय विद्वानों ने भी उनका समर्थन किया। श्री राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा लिखित 'इण्डो आर्यन्स' पुस्तक में प्राचीन आर्यों के सम्बन्ध में लिखते हुए उन्हें गोमांस भक्षक व मद्य सेवन करने वाला सिद्ध किया है। वैदिक-काल में विवाह के अवसर पर भी गाय को मार कर उसके मांस से अतिथियों को तृप्त किया जाता था। वैदिक काल में सुरा और शराब एक लोक प्रिय पदार्थ था। यह पेय

(14) Maurice Winternitz (1863 1937)
Ein Hymns and Savitar A Concise Dictionary of Eastern Religions Race and Religion Ethics in Brahmanic Literature, A History of Indian Literature, Some Problems of Indian Literature Āpastamba Mantra Patha

(15) Arther Berriedala Keith (1879 1944) Aitareya Āranyaka (Text Edition) The Religion and Philosophy of the Veda and Upanisad Rgveda Brahmanas (Aitareya and Kausitaki) Veda of the Black Yajur School entitled Taittiriya Samhitā Śankhyana Āranyaka (Text Edition) Vedic India of Names and subjects (Macdonell and Keith)

(16) J Stevenson Sāmaveda (English Translation) Rgveda (First Aṣṭaka) English Translation

1 (क) वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ३२-४०
(ख) यजुर्वेदभाष्य विवरण, भूमिका, पृ० ७०-७३
(ग) वेद—मीमांसा भूमिका, पृ० १४ १७
(घ) वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ० ३३ ३७

2 A large number of vedic hymns are childish in the entrance editions low and common place'
Chips from a German Workship II ed 1866 p 27
वैदिक व्याख्या विवेचन, पृ० १३

साम से भी अधिक नशीला था। इन भ्रामक और निराधार निष्कर्ष निकालने में इन वेद विद्वानों को किञ्चित भी संकोच नहीं हुआ।[1]

वास्तव में जिस प्रकार सायण आदि का दृष्टिकोण यज्ञ की किसी प्रक्रिया को सम्मुख रख कर मन्त्र का नियोजन करना था, उसी प्रकार पाश्चात्य भाष्यकारों का लक्ष्य वेदों का भाष्य करते हुए विकासवादी दृष्टिकोण से विचार करना था। मैक्समूलर ने सायणभाष्य का अनुवाद करते हुए विकासवाद को अपने सामने रखा। विकासवाद के सिद्धान्तानुसार आदि मानव सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, वायु आदि शक्तियों को देखता था तथा वह इन सबको देवता मान कर पूजा करता है। इसलिए मैक्समूलर की दृष्टि में वेदों में एकेश्वरवाद का विचार सम्भव नहीं। विभिन्न देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान होने के कारण वेद में एकत्ववाद के स्थान में बहुत्ववाद होना स्वाभाविक है। चन्द्रमा एक देवता है। पृथिवी एक देवता है तथा वेद का ऋषि इन सब देवताओं की पूजा करता था।[2]

पाश्चात्य भाष्यकारों के अनुसार वेद का ऋषि जब अग्नि की उपासना करता था तब उसमें उन सब गुणों का भी वर्णन कर देता था। जो किसी भी अन्य देवता में पाये जाते हैं जब वायु की उपासना करता था तब वायु में भी अन्य सब गुणों का वर्णन कर देता था। उनके अनुसार एकेश्वरवाद का विचार मानव मस्तिष्क में बहुत बाद में आया। इसी विचारधारा पर चलते-चलते ही मैक्समूलर ने एकेश्वरवाद (Monotheism) और बहुदेवतावाद (Polytheism) के स्थान पर हीनोथीइज्म (Honotheism) की स्थापना की। जब किसी देवता की उपासना की जाय तब उसी में सब गुण आरोपित कर दिए जाएं व अन्य देवताओं को उस देवता से हीन कल्पितकर लिया लिया जाए तो हीनोथीइज्म कहलाता है।[3]

वेदों में एक ईश्वर की उपासना का स्पष्टतया घोषित करते हुए ऋग्वेद के

१ (क) वेदों का यथार्थ स्वरूप पृ० ३७
(ख) Vedic Age pp ३८६ ३८२

2 A Comparative & Analytical study of The Vedas pp 32 3²

3 Each vedic poet seems to exalt the particular god whom he happens to be singing to a position of supremacy It would be easy to find in the numerous hymns of the Veda, passages in which almost every single God is represented as supreme and absolute

Ancient Sanskrit Literature p 353

The Concept of God in the Vedas, p 29

एक मन्त्र में कहा गया है कि ईश्वर एक है उसे अग्नि, यम आदि नामों से कहा जाता है।[1]

महर्षि अरविन्द के अनुसार पाश्चात्य वेद भाष्यकार वेदों का भाष्य करते हुए विकासवाद के पूर्वाग्रह से इतने अधिक ग्रस्त हो जाते हैं कि जहाँ वेदों का अर्थ विकासवाद की पुष्टि नहीं करता वहाँ वे अर्थ को तोड़ने मरोड़ने में संकोच नहीं करते। यदि कभी वैदिक व्याख्या का कोई ऐसा प्रयत्न किया गया जिसमें चतुराई पूर्ण कल्पना के लिए अधिक से अधिक खुली लगाम छोड़ दी गई है जिसमें सन्देहास्पद निर्देशों को निश्चित प्रमाणों के तौर पर झट से स्वीकार कर लिया गया है तो वह निस्सन्देह पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया वेद व्याख्या का कार्य ही है।[2]

महर्षि अरविन्द वेदों में एकेश्वरवाद की सिद्धि का ही समर्थन करते हैं।[3]

इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए भी फ्रेडिक मैक्समूलर, ए० ए० मैक्डानल, एच० एच० विलसन बी० जी० रैले, जे० मुहर, जेड० ए० रैगाजीन, जे०

१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
ऋग्वेद, १ १६४ ४६

'The call Him Indra (God of Supreme Power), Mitra (The friend of all), Varuna (the most desirable being) Agni (the all knowing), Divya (the shyning one) and Garutman (the mighty soul) The sayes describe the one being in various ways, calling Him Agni, Yama and Matrisāv
The Concept of God in the Vedas p 24

२ महर्षि दयानन्द, पृ० १३

3 'What is the main positive issue in this matter? An interpretation of the veda must stand or fall by its central conception of the vedic religion and the amount of support given to it by the intrinsic evidence of the veda itself The vedic hymns are chanted to the one deity under many names, names which are used and even designed to express His qualities and powers Agni contains all other divine powers within Himself, the Maruts are described as all the gods One deity is addressed by the names of others as well as his own, or most commonly, he is given as lord and kind of the Universe attributes only to the Supreme Deity'
Dayānanda and the Veda p 17

एन० फरगुहर और एच० डी० ग्रिसवाल्ड आदि पाश्चात्य विद्वानो के महान परिश्रम को भुलाया नही जा सकता। इन्होंने यथामति अपना मत व्यक्त करने मे सकोच नही किया। अब इनके मतानुसार इन्द्र और मरुत का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

मक्समूलर ने इन्द्र को उज्ज्वल दिन का देवता माना है। इसका अश्व सूर्य है। मरुत्गण इसके साथी हैं।[1] सायण ने ऋक्संहिता पर भाष्य लिखा है। इसी सायण कृत ऋक्संहिता भाष्य पर मैक्समूलर ने तथा विलसन ने भी अपना अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चलता है कि विलसन ने तो अनुवाद करते हुए सायणभाष्य का ही अनुकरण किया है, किन्तु मैक्समूलर ने अनुवाद करते हुए अपने स्वतन्त्र विचारो को भी बहुत जगह प्रस्तुत किया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र मे 'उस्रिया' शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] सम्पूर्ण मन्त्र का अनुवाद करते हुए विलसन ने सायण भाष्य को ही आधार बनाया।

'हे इन्द्र तुमने मरुतो के साहचर्य से गुहा मे छिपाई गई गायें खोज निकाली।'[3] मैक्समूलर के द्वारा उस्रिया का अर्थ उषायें, दिन और बादल किया गया है।

हे इन्द्र! तीव्रगामी मरुतो की सहायता से तुमने उजले दिनो अथवा बादलो को, जो कि छिपे थे, प्राप्त कर लिया'।[4]

इन्द्र की शक्ति के द्वारा प्रत्येक रात्रि के अन्त मे उषायें, दिन तथा बादल मुक्त

---

1 The Sacred Books of the East Vol XXXII, Vedic Hymns, Part-I, Rig 1 6 1 Note 1, p 16
The poet beings with a some what abrupt description of a sunrise Indra is taken as the god of the bright day whose steed is sun and whose companions are the maruts, or the strem gods

२ ऋग्वेद, १ ६ २५
वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि ।
अविन्द उस्रिया अनु ।

3 Ibid R V 1 6 5 p 37
Associated with the conveying Maruts the traversers of place difficult to access thou Indra last discovered the cows hidden in the cave

4 Ibid R V 1 6 5, p 14
Thou O Indra, with the swift Maruts, who break even through the strong hold hast found even in their hidding place the bright ones (days or clouds)

किए जाते हैं। इन्द्र के साथी मरुत इसमे सहायता करते हैं।[1] जल को बरसने से रोकने वाले वृत्र को मार कर पृथ्वी पर वर्षा करके मानवों का कल्याण करना ही इन्द्र का महान् कार्य है।[2]

मैक्डानल के अनुसार इन्द्र का स्वरूप

पाश्चात्य वैदिक विद्वानों मे प्रो० मक्डानल ने वैदिक देवताओ का विवेचन करने म घोर परिश्रम किया। फलस्वरूप वदिक माइथालोजी ग्रन्थ का अंग्रेजी म प्रणयन हुआ। डा० सूर्यकान्त न इसी ग्रन्थ का 'वैदिक देव शास्त्र' के रूप म हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। प्रो० मैक्डानल इन्द्र को अनिश्चित अर्थ वाला कल्पित देवता स्वीकार करते हैं। वदिक ऋषियों ने इन्द्र की भिन्न भिन्न रूप से स्तुति की है। वज्रपाणि इन्द्र को जो कि युद्ध मे अन्तरिक्षस्थ दानवों को छिन्न भिन्न करता है, योद्धा लोग अनवरत आमन्त्रित करते हैं।[3] युद्ध के प्रमुख देवता होने के नाते उन्हें भीम (भयकर) शत्रुओ के साथ युद्ध करने वाले आर्यों ने सहायक के रूप मे और सभी देवताओं की अपेक्षा कहीं अधिक बार आमन्त्रित किया गया है। साधारण ढग से तो इन्द्र को अद्वितीय उदारचेता सहायक कहा गया है।[4] उसे उपासको मे मुक्ति दाता और उनके अधि-वक्ता, उनकी शक्ति, उनकी सुरक्षा की भित्ति के रूपो चित्रित किया गया है। उनके मित्र को कभी कोई क्षति पराभूत नहीं करती। अनेक बार तो इन्द्र को उपासका का

---

1 Ibid, Note 3 p 44
'The bright cows are here the cows of the morning, the downs or the days themselves, which era represented as rescued at the end of each night by power of Indra or similar solar gods Indra's companions in that daily rescue are here the Maruts, the sterms the same companions who act even a more prominent part in the battle of Indra against the dark clouds These two battles are often mixed, up together, so that possibly *Usriyah may have been meant for clouds*

2 Ibid R V I, 1 6 5 8 Note 1, p 198
Here again Indra claims everything for himself, denying that Maruts in any way assisted him while performing his great deeds These deeds are the killing of Vritra, who witholds the waters i e the rain from the earth and the consequent libera tion of the waters so that they flow down freely for the benefit of Manu, that is, of man

३ ऋग्वेद, ४ २४ ३
तमिन्नरो विह्वयन्ते समीके।

४ शतपथ ब्राह्मण, ८ ४ १ १
म त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता।

मित्र अथवा कभी कभी उनका भाई भी बताया गया है। उन्हें पिता या पिता माता भी कहा गया है। उनके दोनों हाथ धन से भरपूर हैं। मघवन विशेषण ऋग्वेद में इनका अपना ही बन गया है और वेदोत्तर कालीन साहित्य में तो यह इनका नाम ही बन गया है।[1] यद्यपि इन्द्र की सारी प्रधानगाथा वृत्र युद्ध ही है तथापि शौर्य वीर्य के कर्त्ता होने के नाते उनके साथ और बहुत-सी कहानियाँ भी जुड़ गई हैं।[2] यद्यपि इन्द्र के द्वारा दासों या दस्युओं पर पाई विजय के आंशिक संकेत जहाँ तहाँ मिलते हैं मौलिक रूप में ये लोग मानवीय शत्रु हैं, जिनका निष्कर्ष है—यद्यपि इन्द्र के द्वारा पाई गई व्यक्तिगत दस्युविजय के वर्णनों में गाथात्मक तत्त्व घुल मिलकर अस्पष्ट हो गए हैं, तथापि इन गाथाओं का आधार पार्थिव एवम् मानवीय है—इन्द्र के ये शत्रु पुरोहितों के पूर्वज नहीं प्रत्युत राजकुमार योद्धा हैं, जो सम्भवतः ऐतिहासिक व्यक्ति रहे हैं।[3]

प्रो० ए० ए० मैक्डानल वेदों के अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध करते हैं कि इन्द्र को सूर्य कहा गया है। तीन या चार मन्त्रों में इन्द्र का तादात्म्य स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से सूर्य के साथ किया गया है। उत्तम पुरुष में बोलते हुए इन्द्र एक बार कहते हैं कि वे ही मनु ही थे वे ही सूर्य थे।[4] एक बार उन्हें सीधे सूर्य ही कहा गया है।[5] एक दूसरे मन्त्र में सूर्य और इन्द्र का एकत्र आह्वान इस प्रकार किया गया है मानो वे दोनों एक ही व्यक्ति हों। एक मन्त्र में इन्द्र के लिए सवितृ—विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[6] शतपथब्राह्मण भी इन्द्र की तद्रूपता सूर्य के साथ स्थापित करता है और वृत्र की चन्द्रमा के साथ।[7] यहाँ यह तथ्य ज्ञातव्य है कि यद्यपि मैक्डानल वेद के अन्तःसाक्ष्य से यह दिखाते हैं कि इन्द्र को ही सूर्य कहा गया है फिर भी वे ऋग्वेद में इन्द्र पद को सूर्य अर्थ का वाचक स्वीकार नहीं करते। वे इन्द्र का लोकोत्तर उत्कर्ष प्रतिपादित करने पर भी इन्द्र शब्द को परमेश्वर वाचक स्वीकार नहीं करते।[8]

---

१ वैदिक देवशास्त्र पृ० १५२-१५४

२ वही, पृ० १५५

३ वही, पृ० १५६

४ ऋग्वेद ४, २६, १
अहं मनुरभवम् सूर्यश्च।

५ वही, १०, ८९, २।
स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।

६ वही २, ३०, १।
ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः।

७ शतपथ ब्राह्मण १, ६, ४, १८।
तद्वा एष एवेन्द्रो य एष तपत्यथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः।

८ वैदिक देव शास्त्र, पृ० १३६, १३९-१४०।

ऋग्वेद का अंग्रेजी में सायण भाष्य के अनुसार अनुवाद प्रस्तुत करने वाले पाश्चात्य विद्वान् एच० एच० विल्सन इन्द्र को तीक्ष्ण सींगों वाले साड की तरह भयंकर मानते हैं जो अकेले ही सब लोगों को अपने स्थान से दूर कर देता है। वह अदानशील और भक्ति रहित व्यक्ति के धनों को नष्ट कर देता है तथा दानशील भक्त जन को धनों से समन्वित करता है।[1] सायण भाष्य का ही अनुकरण करते हुए विभिन्न प्रसंगों में इन्द्र के भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं। कहीं पर इन्द्र सूर्य को चमकाने वाला है तो कहीं इन्द्र ही सूर्य में वर्णित है।[2] इन्द्र ने अपनी शक्ति से स्वर्ग और पृथ्वी को विशाल बनाया है। इन्द्र ने सूर्य को प्रकाशित किया है। इन्द्र में सब प्राणी समाये हैं। अभिषुत सोम की धाराएँ इन्द्र की ओर प्रवाहित होती हैं।[3] इन्द्र पृथ्वी तथा मनुष्यों का स्वामी है और उस विविध धन सम्पदा का भी स्वामी है जो पृथ्वी पर विद्यमान हैं। उस कारण वह दानी जन को धन प्रदान करता है। हमारे द्वारा स्तुति किया गया वह इन्द्र हम धनों से परिपूर्ण करे।[4]

प्रो० विल्सन के द्वारा कृत ऋग्वेद के अंग्रेजी अनुवाद के अनुसार इन्द्र सारे चराचर का स्वामी है। विश्व का धारक है। जिस प्रकार दूध से भरपूर गाय के स्तन होते हैं उसी प्रकार सोम से भरपूर पात्रों से इन्द्र की स्तुति की जाती है।[5] ऋग्वेद के इन्द्र से सम्बन्धित मन्त्र का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए वे लिखते हैं कि हे इन्द्र! जैसे ही तुम पैदा हुए तुमने अपने बल हेतु सोम को पिया, माता तुम्हारी (अदिति) ने तुम्हारी महत्ता की प्रतिपत्ति की। इसलिए तुमने विशाल अन्तरिक्ष को परिव्याप्त किया हुआ है। तुमने युद्ध में देवों के लिए धन प्राप्त कराया है।[6]

---

1 Rigveda Sambhta (H H Wilson), 5, 2, 29, 1 Vol V pp 162 63
Indra who is fomidable as a sharp hormed bull singly expels all men (from their stations) Than who art the (despoiler) of the ample wealth of him who makes no offerings at! the giver of riches to the presenter of frequent oblations

2 Ibid 5 8 14 30, Note 3, p 244

3 Ibid, 5 7 26 6 p 226

4 Ibid 5 3 11 3 Vol 5, p 76
Indra is lord of the earth and of men (his is) the various wealth that exists upon the earth, thence he gives riches to the donor (of oblations) may be, glorified by us, bestow upon us wealth

5 Ibid, 5 3 21 22 p 85
We glorify thee, hero (Indra), the lord of all moveable and and stationery things, the beholder of the universse,(with ladles with soma) like (the udders of) unmilked kine

6 Ibid, 5 6, XXIII 3 p 186
As soon as born Indra thou last drunk the soma for thine invigoration thy mother (Aditi) yroolaimed (thy greatness, hence thou last filled the vast firmament, Indra thou last gained in battle troasure for the gods

पाश्चात्य वैदिक विद्वान वी०जी० रैले ने शरीर-विज्ञान की दृष्टिगत रखते हुए वैदिक देवताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया और यह प्रतिपादित किया कि वैदिक देवता मानव मस्तिष्क आदि अंगों में काम करने वाली विविध नाड़ियाँ और उनकी शक्तियाँ हैं। इन्होंने इन्द्रादि देवों के अस्तित्व को मानव मस्तिष्क में प्रतिपादित करने में आध्यात्मिक प्रक्रिया को अपनाया है। मस्तिष्क का सम्पूर्ण चेतना का केन्द्र ही इन्द्र कहा गया है। इस केन्द्र के समीप स्थित वेंटीकुलर कैवटीज कही जाने वाली नाड़ियों में एक रस भरा रहता है। यह रस ही सोमरस कहलाता है। इस सोमरस का पान इन्द्र करता है। रैले के अनुसार इन्द्र ही प्रधान चेतना है। वृत्र अवचेतन रूप है। इन्द्र और वृत्र की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता है। अन्त में इन्द्र के द्वारा वृत्र का हनन कर दिया जाता है।

'ओरिजनल संस्कृत टैक्स्ट्स' ग्रन्थ के रचयिता जे० मुइर इन्द्र के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि इन्द्र हवियों का पान करने वाले हैं। वह सोम रस को बार बार पीकर अपनी सारी पिपासा शान्त करते हैं। सोम पान के पश्चात इन्द्र की धमनियों में शक्ति का संचार हो जाता है। इन्द्र का माथा चमकना प्रारम्भ कर देता है। इन्द्र की आंखों में तीव्र ज्वालाएँ निकलती हैं। वह अपने सखाओं को आह्वान करता है तथा उन्हें उत्साहित करते हुए शत्रुओं का नाश करता है।[3] इन्द्र वैदिक युग में आर्यों का लोक प्रिय राष्ट्रीय देवता था। मूल रूप में वरुण से सम्बन्धित उच्च विचार वैदिक युग में इन्द्र के प्रति स्थानान्तरित हो गए। वैदिक युग की सबसे बाद की कृति ऋग्वेद के दशम मण्डल में वरुण के प्रति एक भी सूक्त नहीं कहा गया है।[4] आध्यात्मिक पक्ष को दृष्टिगत

1 The Vedic Gods as Figures of Biology, (V G Rele) p 97

2 Indra is the conscious force residing in the cortic layer the brain and vrtra and his allies the wicked demons and serpants are the subconscious forces in the nerve centres which appear as elivated projections on the floor of the fourth ventrical behind the medulla oblongata I am of opinion that this episode of the Idra Vrtra fight is the germ of yogic practices and the phenomena of later yogic literatures the vrtra of Vedic literature being replaced in yoga by Kundalini The biological theory thus interprets the fight between Indra and Vrtra as a conflict between the conscious and inconscious from which the former emerges victorious Regarded as a whole the attributes of Indra ralate of physical control over the physical body Ibid p 103 104

३ मूल संस्कृत उद्धरण, पृ० १४४

४ वही पृ० ८७, १३०-१३१

रखते हुए इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि शब्द एक ही परमात्म-तत्त्व की स्तुति में प्रयोग किए गए विभिन्न पद स्वीकार किए गए हैं।[1] मुइर का मत है कि तारों से भरे आकाश में, उषा में, आकाश में ऊपर उठते हुए प्रातःकालीन सूर्य में, मेघ गर्जन और विद्युत् में, इन वैदिक ऋषियों ने विभिन्न दिव्य और ऐसी शुभ अथवा क्रुद्ध शक्तियों को मिश्रित देखा जिनकी प्रकृति उन भौतिक घटनाओं अथवा दृश्यों के अनुरूप थी, जिनमें वह प्रकट होती थी। ऐसी स्थितियों में किसी देवता अथवा शक्ति को उच्च स्तर पर रखने और दूसरे स्थान पर उसे ही किसी अन्य देवता के अधीनस्थ कर देने के तथ्य को देखकर, कभी उसे स्रष्टा और कभी सर्जित देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए।[2]

'वैदिक इण्डिया' के लेखक जेड० ए० रेगोजीन इन्द्र को आँधी तूफान और युद्ध का देवता स्वीकार करते हैं। इन्द्र प्राचीनकाल के आक्रमण करने वाले आर्यों का नेता था। ये युद्ध करने वाले आर्य सिन्धु से पूर्व में यमुना नदी की दिशा में अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए बढ़े। इन्द्र से ही यह प्रार्थना की जाती है कि हमको धन धान्य से पूर्ण करो तथा हमारा नेतृत्व करो। इससे यही भाव अभिप्रेत प्रतीत होता है कि दस्युओं को पराजित कर पूर्व की ओर आगे बढ़ने में हमारा मार्गदर्शन करो।[3] रेगोजिन भी इन्द्र सम्बन्धी मन्त्रों के वर्णनों में किसी सन्तोषजनक एवम् सुसंगत निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ ही रहते हैं।[4]

१ ऋग्वेद, १.१६४.४६

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

२ मूल संस्कृत उद्धरण, प्रस्तावना पृ० ८

3 Vedic India (R V Regozine), p 199

As the God of war on earth between men and men Indra is not merely the dryas champion and helper in single battles, he is the leader of the Aryan eastward movement generally it is he who guides them from the Indus to the Yamuna and makes their path one of conquest Look forward Indra as a leader and guide us onwards towards greater riches Take us safely across lead us wisely and in safety Nothing could mean clearly pushing eastward crossing rivers dislodging dasyus

4 Ibid, p 202

There is quite a number of passages even of whole hymns full of allusions, to Indras birth childhood, early exploits and the like But the wording is so obscure most of the things all ded to are so utterly unknown to us that nothing coherent or satisfactory can be made out of all these texts

जे०एन० फरगुहार और एच०डी० ग्रिसवोल्ड ने 'दि रिलीजन आफ दी ऋग्वेद' ग्रथ का निर्माण किया। इसमे भी इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति व सम्बन्धित विचारो को सदेह युक्त एवम निश्चितता रहित माना गया है। इन पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार इन्द्र का मूल भौतिक स्वरूप भी कुछ अनिश्चित ही है। कोई इसे आधी वर्षा का देवता मानता है। पाश्चात्य वैदिक विद्वान हिलेब्रान्ट इसे सूर्यदेव कहते हैं। बोगाजकाई मे एक सूची मिली है। जिसमे मित्र वरुण एवम नासत्य के साथ इन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि पहले इन्द्र एक महान देव के रूप मे सुप्रसिद्ध एव सुप्रतिष्ठित थे। अवेस्ता मे असुरो की सूची मे इन्द्र और अन्द्र का नाम आया है।[1]

आल्डनवर्ग भी इन्द्र के स्वरूप निर्धारण मे कठिनाई अनुभव करते हैं वह तो प्रागैतिहासिक देवता है। इसे भारत यूरोपीय काल का देवता भी कहा जा सकता है।[2] वैदिक काल मे भारतीय युद्ध कार्यों मे व्यापृत रहते थे। पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा की ओर बढने मे युद्ध के देवता के रूप मे इन्द्र ने मार्ग प्रशस्त किया है।[3] इस

---

1 The Religion of Rgveda p 177

The name Indra is of uncertain derivation and meaning being more opague than that of any other divine name in the R V the resultant is that there is some uncertainty as to his original physical basis For most scholars Indra is a storm god who sends thunder and lighting but for Hillebrant he is an ancient sun god In the Boghaz kai Indra is mentioned in the form 'In der alongwith Mitra Varuna and Nasatya (1400 c c) Hence he must have been recognised at that time as a great god In the Avesta he is metioned twice in the veriant form Indra or Andra The name occures in the list of demons hence it is clear that Indra like the other pre-zoroastrian daivas was reduced at the great reform to the status of an evil spirit

2 Ibid p 180

What is Indra ? Lightening or sun ? And what are the waters ? Atmosphere or earthly ? An answer to these questions is compli cated by the fact that Indra is confessed a prehistoric god belonging to the Indo-Iranian and possibly even to the Indo Europian period

3 Ibid, p 196

These passages reveal at least so much of history as to make it clear that the vedic Indians are often at war among themselves Indra the ward god of Vedic peoples was naturally also the pattern and gude of the Aryan in their migrations eastward

वेदों के अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध करना तो असम्भव ही प्रतीत होता है। आर्य लोगों ने युद्ध करते हुए भारत के पश्चिमी देशों की ओर गमन नहीं किया।'[1]

पाश्चात्य वैदिक विद्वानों ने इन्द्र सम्बन्धी प्रमाणों में अधिकतया शब्दार्थ मात्र ही प्रस्तुत किया है। शब्दानुवाद में भी इन्द्र को अस्पष्टार्थक और काल्पनिक देवता ही माना है। वस्तुतः इन्द्र को ऋग्वेदानुसार सत्य कहा गया है।[2]

प्रायः विदेशी विद्वानों ने 'मरुत' शब्द को क्रमागत से सम्वर्धित तथा तीव्र गति से बहने वाली वायु का सूचक माना है। वलफे, कून, मायर, श्रोडर आदि विद्वान, आकाश में विचरण करने वाली प्रेतात्मा के रूप में मरुतों का स्वरूप वर्णन करते हैं।[3] मरुत बड़े शक्तिशाली एवम् पराक्रमी देवता हैं। ये पर्वतों को हिला देने की क्षमता रखते हैं। द्युलोक और भूलोक मरुतों के भय से काँपते हैं। मरुतगण सूर्य को भी ढक लेते हैं। ये वृक्षों को भी तोड़ डालते हैं। इन्हें आंधी व जल प्रलय का देवता माना गया है।[4] वर्षा करना मरुतों का प्रधान कार्य है। मरुत् वर्षा से आवृत हैं। वे समुद्र से उठकर वर्षा बरसाते हैं। वे सूर्य के नेत्र को मूंद देते हैं। वर्षा आने पर मरुत बादलों के द्वारा घोर-अन्धकार कर देते हैं।[5]

मरुत जब वायु के साथ दौड़ते हैं तो चारों ओर कुहरा बिछा देते हैं। इनके द्वारा की गई वर्षा को आलंकारिक रूप 'दुग्ध' व 'घृ' आदि नामों से कहा गया है। मरुत वर्षा करके जन जानवरों को औषध व घृतादि प्रदान करते हैं।[6] मरुतों का रुद्र इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं से भी सम्बन्ध है। इन्द्र द्वारा विसृष्टि जल को 'मरुत्वती' नाम दिया गया है।[7] मरुतों को 'पुरुद्रप्सा,' 'दस्मिन' और 'सुदानव' विशेषण प्रदान किए गए हैं। वे गरमी को दबाते हैं। अन्धकार को नष्ट करते हैं। मरुत सूर्य के लिए भी पथ विस्तृत हैं। ये गर्जन करते हैं इसलिए इन्हें गायक कहते हैं। ये दिव्य गायक हैं। इन्द्र द्वारा अहि का संहार किए जाने पर मरुतों ने गीत का गायन किया। इससे इन्द्र में शक्ति का संचार हुआ।[8]

---

१ गुरुकुल पत्रिका, मई १९७४ पृ० २५२-५५
ऋग्वादिवेदचतुष्टयाधारेणार्यसभ्यतायां निर्णयं कथं समीचीन
२ ऋग्वेद, ८-१९-८
३ रिलीजन प्रथम भाग पृ० १५३, १५४
४ वैदिक देव शास्त्र, पृ० १९७
५ ऋग्वेद, १, ७४ 		वातत्विषो मरुतो—महिना द्यौरिवोरव।
६ ऋग्वेद, ७-५६-१२ 		शुचो वो हव्या—शुचय पावका?
७ वही, ९-८०-४
निरिन्द्र भूम्या अभिवृन्न जघन्य निर्दिव।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अप ॥
८ वैदिक देव शास्त्र, पृ० २००

सोमयाग के बन्धन मे इनका भेद स्पष्ट हो जाता है। मरुतो के लिए माध्यन्दिन और सायकालीन सवन विहित किए गए हैं और वायु के लिए प्रात कालीन सवन निश्चित हैं। चातुर्मास यज्ञ मे मरुतो को स्थान मिला है। विश्वामित्र के कुल के साथ मरुतो की उपासना का सम्बन्ध है। विद्युत् वायु तथा वर्षा के साथ स्थिर सम्बन्ध होने से ऋग्वेद मे मरुत तूफान के देवता के रूप मे सम्बोधित किए गए हैं। भारतीय व्याख्याकारो ने मरुतगणो को वायुओ का ही प्रतीक माना है। वैदोत्तरकाल मे मरुत का अर्थ वायु ही लिया जाता है।[1] वायु एक ऐसा देवता हैं जिसकी अवधारणा दृश्यमान भौतिक तत्व से प्रतीत होती है। वायु अन्तरिक्ष के प्रतिनिधि देवता हैं। इन्द्र अन्तरिक्ष के सर्वप्रमुख देव हैं। दोनो का तादात्म्य होने से दोनो म से किसी को भी महत्त्वपूर्ण देव स्वीकार कर लिया गया है।[2] वायु शब्द वायु देवता का तथा वात शब्द भौतिक वायु का द्योतक है। वायु की इन्द्र के साथ भी स्तुति की गई है।

'वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान इस निरुक्तवचन से स्पष्ट होता है कि इन दोनो देवताओ को अत्यन्त दृढ रूप म परस्पर सम्बन्ध समझा जाता था।

निष्कर्ष रूप म कहा जा सकता है कि पाश्चात्यविद्वानो एवम तदनुयायी राजेन्द्र लाल मित्र आदि भारतीय विद्वानो की दृष्टि मे इन्द्र एवम मरुत देव अपना स्थूल शरीर रखते हैं। उन्हे आधिभौतिक दृष्टि से ही शरीर धारी देव के रूप म जाना जाता है। इन्द्र शक्तिशाली व देवाधिदेव है। मरुत देव भी इन्द्र के सहायक देव हैं। ओरियन्ट एण्ड आक्सीडेन्ट मे बनफे न मरुत् को मूल रूप से आकाश मे विचरण करती हुई प्रेतात्माओ का वाची माना गया है। कून, मायर एवम थयोदर आदि पाश्चात्य विद्वान भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। राय के मतानुसार प्राचीनतर 'देव समुदाय' से सम्बन्ध रखने वाले वरुण देव का महत्त्व ही ऋग्वैदिक काल मे इन्द्र की ओर सक्रमित हो गया। वृत्र की विजय मे मरुतो ने इन्द्र की सहायता की। इन सब तथ्यो म यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य विद्वान इन्द्र और मरुत को शरीरधारी देव स्वीकार ही करते है। शारीरिक पौरुष और भौतिक लोक पर आधिपत्य इन्द्र की विशेषता है।

---

१ वैदिक देवशास्त्र पृ० २०३

२ (क) निरुक्त, ७ ५

तिस्र एव देवता इति नरुक्ता,

वायुर्वा इन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थाना ॥

(ख) बृहद्देवता, १ ६५

अग्निरस्मिन् अथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव वा।

(ग) शतपथ ब्राह्मण, १ ३ १८

यो वै वायु स इन्द्रो य इन्द्र स वायु ।

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत्' का पारमार्थिक स्वरूप

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में इन्द्र एवम् मरुत का पारमार्थिक स्वरूप वर्णन करने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि धर्म और समाज में नव जागरण का शंख फूंकने वाले स्वामी दयानन्द ने वेद, स्मृति एवम् दर्शन ग्रन्थों के आधार पर जो स्वरूप वैदिक विचार धारा प्रस्तुत की उसे समझ लिया जाय। दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। दर्शन से सीधा सा अभिप्राय है सांसारिक और पारमार्थिक सुखों की सिद्धि का प्रशस्त करने वाली विचार दृष्टि। यदि हम भारत के सांस्कृतिक इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चार्वाक की भौतिकवादी दृष्टि का और शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन का व्यक्ति और समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। भारतीय दर्शनों में विश्व के तत्वों का विवेचन करने के साथ-साथ साधना मार्ग का भी निरूपण किया गया है। स्वामी दयानन्द के दर्शन को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि विश्व में तीन तत्त्व हैं—जीवात्मा भोक्ता तथा परमात्मा नियन्ता है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं कुछ नहीं कर सकती। जीवात्मा चेतन तो है किन्तु अल्पज्ञ है। परमात्मा चेतन भी है और सर्वज्ञ भी। जीवात्मा अनेक हैं किन्तु ईश्वर एक है। ईश्वर नियमानुसार सृष्टि रचना करने वाला व कर्मानुसार जीवों को शुभाशुभ फल प्रदान करने वाला है। ईश्वर ही व्यक्ति व समाज के अभ्युदय का साधन है। स्वामी दयानन्द के अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं। सत्यार्थप्रकाश में 'द्वा सुपर्णा' आदि वेदमन्त्र तथा 'अजामेकाम्' आदि श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन उद्धृत करते हुए तीनों के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। तीनों अज हैं। उनका भी जन्म नहीं होता।[1] परमेश्वर आनन्द स्वरूप, सामर्थ्य गुण कर्म स्वभाव वाला है इसलिए वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्ध स्वरूप अल्पज्ञ और परिमित गुण कर्म स्वभाव वाला रहता है, वह परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।[2] स्वामी जी ने जगत को दुःख-मय मानकर इससे पलायन का उपदेश नहीं दिया। संसार में सुख भी है और दुःख भी है। सांसारिक दुःखों से डरने के स्थान पर उनको हिम्मत

1 सत्यार्थप्रकाश सप्तमुल्लास, ८ पृ० २७१

2 वहीं नवमुल्लास ९ पृ० ३१९

से झेलने में व दूर करने में तथा परोपकार में ही जीवन की सार्थकता है। परमात्मा की उपासना करते हुए सेवा, परोपकार व परिश्रमशीलता आदि सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए ही बल दिया गया है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में सविता रूप ईश्वर से सद् बुद्धि की याचना है।[1]

स्वामी जी ने मन्त्रों में अग्नि, इन्द्र, मरुत, विष्णु आदि वैदिक शब्दों की प्रकृति—प्रत्यय के विभिन्न अर्थों के आधार पर पारमार्थिक एवम् व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है। परमेश्वर से सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को ही परमार्थ कहा गया है। स्वामी दयानन्द ने इन्द्र का पारमार्थिक अर्थ ईश्वर अथवा परमेश्वर किया है। इस अध्याय में यजुर्वेद के दयानन्द कृत भाष्य के आधार पर इन्द्र देवता एवम् मरुत देवता से सम्बद्ध मन्त्रों को ध्यान में रखते हुए इन्द्रदेव और मरुत देव के पारमार्थिक स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

इन्द्र शब्द का पारमार्थिक अर्थ एवम् प्रधानार्थ परमेश्वर या परमात्मा है यह सिद्धान्त ही स्वामी जी के यजुर्वेदभाष्यानुसार स्पष्ट किया जायेगा। परमात्मा के अथवा ईश्वर के विविध नाम हैं। वेद और उपनिषद आदि में ईश्वर का अनेक नामों से वर्णन मिलता है। स्वामी दयानन्द ने भी अपने वेद भाष्य, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश में उन नामों का उल्लेख किया है। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में ईश्वर के १०० नामों की विस्तृत व्याख्या की गई है।[2] स्वामी जी की दृष्टि में सब वेदों का तात्पर्य ईश्वर में है। सब पदार्थों में ईश्वर ही मुख्य है। ईश्वर का मुख्य नाम प्रणव (= ओ३म्) है। यही परा विद्या से जाना जाता है। अग्नि, इन्द्र, मरुत् आदि का प्रकरणानुसार अन्य अर्थ भी होता है। मुख्य रूप से ईश्वर के लिए ही इनका प्रयोग किया गया है। इन नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक है।[3] युक्तियों और प्रमाणों द्वारा ईश्वर की सिद्धि करके उसके स्वरूप व गुणों का निरूपण भी किया गया है।[4]

परमात्मा के कुछ प्रसिद्ध गुणों का ऋग्वेद के एक मन्त्र में उपलक्षण रूप में

---

१ यजुर्वेद, ३.३५

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

२ सत्यार्थ प्रकाश (रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ), तृतीय परिशिष्ट, पृ० ९५० प० युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार नामों का पूर्ण योग १०८ है। कुछ नामों का अन्य नामों में अन्तर्भाव करने पर १०० संख्या बनती है।

३ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका ३०९-१०

४ सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १ पृ० १४

उल्लेख किया गया है।[1] सामवेद मे 'सत्य इन्द्र सत्यमिद्रम' इस मामान्य पाठ भेद के माथ भी यह मन्त्र समाजात है।[2] इसकी व्याख्या के अनुसार ईश्वर म कुछ अनिवार्य गुण अवश्य प्रकाशित होते हैं। परमेश्वर (इन्द्र) त्विषीमान अर्थात तजयुक्त अथवा स्वप्रकाशस्वरूप है। वह अपने प्रकाश से विश्व के समस्त अन्धकार को पराजित कर देता है (अम्योजसा क्रिवि युधाभवत)। वह अत्यन्त व्यापक है और अपनी व्यापकता मे समस्त लोको को परिपूर्ण कर रहा है।(रोदसी अपणद अस्य मज्मना)। वह अत्यन्त बलशाली है (प्रवावृध) वह सम्पूर्ण प्रकृति और सभी जीवो को अपने अन्दर धारण करता है (अधत्तान्य जठर)। सबको धारण करते हुए भी सबसे पथक् और सबसे अतिरिक्त भी उसका अस्तित्व है (प्र ईम अरिच्यत)। वह सवज्ञ है, सबको प्रचेतित करता है चेतना प्रदान करता है (प्रचेतय)। वह अविनाशी है और अविनाशी आत्मा को शरीर के साथ युक्त करता है (सश्चद देव सत्यमिदम सत्य इन्दु)।

इस मन्त्र के वणन मे परमेश्वर को स्वय प्रकाश, सवव्यापक, सवशक्तिमान, सर्वाधार निर्विकार, सवज्ञ सष्टिकर्ता, कमफलप्रदाता एवम न्यायकारी कहा गया है। भारतीय आस्तिक दशनशास्त्र मे इन्ही गुणो का विस्तार करके परमात्मा के भिन्न-भिन्न कम और स्वभाव का वणन मिलता है।

स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और सत्याथ प्रकाश मे ईश्वर का दाशनिक विवेचन किया है। स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, आर्योद्देश्यरत्नमाला तथा आयसमाज के प्रथम नियम म भी ईश्वर का सक्षिप्त विवरण उपलब्ध होता है।

स्वामी जी के अनुसार—जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं, जिसके गुण, कम स्वभाव पवित्र हैं, जो सवज्ञ निराकार, सवव्यापक, अजन्मा अनन्त, सवशक्तिमान दयालु न्यायकारी, सारी सष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवो को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त हैं वही परमेश्वर है।[3]

जो भूत, भविष्यत वतमान कालो का और समस्त जगत का अधिष्ठाता है तथा काल से परे भी विद्यमान रहता है जिसका केवल विकार रहित सुख ही

१ ऋग्वेद, २ २२ २
अय त्विषीमा अम्योजसा क्रिवि
युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे।
अधत्तान्य जठरे प्रेमरिच्यत
सैन सश्चद् देवो देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दु ॥
२ सामवेद, उत्तरार्चिक, १४ ८८
३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, अनुच्छेद १।

स्वरूप है, जिसमें दुःख लेशमात्र भी नहीं है, जो आनन्द घन ब्रह्म है, उस सर्वोत्कृष्ट महान ब्रह्म के लिए नमस्कार हो।[1]

अत सातत्यगमने धातु से 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। 'योऽतति व्याप्नोति स आत्मा' अर्थात जो सब जीवादि जगत में निरन्तर व्यापक हो रहा है। 'परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा' अर्थात जो सब जीवादि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, उस ईश्वर का नाम परमात्मा है।[2]

वेदों के अनुसार परमात्मा सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों से युक्त है।[3] परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे सर्वशक्तिमान, सर्वाधिकार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, नित्य, पवित्र साक्षी, अधिष्ठाता इत्यादि बताया गया है। निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए परमात्मा को निर्विकार, निराकार, अनादि, अजन्मा, अनुपम, अजर, अमर, अभय, दुःखरहित आदि कहा गया है।[4] इस सम्बन्ध में यजुर्वेद का एक मन्त्र उद्धृत किया जा सकता है जिसमें ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव का उल्लेख मिलता है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥[5]

स्वामी दयानन्द कृत भाष्य के अनुसार इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि वह परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है, सर्वशक्तिमान एवं शीघ्रकारी, स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर से रहित, छिद्र रहित या छेदन करने योग्य, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित, अविद्या आदि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, पाप में प्रीति न करने वाला, सर्वज्ञ अर्थात सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, अनादि स्वरूप अर्थात जिसकी उत्पत्ति, वृद्धि व विनाश आदि नहीं होते, ऐसा परमात्मा अपनी शाश्वत प्रजाओं के लिए यथार्थ रूप से वेदादि ज्ञान एवं सभी प्रकार के पदार्थों का विशेष रूप विधान करता है, रचना एवं निर्माण करता है।

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० ३६३

२ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १ पृ० २०-२१

३ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
—श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६.११

४ वर्मा — योग विद्या, पृ० १४१-४७

५ यजुर्वेद ४०.८

ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार ऋक्, यजु, साम रूपी तीनो वाणियो का प्रकाश परमात्मा करता है। ये वाणिया सृष्टि के नियम और ब्रह्माण्ड के ज्ञान विज्ञान को धारण करती हैं। विद्वान इनका शब्द रूप प्राप्त करते हैं। परन्तु वास्तविक ज्ञान मनीषी ही प्राप्त कर सकते हैं। इस आधार पर परमात्मा ही वेद का प्रकाशक व ससार के नियमो का सचालक है। परमात्मा के रहस्यमय स्वरूप को परमात्मा के गुण, कर्म तथा स्वभाव को जानकर ही जाना जा सकता है, परमात्म तत्त्व का इदमित्थ रूप (अर्थात यह इसी प्रकार का है) वर्णन तो असम्भव ही है। स्वामी जी ने वेद उपनिषद् तथा निरुक्त आदि प्रमाणो के आधार पर यह सिद्ध किया है कि आर्य लोग 'अग्नि' इन्द्र आदि नामो से एक ही ईश्वर की उपासना किया करते थे। 'एक सद विप्रा बहुधा वदन्ति'[2] अर्थात एक ही शक्ति को विद्वान् बहुत से रूपो मे कहते हैं। मनु महाराज जी का वचन है—

एतमग्नि वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥[3]

इन्द्र देवता से सम्बन्धित कुछ मन्त्रो मे पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत करके स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव का वर्णन किया है। इन्ही मन्त्रो के आधार पर इन्द्रदेव का पारमार्थिक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

वेदो मे बहुत से विशेषणो से इन्द्र की स्तुति की गई है—हरिकेश, हरिश्मश्रु हरिशिप्र वज्री हिरण्यबाहु वृत्रहा हर्यश्व, वृषा सोमपा वज्री, युध, सत्राजित, उग्रधन्वा, शक्र सुमख सुतपा, वृषभ स्वेपनृम्ण, पुरुहूत ऋजीषी, शविष्ठ मघतक्रतु, गोपति शतक्रतु, अङ्गिरस्वान, चित्रभानु, सोमपातम, मन्दी, नवमस्मति, अमितौजा अद्रिवा पुरन्दर वावातुय, पुरुवसु, विश्वायु, पाकस्थामा, भोज, सुशिप्र सुपार, सुव्रत सखा, उग्र, महामह, सूर, वृत्रहन्तम, सुश्रवस्तम, विपश्चित सत्पति, शचीपति, नर्य नर, नपात, महिष्ठ ज्येष्ठराज, तुविकूर्मि अभिभूति, पप्रि तुविग्रीव, वपोदर आखण्डल, मुनीना सखा, दिवावसु, युवा मख, 'रथीतमो रथीताम', पुरुतम्ण, ऋभुक्षा, आजिपति, प्रभङगी तुवीमघ, सोमी, हिरण्यय अश्व्य, मख, शूर मायी, महावीर, मदच्युत, रातहव्य, सत्यशुष्मा, मरुत्वान मृजकर, अकल्प, उरुव्यचा, वीर, दानौका, सूतश्रवा, दर्मा, ऋग्मिय,

---

१ तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्नि।
ऋतस्य धीतिम ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपति पच्छमाना।
सोम यन्ति मतयो वावशाना॥ —ऋग्वेद, ६ ९७ ३४

२ ऋग्वेद, १ १६४ ४६

३ मनुस्मृति, १२ १२३

सहस्रचेता, शतनीथ, ऋभ्वा, चम्रीष, पाञ्चजन्य, तरस्वी, राजेन्द्र, सप्तरश्मि, क्षामप, स्वर्जित सत्राजित, उवराजित अभिभङग, वधा, तुविग्रि, दुष्टरीतु, च्यवन, वतचय, सहुरि गम्भीर असमष्टकाव्य, रध्रचोद, वीलितसुष्ठ, विप्रतम, सतीयन शरण्य, सहोदा चर्षणीधृत, गुर्णितम, धनजय, चिकित्वान स्वयु, स्वराड् ऋजीष, अषाव शाची, वाजसनि, शवस, सूनु, अर्वाचीन, वय विभीषण, धन्वचर, दान, ऋभ्व, सासहवान ईशानकृत, सुम तुनामा, अच्युतच्युत तुवन, प्र न, क्षत्रनी धृष्णु ओजिष्ठ, व्यास, अधिगु, धमकृत जेता हता शतमूर्ति, वज्री दक्षिण दीघश्रवस्सति, रोध, अथवण, विश्वम्याड उत्तर, बलविजाय, स्थविर, प्रवीर गोत्रभिद वीर्ण्य महिवीर सुनामा, भित्रसाह अद्भुत, स्वस्तिदा, विमृध अधिभू आदि।

ये सब विशेषण इन्द्र के ऐश्वर्य के द्योतक हैं। इन्द्र ही सम्पूर्ण जगत का स्वामी रक्षक पालक व दुष्ट संहारक है। यही इन्द्र का ईश्वरत्व है।[1]

१ स्वप्रकाशमय तथा सर्वप्रकाशक

इन्द्र अर्थात् ईश्वर अपने प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। इसे प्रकाशित होने के लिए किसी दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं।[2] संसार के सभी प्रकाशक पदार्थ जिससे प्रकाश प्राप्त करते हैं वह स्वप्रकाशमय एवम् सर्वप्रकाशक परमात्मा ही इन्द्र पदवाच्य है जिस ज्योति को आत्मवेत्ता जन जानते हैं, वह सभी ज्योतियों में श्रेष्ठ है।[3]

यदादित्यगत तेजो जगद् भासयते खिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥[4]

इस गीतोक्त वचन के अनुसार आदित्य में विद्यमान प्रकाश, जो सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा चन्द्रमा और अग्नि में जो प्रकाश विद्यमान है, उन सबका मूल परमात्मा का प्रकाश ही है। इन्द्र को विद्युत् के समान परमेश्वर कह कर सम्बोधित किया गया है।

हे (इन्द्र) विद्युत के समान वर्तमान परमेश्वर। (ते) आपकी (यावती) जितनी (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमि (च) और (यावत्) जितने बड़े (सप्त सिन्धव) सात समुद्र (वितस्थिरे) विशेषकर स्थित हैं (तावन्तम्) उतने अक्षितम्) नाश

१ वेद समुल्लास पृ० ६
२ मुण्डकोपनिषद् २ २ ११
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्। तस्य भासा सर्वमिद विभाति।
३ वही २ १०
यच्छुभ्र ज्योतिषस्तद्यदात्मविदो विदु।
४ गीता १५ १२

रहित (ग्रह्म) ग्रहण के साधनरूप सामर्थ्य को (उर्जा) बल के साथ मैं (ग्रहणामि) स्वीकार करता हूँ तथा उसने (अक्षितम) नाशरहित सामर्थ्य को मैं (मयि) अपने मे (ग्रहणामि) ग्रहण करता हूँ।[1]

यहा यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि आधुनिक वैदिक विद्वान् वैज्ञानिक दृष्टि से ही वेद मन्त्रो की व्याख्या करना अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। उनका मत है कि चारो वेदो में मन्त्रो का अध्ययन यह स्पष्ट सकेत दे देता है वे सब जिनका देवता अर्थात विषय इन्द्र है वे प्रकृति के अन्तगत त्रिगुणात्मक शक्ति की ही स्तुति के निमित्त है। वेद मे स्तुति का अभिप्राय है पदाथ के गुण, कम और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना, उनका प्रयोग कर जीवन को सुखी व उन्नत करना।

इन्द्र त्रिगुणात्मक शक्ति है जो परमाणु के भीतर रहती है। नियन्त्रण करने वाले परमात्मा द्वारा दी गई लगाम त्रित ने स्वीकार कर ली। इस त्रित पर पहले इन्द्र अधिकार रखता था।[3] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—

असदा इवमग्र आसीत तदाहु किं तदसदासीदित्यपयो वाव ते प्रेसदासी तदाहु केत ऋषय इति प्राणा वा ऋषयस्ते यत्पुरास्यात सवस्मादइमिच्छन्त श्रमेण तपसारिष स्तस्मादृषय ॥

स योत्य मध्ये प्राण । एष एवे न्द्रस्तामेषु प्राणात्मध्यत इन्द्रियेणेन्द्र यदैन्द्र तस्मादि ध इन्धो ह व तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्ष परोक्षकामाहि देवास्त इदधा सप्त नाना पुरुषानसजन्त ॥[4]

अर्थात पहले यह असत अर्थात अव्यक्त प्रकृति ही थी। असत क्या था ? ये ऋषि थ। ऋषि ही प्राण थ। ये परमाणु से अशान्त हो गये। इसी स इनका नाम ऋषि हुआ। यह मध्य मे अर्थात परमाणु के मध्य म ही इन्द्र है। इन्द्र इन्ध से व्युत्पन्न होता है। दीप्त करने वाला इन्द्र इन्ध स ही बना है।

स्वामी दयानन्द न अपने यजुर्वेदभाष्य मे एक मन्त्र मे इन्द्र को विद्युत तुल्य ईश्वर माना है। ईश्वर विद्युत क समान प्रकाशित होने वाला है। सुख प्राप्ति के लिए उस प्रकाशमान ईश्वर की स्तुति करनी चाहिए।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३८ २६
यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमि न्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह णाम्यक्षित मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥
२ वेदो मे इन्द्र प० ७१ ७२
३ ऋग्वेद १ १६३ २
यमेन दत्त त्रित एनमायुनगिन्द्र। एण प्रथमो अध्यतिष्ठन।
४ शतपथ ब्राह्मण, ६ १ १ १ २

मन्त्र में आए 'इन्द्रो विश्वस्य राजति' अंश का अर्थ करते हुए कहा गया है इन्द्र पद से आदित्य तथा परमेश्वर-दोनों का ग्रहण किया है।[1]

सम्पूर्ण मन्त्र का स्वामी दयानन्द कृत भाष्य इस प्रकार है—हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्र) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आपकी कृपा से (न) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (शम्) सुख होवे।' भाव यह है कि हे जगदीश्वर ! जिससे आप सबत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि को सुख चाहने वाले हैं इससे सबको उपासना करने योग्य हैं।

यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र में दो बार 'इन्द्राय' पद का प्रयोग हुआ है तथा इसके दो अर्थ स्वीकार किए गए हैं। एक बार तो इस पद का 'ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए' तथा दूसरी बार परमेश्वर के लिए' यह अर्थ किया गया है।

हे राजन् ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (व) तुम्हारे लिए (सूर्य) के प्रकाश में (सन्तम्) वर्त्तमान (समाहितम्) सबप्रकार धारा और धारण किये (ऊर्ध्वसम्) उत्कृष्ट जीवन के हेतु (अपाम्) जलों के (रसम्) सार को ग्रहण करता हूं (य) जो (अपाम्) जलों के (रसस्य) सार का (रस) वीर्य धातु है (तम्) उस (उत्तमम्) कल्याणकारक रस को तुम्हारे लिए (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं जो आप (उपयाम गृहीत) साधन तथा उपसाधनों से स्वीकार किए गए (असि) हो उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक वर्त्तने वाले

१ उवट—इन्द्रोविश्वस्य द्विपदाविराट्। योयं महावीर इन्द्र आदित्यो वा। वस्याधिष्ठात्री देवता। विश्वस्य जगत राजति देदीप्यते ईष्टे वा। तस्य प्रसादात्। अस्माकम् अस्तु द्विपदे न चतुष्पदे द्विपदाचतुष्पदा चेति विभक्ति-व्यत्यय।

महीधर—द्विपदा विराट् इन्द्र देवत्या। विंशत्यक्षराद्विपदा विराट् कथ्यते। विश्वस्य सवस्य जगत इन्द्र यदि परमैश्वर्ये इ दतीतीन्द्र परमेश्वर महावीर आदित्यो वा यो राजति देदीप्यते ईष्टे वास नो स्माकं द्विपदे। विभक्तिव्यत्यय। द्विपदां पुत्रादीनां वा सुखरूपो स्तु। चतुष्पदे चतुष्पदां गवादीनां च न सुखरूपो स्तु॥ —शुक्लयजुर्वेद संहिता (उवट महीधर) ३६ ८ पृ० ४८३

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३६ ८
इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

आपको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं। जिस (ते) आपका (एष) यह (योनि) घर है उस (जुष्टम्) अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आपको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

भाव यह है कि राजा अपने प्रजा पुरुषों को शरीर और आत्मा के बल बढ़ने के लिए ब्रह्मचर्य औषधि विद्या और योगाभ्यास के सेवन में नियुक्त करे।

सम्राट

जो अच्छी प्रकार प्रकाशित हो अर्थात 'यः सम्यग् राजते प्रकाशते' वह सम्राट् कहलाता है।[1] सम् उपसर्गपूर्वक दीप्त्यर्थक वाली 'राज्' धातु से क्विप् प्रत्यय करके सम्राट शब्द निष्पन्न होता है। चक्रवर्ती राजा' अर्थ में भी 'सम्राट्' शब्द प्रयुक्त किया गया है।[3] इन्द्र (ईश्वर) को सम्राट के रूप में गृहीत किया गया है।

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टि स्वयशस्तरः।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः॥[4]

हे (पुरुष्टुत) बहुभिः प्रशंसित (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् यः त्वम् (स्वयुः) यः स्वं धनं याति सः (स्वराट्) यः स्वेनैव राजते सः (स्मद् दिष्टिः) कल्याणोपदेष्टा (स्वयशस्तरः) स्वकीयं यशो धनं प्रशंसनं वा यस्य सोऽतिशयितः (असि) स त्वम् (ओजसा) पराक्रमेण (वावृधानः) वर्द्धमानः (सुश्रवस्तमः) सुष्ठुधनः श्रवणयुक्तः सोऽतिशयितः (नः) अस्मभ्यम् भव।

अर्थात् हे बहुतों से प्रशंसित परमैश्वर्यशाली सम्राट जो आप धन को प्राप्त वाले स्वतन्त्र राज्यवर्ती कल्याण कर्म का उपदेश देने वाले, अतिशय धनी और प्रशंसास्पद हैं, वह आप अपने पराक्रम से बढ़ते हुए अत्यन्त शुभ धन वाले और प्रार्थना को सुनने वाले हमारे लिए हों।

भाव यह है कि वह ही सम्राट बनने के योग्य है जो अतिशय प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाला हो। वह ही सबको बढ़ाने वाला होता है।[5]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ९.३
अपां रसमुद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम्। अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तम-मुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥

२ यजुर्वेद ३.३८

३ दयानन्द वैदिक कोष पृ १००४

४ ऋग्वेद ३.४५.५

५ स एव सम्राट भवितुं योग्यो जायते योऽतिशयेन प्रशंसित गुण कर्मस्वभावो भवति। स एव सम्राट् सर्वेषां वर्द्धको भवतीति॥

—ऋग्भाष्य (दयानन्द), ३.४५.५

२ सर्वज्ञानदाता तथा सर्वज्ञानमय

ईश्वर सर्वज्ञानमय भी है और सर्वज्ञान प्रदाता भी। वह सम्पूर्ण विद्याओं का अधिपति है तथा वेदादिरूप मे सम्पूर्ण विद्याओं को प्रकट करने वाला भी है। ईश्वर सर्ववित है तथा उसका तप ज्ञानमय है।

य सर्वज्ञ सर्वविद्यस्य ज्ञानमय तप —यह वचन विशेषता की ओर सकेत करता है।[1] स्मृति, ज्ञान तथा सशय भ्रम विपर्यय आदि का निवारण रूप अपोह यह सब ईश्वर की प्रेरणा से ही होता है।[2] स्वामी जी के अनुसार तीनों कालो के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारो को वह यथावत जानता है।[3] ईश्वर का ज्ञान नित्य है उसकी वृद्धि क्षीणता और विपरीतता कभी नही होती। उसमे निरतिशय नित्य स्वभाविक ज्ञान है। जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है। जब ईश्वर अनन्त है अपने आपको अनन्त जानना ही उसका ज्ञान है। वह पूर्ण ज्ञानी है।[4]

विद्यादि धन युक्त जगदीश्वर

इन्द्र अर्थात परमात्मा उत्तम उत्तम विद्यादिधन युक्त है। उससे प्रार्थना की गई है।

हे (मघवन) उत्तम उत्तम विद्यादिधन युक्त (इन्द्र) परमात्मन ! (वयम) हम लोग (सुसदृशम) अच्छे प्रकार व्यवहारों को देखने वाले (त्वा) आपकी (नूनम) निश्चय करके (वन्दिषीमहि) स्तुति करें तथा हम लोगो से (स्तुत) स्तुति किए हुए आप (कामान्) इच्छा किए हुए पदार्थों को (यासि) प्राप्त कराते हो और (ते) अपने (हरी) बल पराक्रम को आप (अनुयोज) हम लोगो के सहाय के अर्थ युक्त कीजिए।[5]

इस मन्त्र मे श्लेष और उपमालकार है। इसका अर्थ दूसरी तरह से भी किया गया है। (वयम) हम लोग (सुसदृशम) अच्छे प्रकार पदार्थों को दिखाने, (मघवन्) धन को प्राप्त कराने तथा (पूर्णबन्धुर) सब जगत के बन्धन के हेतु

---

१ मुण्डकोपनिषद, १ ९

२ श्री मद्भगवदगीता, १५ १५
मत्त स्मृतिर्ज्ञानम।

३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० २६४

४ सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ७ पृ० २६२

५ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३ ५२
सुसदृशं त्वा वयं मघवन वन्दिषीमहि।
प्रनूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशाँ अनु।
योजान्विन्द्र ते हरी॥

(त्वा) उस सूय लोक को (नूनम) निश्चय करके (वि दधीमहि) स्तुति करें अर्थात् इसके गुण प्रकाश करके (स्तुत) स्तुति किया हुआ यह हम लोगो को (वसान्) उत्तम उत्तम व्यवहारो की सिद्धि करान वाली कामनाओ को (यासि) प्राप्त कराता है (नु) जसे (त) इस सूय के (हरी) धारण आकषण गुण जगत मे युक्त होत है वैसे आप हम लोगो को विद्या की सिद्धि करन वाले गुणो को (अनुप्रयोज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिए।

भाव यह है कि मनुष्यो को सब जगत के हित करन वाले जगदीश्वर की ही स्तुति करनी चाहिए। जैसे सूय लोक सब मूर्तिमान द्रव्यो का प्रकाश करता है वसे उपासना किया हुआ ईश्वर भी भक्त जनो के आत्माओ मे विज्ञान को उत्पन्न करन से सब सत्य व्यवहारो को प्रकाशित करता है।

इस मन्त्र मे श्लेष और उपमा अलकार है। श्लेष म इन्द्र शब्द के ईश्वर और सूय दो अथ लिए जाते हैं। उपमा वाचक 'नु' पद मन्त्र मे पठित है। यहा सूय से ईश्वर तथा विद्वान की उपमा की गई है।

जैसे सूय मूत्त द्रव्यो को प्रकाशित करता है वैसे ही उपासना द्वारा वह जगदीश्वर भी भक्त जनो की आत्माओ म विज्ञान उत्पन्न करके सब सत्य व्यवहारो को प्रकाशित करता है।

जैसे सूय मूत्त द्रव्यो का प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान भी विद्या के सिद्धिकारक गुणो से प्रकाशित करता है।

मन्त्र मे आए 'सुसन्दृशम्' पद का अथ 'य सुष्ठु पश्यति दशयति वा तम' अर्थात अच्छी प्रकार देखने वाले अथवा दिखान वाले को किया है। ईश्वर पक्ष मे 'भक्तजनात्मसु विज्ञानोत्पादनेन सवसत्यव्यवहार प्रकाशकम्' तथा सूय पक्ष मे 'मूत्त-द्रव्यप्रकाशकम्' व्याख्या की गई है।[1]

इन्द्र मघवन अर्थात (परमोत्कृष्ट धनयुक्तेश्वर) अत्यन्त उत्तम धन से युक्त जगदीश्वर के रूप मे सम्बोधित किया गया है। वह स्तुति किया हुआ पूण स्नेह से भरपूर बना हुआ अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने वाला है। अत वह 'स्तुत' (स्तुया लक्षित अर्थात स्तुति (प्राथना) से दिखाई देन वाला) तथा 'पूणबन्धुर' (य पूण-श्चासौ बन्धुरश्च स) कहा गया है।

विश्ववेदस्[2]

जो सम्पूण विश्व को जानने वाला है उस परमेश्वर को ही 'विश्ववेदस' कहा है। यजुर्वेद मे इन्द्र के विशेषण के रूप मे यह शब्द प्रयुक्त किया गया है।[3] स्वामी

---

१ दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर, पृ० २२४

२ यजुर्वेद, ३ २८

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २५ १९

दयानन्द ने इसका अर्थ—विश्व अर्थात सम्पूर्ण जगत वेद अर्थात् धन है जिसका वह परमेश्वर किया है। एक मन्त्र में इस शब्द का 'विश्व को जानने वाला' अर्थ भी किया गया है।[1] 'विश्व' शब्द के साथ 'विद' धातु से 'असि' प्रत्यय करके 'विश्ववेदस्' शब्द निष्पन्न होता है।[2]

सम्पूर्ण मन्त्र का ऋषि कृत भाष्यानुवाद निम्न प्रकार है—

हे मनुष्यो ! जो (वृद्धश्रवा) बड़े श्रवण विज्ञान (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (न) हमारे (स्वस्ति) सुख को धारण करता है जो (विश्ववेदा) जगत रूप धन वाला (पूषा) सब ओर से पोषक ईश्वर (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है जो (तार्क्ष्य) घोड़े के समान (अरिष्टनेमि) सुखों को प्राप्त कराने वाला हमारे (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है जो (बृहस्पति) महत्तत्व आदि का स्वामी एवम पालक (न) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है वह तुम्हारे लिए भी सुख को धारण करे।[3]

भाव यह है कि सभी मनुष्य ऐसी प्रार्थना करें कि जो ईश्वर बड़ा विज्ञान-वाला परम ऐश्वर्यवान, सकल जगत रूप धन वाला, सब ओर से पोषक घोड़े के समान सुखों का प्रापक महत्तत्व आदि का स्वामी है वह हमारे लिए तथा तुम्हारे लिए भी सुख को उत्पन्न करे।

उवट और महीधर ने भी इन्द्र से स्वस्ति (कल्याण) कामना करने वाला अर्थ किया है।[4]

---

१ यजुर्वेद, ५ २१
२ उणादि कोश ४ २३८
३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २५ १६

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

४ शुक्ल-यजुर्वेद संहिता पृ० ४६३

उवट—स्वस्ति नः स्वस्ति स्वस्त्ययनम् नः अस्माकम् इन्द्र दधातु स्थापयतु । कथंभूत । वृद्धश्रवा प्रभूतधन । महाशब्दो महाकीर्तिर्वा स्वस्ति नो अस्माकम् पूषा ददातु । कथंभूत । विश्ववेदा सर्वज्ञो वा । स्वस्ति नः तार्क्ष्यो दधातु । कथंभूत । अरिष्टनेमि अनुपहिंसितायु । स्वस्ति नः अस्माकं बृहस्पतिश्च दधातु ।

महीधर—विराट्स्थाना । आद्यौ पादौ नववर्णौ तृतीयो दशकः तुर्यो व्यूहेनैकादशक । नवकौ वैराजस्त्रिष्टुभश्च इति वचनात । इन्द्र नोऽस्मभ्य स्वस्ति अविनाशि शुभ दधातु ददातु । कीदृश । वृद्धश्रवा वृद्धम् महत् श्रव कीर्तिर्यस्य स ।

क्रमश

विद्वान्[1]

स्वामी जी द्वारा 'विद्वान्' शब्द का अर्थ 'समस्त विद्यान्वित जगदीश्वर' किया गया है। एक अन्य मन्त्र में भी इस शब्द का इसी प्रकार 'सर्वज्ञ परमेश्वर' अर्थ किया है।[2] ज्ञानार्थक विद' धातु से 'शतृ' एवम् उसके स्थान पर 'वसु प्रत्यय करके 'विद्वान्' शब्द निष्पन्न होता है।[3] ऋग्वेद में 'सम्पूर्ण विद्याओं को देने वाला' और 'अनन्त विद्या देने वाला ईश्वर'[4] इस अर्थ में भी विद्वान् शब्द प्रयुक्त है।[5]

इन्द्र की स्तुति करते हुए इन्द्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सर्वथा सत्य है, असत्य नहीं है। इन्द्र 'विश्वस्य विद्वान्' अर्थात् सबको जानने वाला है सर्वज्ञ है। सदाचरण से ऐसे इन्द्र (ईश्वर) की कृपा प्राप्त की जा सकती है।[6] एक मन्त्र में कहा गया है कि हे मनीषी लोगो! इन्द्र के लिए मनीषा अर्थात् स्तुति को किया करो जैसी जैसी तुम मनुष्यों की बुद्धियां हों, वैसी वैसी स्तुतियां करो। हम ऋषि लोग सत्य मन्त्रों और सत्य कर्मों से इन्द्र को अपने अभिमुख करते हैं। वह वीर इन्द्र हम निश्चित रूप से सत्कर्म के लिए प्रेरित करने वाले, ज्ञानवान् तथा हार्दिक रूप से स्तुति करने वालों को चाहने वाला है।[8]

पूषा नः स्वस्ति ददातु। कीदृशः। विश्ववेदाः विश्वं सर्वं वेदो धनं यस्य विश्वं वेत्तीति वा विश्ववेदाः। तार्क्ष्यो रथो गरुडो वा नः स्वस्ति दधातु। कीदृशः। अरिष्टनेमिः अरिष्टा अनुपहिंसिता नेमिश्चक्रधारा पक्षो वा यस्य सः। बृहस्पति देवगुरु र्नो ऽस्मभ्यं स्वस्ति ददातु।

१ यजुर्वेद, ५ ३६
२ वही ४ १६
३ विदेः शतुर्वसुः। अष्टाध्यायी, ७ १ ३६
४ ऋग्वेद, १ ६४ १५६
५ वही, १ ६० १
६ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० ८६५ ६६
७ ऋग्वेद ८ ६२ १२

सत्यमिद् वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो
भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥

८ वही, १० १६० २
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम्॥

९ वही, १० १११ १
मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम्।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः॥

परमेश्वर की पूजा सत्य भाव और सदाचरण से ही सम्भव है। जिससे समस्त प्राणी कर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसने इस विश्व को अभिव्याप्त किया हुआ है, उस परमात्मा को अपने सत्कर्मों से पूजित करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है।[1]

सर्वज्ञ और सर्वगत ब्रह्म (ईश्वर) के लिए इन्द्र शब्द परोक्ष रूप से प्रयुक्त किया गया है। इन्द्र की विभूति और ऐश्वर्य का वर्णन जो किया गया है वह परमात्मा में घटित होता है।[2]

५ अत्यन्त शुद्ध स्वरूप तथा सर्वशोधक

परमेश्वर अत्यन्त शुद्ध स्वरूप है। ईश्वर अत्यन्त निर्मल, पवित्र व निष्पाप है।[3] निष्पाप ईश्वर के सम्पर्क में आने वाला भक्त भी निष्पाप हो जाता है।[4] दुष्ट व्यक्ति भी परमेश्वर की उपासना से साधु बन जाता है।[5]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में इन्द्र को 'मघवन्' अर्थात् पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त कह कर सम्बोधित किया है। इन्द्र (ईश्वर) दिव्य अर्थात् शुद्ध है।

हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर! (वाजिनः) वेगवाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आपके तुल्य (दिव्य)

---

१ गीता, १८४६
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

२ ऐतरेयारण्यक, २४३ व ऐतरेयोपनिषद्, ११३-१४
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यद् इदमदर्शमितीम्। तस्मादिन्द्रो नामेन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। इति।

३ वैदिक साहित्य, पृ० २८०

४ यजुर्वेद, ४८

५ ऋग्वेद २२३४
यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।

६ गीता ९३०
अपि चेत सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥

गीता ४३६
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥

शुद्ध (न) न कोई (पार्थिव) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न)न कोई(जात) उत्पन्न हुआ और (न)न(जनिष्यति) होगा। इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं।

भाव यह है कि न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है, इसी से सब मनुष्यों को चाहिए कि अपनी शुद्धता के लिए उसी शुद्ध ईश्वर की उपासना करें।[1]

यजुर्वेद के कई मन्त्रों में इन्द्र को ईश्वर मानते हुए प्रार्थनाएँ की गई हैं। इन मन्त्रों का पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत है—

वह (सदावृध) सदैव बड़ा, (चित्र), अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाला परमेश्वर (न) हमारी (कया) किस (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ+भुवत्) बनता है।(कया) किस (वर्ता) वर्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त प्रज्ञा से हमें शुभ गुण कर्म स्वभाव में प्रेरित करता है।[2]

भाव यह है कि हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हमको प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय से ही हम लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने में समर्थ हो सकते हैं।

हे मनुष्यो! (मदानाम्) आनन्दों के मध्य में (मंहिष्ठ) अत्यन्त बड़ा (क) सुख स्वरूप, (सत्य) सब पदार्थों में श्रेष्ठ ईश्वर (अन्धस) अनादि से (त्वा) मुझे (मत्सत्) आनन्दित करता है, (आरुजे) दुःखों के भञ्जक शुभ जीव के लिए (चित्) भी (दृढा) दृढ़ (वसु) धन प्रदान करता है।[3]

भाव यह है कि जो ईश्वर आनन्दों में सबसे बड़ा है, सुख स्वरूप है, प्रजा पालक है सब पदार्थों में श्रेष्ठ है, अनादि से आनन्दित करता है, दुःख भञ्जक जीव को स्थिर धन प्रदान करता है। उस सुख स्वरूप परमात्मा की ही नित्य उपासना करनी चाहिए।

हे जगदीश्वर! क्योंकि तू (शतम) असंख्य ऐश्वर्य देता है, (ऊतीभि) रक्षादि से (न) हमारे (सखीनाम्) मित्रों एवं (जरितणाम्) सत्य की स्तुति करने

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २७ ३६
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो
न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो
गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥

२ वही, ३६ ४
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा
कया शचिष्ठया वृता॥

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३६ ५
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु॥

वाल जनो का (अविता) रक्षक (सु+भवासि) उत्तम रीति से बनता है, अत हमारे लिए (अभीषुण) सब ओर से सत्कार के योग्य है।[1]

इस मन्त्र का भाव यह है कि जो परमेश्वर राग द्वेष से रहित, अजात शत्रु, सबके मित्र जनो को असंख्य धन और अतुल विज्ञान प्रदान करके सब ओर स रक्षा करता है, उसी परमेश्वर का नित्य उपासना करनी चाहिए।

हे (वृषन्) सुख की वर्षा करने वाले ईश्वर तू (कया) किस (ऊत्या) रक्षादि क्रिया से (न) हम (अभि+प्र+मन्द से) सर्वत्र आनन्दित करता है? (कया) किस रीति से (स्तोतृभ्य) प्रशंसक जनों के लिए सुख को धारण करता है?[2]

भाव यह है कि हे परमात्मन्! जिस युक्ति से तू धार्मिक जनों को आनन्दित करता है, उनका सब ओर से पालन करता है, उस युक्ति का हम बोध करें।

इन मन्त्रों का देवता इन्द्र (=ईश्वर) है। वह इन्द्र (=ईश्वर) ही सदावृद्ध' अर्थात सदैव बड़ा, चित्र' अर्थात अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाला, मदानाम महिष्ठ' अर्थात् आनन्दो के मध्य अत्यन्त बडा, क' अर्थात सुख स्वरूप, सत्य' अर्थात सब पदार्थों मे श्रेष्ठ, शतत' अर्थात असंख्य ऐश्वर्य देने वाला और सखीनाम जरीतृणाम् अविता' अर्थात मित्रो एव सत्य की स्तुति करने वालो का रक्षक कहा गया है।

वह हमारा मित्र बनता है, वह हमारी रक्षा करता है, अपनी अत्यन्त प्रज्ञा से हम शुभ गुण कर्म स्वभाव मे प्रेरित करता है, अन्नादि से आनन्दित करता है व स्थिर धन प्रदान करता है।

वह इन्द्र (=ईश्वर) 'वृषन' अर्थात सुख की वर्षा करने वाला है।

इन मन्त्रों का भाष्य करते हुए उवट व महीधर ने भी इन मन्त्रों का देवता 'इन्द्र' स्वीकार किया है तथा उसे रूप प्रदान करने वाला व (सुख) वर्षा करने वाला कहा है।[3]

४ सर्व व्यापक

परमेश्वर सृष्टि के कण कण मे व्याप्त है। यह सब कुछ जो भूत भविष्य और वर्तमान मे सत्ता से युक्त है वह पुरुष ही है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३६६

अभीषुण सखीनामविता जरितॄणाम्। शत भवास्यूतिभि ॥

२ वही, ३६७

कया त्व न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥

३ शुक्लयजुर्वेद संहिता (उवट महीधर) ३६४,५,६,७, पृ० ५८२

उवट—कया त्वम्। गायत्री। ऐन्द्री अनिरुक्ता। हे इन्द्र, कया ऊत्या केन वा गमनेन त्वम् न अस्मान अभिप्रमन्द ते अभिमोदयसि हर्षयसि। हे वृषन् सेक्त कया च ऊत्या केन वा गमनेन स्तोतृभ्य दातु धनानि अभर आहरसि। लडर्थे लोट्। तत्कथय। येन तथानुतिष्ठाम।

महीधर—इन्द्र देवत्या गायत्री अनिरुक्तेन्द्रपदहीना। आद्यपादे व्यूहद्वयम्। हे वृषन् 'वृषतीति वृषा' है सिक्त इन्द्र 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यभिधानम्। कया ऊत्या केन तर्पणेन हविर्दानेन नो स्मानभिप्रमन्दसे अभिमोदयसि। मदि-स्तु स्वपन जाड्यो मदे मोद स्तुतौ गतौ लट। कया च ऊत्या तृप्त्या स्तोतृभ्य स्तुतिकर्तृभ्यो यजमानेभ्य आभर आहर आहरसि। धन दातुमिति शेष तदुपायेन तथा वय कुर्म इति भाव।

आभरेति लडर्थे लोट।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।[1]

सब भूतों में परमात्मा का निवास है तथा परमात्मा में सब भूतों का निवास है।[2] वास्तव में यह सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।[3]

ऋग्वेद के अनुसार इन्द्र चारों ओर व्याप्त महान व्योम (=अन्तरिक्ष) से भी परे है। उसने द्युलोक और अन्तरिक्ष को सब तरफ से व्याप्त किया हुआ है। उस इन्द्र तुल्य कोई नहीं है। इन्द्र की व्याप्ति का अन्त न द्युलोक पा सकता है और न ही पृथ्वी लोक।[4] इन्द्र आकाश से अति सूक्ष्म, अतिव्यापक तथा समस्त जगत का रचने वाला है।[5]

इन्द्र अपनी सर्वगतत्व रूप सूक्ष्मतम एवं महत्तम शक्ति से प्रत्येक रूप वाली वस्तु के रूप वाला हो जाता है। इन्द्र का यह रूप प्रत्येक वस्तु के निराकार में दिखाई देने के लिए होता है। वह इन्द्र ही अपनी माया से बहुत रूपों से युक्त होकर चेष्टा कर रहा है।[6]

इन्द्र सर्वव्यापक और अखिल जगदीश्वर है, उसका ही भजन पूजन, भक्ति, स्तुति और उपासना करनी चाहिए। सायण ने इन्द्र को सच्चिदानन्द सर्वगत परमात्मा कहा है।[7]

---

१ ऋग्वेद, १० ९० २

२ यजुर्वेद ४० ६
   यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
   सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥
   केनोपनिषत्, २ ८
   भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः ।
   प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

३ यजुर्वेद, ४० १

४ ऋग्वेद, १ ५२ १२,१३,१४

५ ऋग्वेद भाष्य (सायण), १० ५५ २
   आकाशात्मकत्वादि परमेश्वररूपाद् (इन्द्रात्) भूतभव्यात्मकं जगत् उत्पद्यते ॥

६ (क) ऋग्वेद, ६ ४७ १८
   रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
   इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते, युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥
   (ख) द्र०—वेदवाणी, वर्ष २०, अंक ६, पृ० ४८

७ ऋग्वेद भाष्य (सायण), ६ ४० १८
   इदि परमैश्वर्य इत्यस्य धातोरर्थानुगमादिन्द्रः परमात्मा । स चाकाशवत् सर्वगतः सदानन्दरूपः । स चेन्द्रः परमेश्वरो मायाभिर्मायानिर्मितैः पुरुरूपो विपदादिभिर्बहुविधरूपयुतः सन् ईयते चेष्टते । एतदप्यस्य परमात्मनः प्रतिचक्षणाय भवति । अस्य च दशशता सहस्रसंख्याका हरयः इन्द्रियवृत्तयः युक्ता विषय-ग्रहणायोद्युक्ताः सन्ति । तदप्यस्यावास्तवरूपस्य दर्शनाय भवति ।

इन्द्र ही परमात्मा है। हे मनुष्यो ! तुम नित्य (समुद्र-व्यचसं) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले (रथीनाम्) प्रशंसा युक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों में युक्त (वाजानाम्) ज्ञानी आदि गुणी जनों के (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) विनाश रहित और जीवों के पालन हार (इन्द्रम्) परमात्मा को (विश्वाः) समस्त (गिरः) वाणी (अवीवृधन्) बढ़ाती अर्थात् विस्तार से कहती हैं उस परमात्मा को निरन्तर उपासना करो।[1]

भाव यह है कि सब मनुष्यों को चाहिए कि सब वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं योगीजन जिसकी उपासना करते हैं और मुक्त पुरुष जिसको प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्ट देव मानें।

५ सर्वपालक तथा सर्वरक्षक

स्वामी दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेदभाष्य में 'इन्द्र' को पालन करने वाला भी माना। इन्द्र का यह सर्वपालकत्व गुण उसे परमात्मा के समान सर्वपालक सिद्ध करता है।

हे मनुष्यो ! जिस (इन्द्र) पालन वाला (वाजस्य) विशेष ज्ञान का (प्रसवः) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (मा) मुझ (उदग्राभम्) अच्छे ग्रहण करने के साधन को (उत्, अग्रभीत्) ग्रहण कर बढ़े जो (अध) इसके पीछे उसके अनुसार पालना करने और विशेष मान दिलाने वाला पुरुष (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुजनों को (निग्राभेण) पराजय से (अधरान्) नीचे गिराया (अकः) करे उसको तुम राजा भी सेनापति करो।

भाव यह कि जैसे ईश्वर पालना करने वाला है वा मनुष्य पालना के लिए धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करने और दण्ड देने के लिए दुष्टों को नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं।

इस मन्त्र में इन्द्र (ईश्वर) को 'वाजस्य प्रसव' अर्थात् 'विज्ञान का उत्पादक' कहा गया है।

---

१ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥
यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७.६१

२ वही १७.३
वाजस्य मा प्रसव उदग्राभमोदग्रभीत्।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरान् अकः॥

मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। ईश्वर साधुओं व सज्जनों का रक्षक व पालक है तथा दुष्टों का संहारक है।[1] जैसा ईश्वर है वैसे ही जो मनुष्य पालन के लिए सज्जनों को ग्रहण करते हैं तथा ताडन के लिए दुष्टों को वश में करते हैं वही राज्य कर सकते हैं, वही सेनापति बनाने योग्य है।

जैसे भक्त गण भक्तिभाव में तन्मय होकर भगवान को माता, पिता आदि शब्दों से सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं,[2] वैसे ही ऋग्वेद में इन्द्र को सम्बोधित करके प्रार्थना की गई है कि हे सबको बसाने वाले बहुकर्मन् और ब्रह्मज्ञ इन्द्र! आप निश्चय से हमारे पिता, रक्षक व पिता के समान पालन करने वाले हो। आप माता के समान वात्सल्यगुण युक्त हो, आपसे हम सुख की कामना करते हैं।[3]

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥[4]

इस मन्त्र में कहा गया है कि हे इन्द्र! जिस प्रकार पिता पुत्रों के लिए सुन्दर विचारों तथा कर्मों की शिक्षा देकर उन्हें सर्वथा योग्य बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसी प्रकार आप भी हमें ऋतुमय अर्थात संकल्पशील, कर्मठ और यजनशील बनाइये। हे बहुतों द्वारा पुकारे जाने वाले इन्द्र! हम इस जीवन काल में अन्तर्यामी रूप से शिक्षित करते रहिये और जीते जी ही हमें ज्योति प्राप्त हो, ऐसी कृपा कीजिए।

एक मन्त्र में इन्द्र को जगदीश्वर मान कर उनसे रक्षा की प्रार्थना की गई है। हे (इन्द्र) जगदीश्वर आप (अत्र) इस लोक में (पृत्सु) युद्धों में (देव) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (सु) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिए तथा हे (द्युम्निन) अनन्त बलयुक्त परमेश्वर! (त्य) वर्तमान (ते) आपकी (महः) बड़ी (गीः) वेद वाणी (हि) जिस कारण इन (मीढ्वः) विद्या आदि अच्छे गुणों के सींचने वाले (हविष्मतः) उत्तम उत्तम हवि वाले (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वालों के (चित्) सदृश जैसे ये पूर्व कहे हुए आपके गुणों का प्रकाश करते हुए रात्रिदिन करते हैं वैसे जो (अवया) विशेष करके यज्ञ करने वाला विद्वान है वह आपकी आज्ञा से

१ तुलना गीता, ४.८
परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्टतकृताम
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

२ त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

३ ऋग्वेद ८.९८.११ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता
शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे ॥

४ वही, ७.३२.२६

जो (यव्या) उत्तम उत्तम यव आदि हवियों को अग्नि म होम करता है, वह सब प्राणियो को सुख देन वाली होती है।[१]

इस मन्त्र मे उपमालकार है तथा भाव यह है कि जब मनुष्य लोग परमेश्वर की आराधना कर अच्छे प्रकार सब सामग्री को सग्रह करके युद्ध मे शत्रुओ को जीत कर चक्रवर्ती राज्य का प्राप्त कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके बडे आनन्द का सेवन करत हैं, तब उत्तम राज्य होता है।

यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र म इन्द्र को परमेश्वर के रूप मे स्वीकार किया गया है। (इन्द्र) परमेश्वर (मयि) मुझ मे (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम) ऐश्वय की प्राप्ति के चिह्न तथा परमेश्वर ने जो अपने ज्ञान से देखा वा प्रकाशित किया है और जो सब सुखा को सिद्ध कराने वाले विद्वाना को दिया है, जिसको वे इन्द्र अर्थात विद्वान लोग प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं उन्ह तथा (राय) विद्या सुवण वा चक्रवर्ती राज्य आदि धना को (दधातु) नित्य स्थापना करे और उसकी कृपा से तथा हमार पुरुषाथ म (मघवान) जिसम कि बहुत धन राज्य आदि पदार्थ विद्यमान हैं, जिन करके हम लोग पूण ऐश्वय युक्त हो बसे (अस्मान) हम विद्वान धर्मात्मा लोगो को धन (सचन्ताम) प्राप्त हो तथा इसी प्रकार (अस्माकम) हम परोपकार करने वाले धर्मात्माओ की (आशिष) कामना (सत्या) सत्य सिद्ध (सन्तु) हो और ऐसे ही (न) हमारी (आशिष) जो न्याय पूवक इच्छा युक्त क्रियाएँ हैं वे भी सत्य सिद्ध (सन्तु) हो तथा इसी प्रकार (माता) धम, अथ काम और मोक्ष की सिद्धि से मान्य करन हारी विद्या और (पृथिवी) बहुत सुख देने वाली भूमि है (उपहूता) जिसको राज्य आदि सुख के लिए मनुष्य क्रम से प्राप्त होने हैं वह (माता, पृथिवी माम्) सुख की इच्छा करने वाले मुझ को (उपह्वयताम्) अच्छे प्रकार उपदेश करती है तथा मेरा अनुष्ठान किया हुआ यह (अग्नि) भौतिक अग्नि जिसको कि (आग्नीध्रात) इन्धनादि से प्रज्वलित करत हैं वह वाञ्छित सुखो का करन वाला होकर हमारे सुखा का आगमन करन, क्योकि एस ही अच्छे प्रकार होम का प्राप्त हो के चाहे हुए कार्यो को सिद्ध करन हारा होता है। (स्वाहा) सब मनुष्यो के लिए वेदवाणी इस

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३ ४६

मा पू ण इन्द्रात्र पत्सु
दवरस्ति हि प्मा ते गुष्मिन्नवाय ।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या
हविष्मतो मरुतो वन्दते गी ॥

क्षम को कहती है।' भाव यह है कि जो मनुष्य पुरुषार्थी परोपकारी ईश्वर के उपासक हैं वे ही श्रेष्ठ ज्ञान उत्तम धन और सत्य कामनाओं को प्राप्त होते हैं औ नहीं।

आध्यात्मिक प्रसग मे आत्मा से अभिप्राय है जीवात्मा, सचेतन शरीर तथा परमात्मा।' इन्द्र का पारमार्थिक दृष्टि से विचार करते हुए परमात्मा तथा जीवात्मा के रूप में वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

६ इन्द्र जगत् का स्वामी

इन्द्र जगत का स्वामी है। वह देवाधि देव है। महान् ऐश्वर्य का आधार है। स्वय भी ऐश्वयवान है तथा ऐश्वय प्रदाता भी है।

शौनक ने इन्द्र को जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकार के प्राणियो का प्राण रूप और सम्पूर्ण जगत का स्वामी कहा है।' सूर्य, अग्नि, विद्युत, वायु जल आदि देवो मे सर्वोपरि इन्द्र देव है अत वह देवो का अधिपति है। ऋग्वेद के मन्त्र '१ ६ १' की परमेश्वर परक व्याख्या करते हुए भाष्यकारो ने इन्द्र को जगत का स्वामी परमेश्वर माना है।' मन्त्र का देवता अर्थात प्रतिपाद्य विषय इन्द्र है। सायण के अनुसार ब्रह्म सूर्य है अरुण अग्नि है तथा चरणशील वायु है और

---

१ यजुर्वेद-भाष्य (दयानन्द), २ १०
मयीदमिन्द्र इन्द्रिय दधात्वस्मान् रायो मघवान सचन्ताम्।
अस्माक सन्त्वाशिष सत्या न सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोप
मा पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥

२ (क) वाचस्पत्यम, भाग-१, पृ० १३६
अध्यात्मम देहमिन्द्रियादिकम् आत्मान ब्रह्म वाऽधिकृत्येत्यर्थो तत्र देहाधिकारे अध्यात्ममिति बृ०उ० अधिदेवताशब्दे दश्यम। स्वस्यैव ब्रह्मण एवाशतया जीवस्वरूपण भावो भवन स एवात्मान देहमधिकृत्य भोक्तृत्वेन वर्तमानोऽध्यात्मशब्देनोच्यते इति श्रीधर। तत्र नैयायिकवैशेषिकमत आत्मा द्विविध जीवात्मा परमात्मा च।

(ख) एतरेयालोचनम् पृ० १८२
अध्यात्मव्याख्यान तु त्रिविध भवति आत्मशब्देन परापरात्मनो शरीरस्य च बोधात्।

३ बृहद्देवता २ ३५, पृ० ४०
चतुर्विधाना भूताना प्राणो भूत्वा व्यवस्थित।
इष्टे चैवास्य सवस्य तेनेन्द्र इति स्मृत।

४ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुष चरन्त परितस्थुष।
रोचन्ते रोचना दिवि।

द्युलोक में चमकने वाले रोचनशील लोक नक्षत्र और तारे हैं। ये सब इन्द्र के ही रूप हैं जो कि परमैश्वर्य से परिपूर्ण है। ऐसे सूर्य, अग्नि, वायु और नक्षत्रों के रूप में विराजमान इन्द्र को तीनों लोकों के प्राणी अपने कर्म में देवता रूप से सम्बद्ध करते हैं।[1]

स्वामी दयानन्द के अनुसार—जो योगी विद्वान् लोग (परितस्थुषः) चारों ओर के जगत के पदार्थों अथवा मनुष्यों को (चरन्तम्) जानने वाले सर्वज्ञ, (अरुषम्) अहिंसक करुणामय (ब्रध्नम्) विद्यायोगाभ्यास प्रेम के द्वारा सर्वानन्दवर्धक महान् परमेश्वर को अपने साथ युञ्जन्ति युक्त करते हैं वे (रोचना) ज्ञान से प्रकाशमान तेजस्वी होकर (दिवि) द्योतनात्मक सबके प्रकाशक परमेश्वर में (रोचन्ते) परमानन्द के योग से प्रकाशित होते हैं।[2]

स्कन्द स्वामी के अनुसार आध्यात्मिक पक्ष में मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि दीप्त और महान इन्द्र को स्तुति करने वाले और यज्ञ करने वाले लोग स्तुति और हवियों से सम्बन्धित करते हैं। आधिदैविक दृष्टि से विचारें तो मन्त्र में इन्द्र नाम से आदित्य की स्तुति की गई है। आदित्य रश्मियां जो आकाश में चमकती हैं, वर्षा ऋतु के आरम्भ में इस इन्द्र का जो सोमपान और असुरों के साथ युद्ध के लिए लालुप रहता है तथा सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत में परिभ्रमण करता है, वृष्टि-कर्म में उद्योजित करती हैं।[3]

शुक्ल यजुर्वेद में मधु-माधव आदि युग्ल मासों के नाम से वसन्त आदि छः ऋतुओं का कुछ मन्त्रों में वर्णन किया गया है।

इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया
देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥[4]

यह अंश प्रत्येक मन्त्र के अन्त में है। यहां पर भी इन्द्र को देवों में प्रधान तथा

---

१ इन्द्रो हि परमैश्वर्ययुक्तः।
परमैश्वर्यं च अग्निवाय्वादित्यनक्षत्ररूपेणावस्थानादुपपद्यते। ब्रध्नम् आदित्यरूपेणाव स्थितम्, अरुषं हिंसकरहितमग्निरूपेणावस्थितम् चरन्तम्-वायुरूपेण सर्वतः प्रसरन्तमिन्द्रम्, परितस्थुषः—परितो वस्थिता लोकत्रयवर्तिनः प्राणिनः युञ्जन्ति स्वकीये कर्मणि देवतात्वेन सम्बद्धं कुर्वन्ति। तस्यैवेन्द्रस्य मूर्तिविशेषभूतानि रोचना रोचनानि नक्षत्राणि दिवि द्युलोके रोचन्ते प्रकाशन्ते।
ऋग्वेद भाष्य (सायण) १ ६ १।

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (दयानन्द) (अजमेर संवत् २००६), पृ० २१६

३ ऋग्वेद भाष्य (स्कन्द स्वामी), १ ६ १

४ यजुर्वेद १३ २५, १४ ६ १४ १५ १४ १६, १४ २७, १५ ५७।

विशिष्ट कहा गया है। उवट तथा महीधर ने इन्द्र को देवराज कहा है तथा उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है।[1]

इन्द्र का अभिप्राय ईश्वर होने पर प्रकृति के दिव्य पदार्थ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि उसके अधीन और अनुशासन में रहने वाले देव हैं।[2] अतः इन्द्र देवाधिदेव है।

यदि जीवात्मा अथवा मन इन्द्र पद वाच्य है तो चक्षु श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियां और हस्तपादादि कर्मेन्द्रियां उसके अनुशासन में रहने वाले देव हैं। यदि मनुष्यों में राजा इन्द्र पद वाच्य है तो उसके अनुशासन में रहने वाले विद्वान सभासद आदि देव हैं। इन्द्र सबका स्वामी है। वह देवाधिदेव है। अतः कहा गया है कि इन्द्र देवगण तुम्हारी मित्रता के लिए सदैव नियम में रहने का प्रयत्न करते रहे, करते हैं तथा करते रहेंगे।[3]

इन्द्र की सामगान करने वाले बृहत्साम द्वारा, ऋग्वेदाध्यायी ऋचाओं के द्वारा तथा यजुर्वेदाध्यायी याजुष मन्त्रों के द्वारा स्तुति करते हैं।[4] इन्द्र ने आकाश में सूर्य को ऐसे स्थापित किया हुआ है, जिससे वह सुदीर्घकाल तक प्राणियों को दिखाई दे सके। वह इन्द्र ही जल से भरे मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है।[5] सबसे ऊपर वर्तमान जिस एकमात्र देव को मनुष्यादि प्राणी रक्षा आदि के लिए पुकारा करते हैं, वह इन्द्र है।[6] सर्वाधिक स्तुति को प्राप्त होने वाला, सबका नियन्ता व स्वामी इन्द्र परमात्मा ही है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (उवट व महीधर) १३ २५
इन्द्रमिव देवा। यथा इन्द्रं देवाना राजानम् परिचरणाय देवा अभितविशन्ति एवं वस तमृतमया इष्टका परिचरणाया भिसविशन्तु।

२ यजुर्वेद, २५ १३
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा।
यस्यच्छायामृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

३ वही, ३३ ९५
देवास्तु इन्द्र सख्याय यमिरे।

४ ऋग्वेद, १ ७ १
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्के भिरर्किण।
इन्द्रवाणीरनूषत।

५ वही, १ ७ ३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि।
वि गोभिरद्रिमैरयत्।

६ वही, १ ७ १०
इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य।
अस्माकमस्तु केवल॥

इन्द्र विश्वा अवीवृधन्
समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथानां वाजानां
सत्पतिं पतिम् ॥[1]

जो इन्द्र समुद्र की व्याप्ति के समान महान है प्रशस्त रथ वाले वीरों में भी श्रेष्ठ वीर और प्रशस्त रथ वाला है संग्रामों, अन्नों और बलों का रक्षक, सत्य व सज्जनों का संरक्षक तथा ऐश्वर्य का स्वामी है सम्पूर्ण वाणियां उसके यश को फैलाती है।

पारमार्थिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से यहां इन्द्र शब्द से संसार रूपी रथ का स्वामी होने के कारण परमेश्वर अर्थ अभिप्रेत है। व्यावहारिक दृष्टि से सर्वोत्तम रथ वाला परमैश्वर्य युक्त प्रजापालक राजाधिराज अर्थ लिए जा सकते है।

७ सुख प्रदेश्वर इन्द्र

इन्द्र को सुख देने वाला ईश्वर भी माना गया है और प्रार्थना की गई है कि (इन्द्र) सुख देने वाले ईश्वर ! जो आप (स्तरी) सुखों से आच्छादन करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या आदि दान करने वाले मनुष्य के लिए (कदाचन) कभी (इत्) दान को (नु) शीघ्र (न) नहीं (सश्चसि) प्राप्त कराते, तो हे (मघवन्) विद्यादि धन वाले जगदीश्वर। (देवस्य) कर्मफल के देने वाले (ते) आपका (दानम्) दिया हुआ (इत्) ही दान (दाशुषे) विद्यादि देने वाले के लिए (भूयः) फिर (नु) शीघ्र (उपोप पृच्यते) (कभी नहीं) प्राप्त होता।[2]

भावार्थ यह है कि जो जगदीश्वर कर्म के फल को देने वाला नहीं होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त नहीं हो सकता।

एक अन्य मन्त्र में इन्द्र को परमेश्वर मान कर सुख की कामना की गई है।

हे मनुष्य ! तुम (रोदसी) आकाश भूमि (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुमखम्) सुन्दर यज्ञ जिसमें हो ऐसे (नृम्णम्) धन (सहः) बल (च) और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (सपर्यतः) सेवते हैं उस विश्वानराय (सब मनुष्य जिसमें हों वह) महान (मन्दमानाय) आनन्दस्वरूप (विश्वाभुवे) सबको प्राप्त व सब पृथिवी के स्वामी व संसार जिसमें हों ऐसे ईश्वर के अर्थ (प्र अर्च) पूजा करो अर्थात् उसको मानो वह (वः) तुम्हारे लिए (अन्धसः) अन्नादि के सुख को देवे।

---

१ यजुर्वेद, १०.२६, १५.६१ व १७.६१
२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३.३४
कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥

भाव यह है कि हे मनुष्यो ! जिसके उत्पन्न किए धन और बलादि को सब सेवत उसी महाकीर्ति वाले सबके स्वामी आनन्द स्वरूप सर्वव्याप्त ईश्वर को तुमको पूजा और प्रार्थना करनी चाहिए वह तुम्हारे लिए धनादि से होने वाले सुख को देगा।[1]

परमैश्वर्य युक्त परमात्मा उत्तम पदार्थों की रचना करके प्राणी मात्र को सुख देता है। इसी दृष्टि से इन्द्र का भी सबका सुख देने वाला कहा गया है।

हे चक्रवर्ति राजन् ! मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त परमात्मा के लिए जो आप (उपयामगृहीत) योगविद्या के प्रसिद्ध अंग यम के सेवन वाले पुरुषों से स्वीकार किये (असि) हो। उस (ध्रुवसदम्) निश्चल विद्या विनय और योग धर्मों में स्थित (नृपदम्) नायक पुरुषों में अवस्थित (त्वा) आपको तथा (मनः सदम्) विज्ञान में स्थिर (जुष्टम्) प्रीतियुक्त (त्वा) आपको (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। जिस (ते) आपका (एष) यह (योनि) सुखनिमित्त है, उस जुष्टतमम अत्यन्त सेवनीय (त्वा) आपको (इन्द्राय) राज्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धारण करता है। हे राजन ! मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्य धारण के लिए जो आप (उपयाम गृहीत) प्रजा और राज पुरुषों से स्वीकार किये (असि) हो। उस (अप्सुसदम्) जलों के बीच चलते हुए (घनसदम्) को आदि पदार्थों को प्राप्त हुए (त्वा) आपको और (व्योम सदम) विमानादि यानों से आकाश में चलते हुए (जुष्टम्) सबके प्रिय (त्वा) आपका गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ।

हे सबकी रक्षा करने हारे सभाध्यक्ष राजन ! जिस (ते) आपका (एष) यह (योनि) सुखदायक घर है, उस (जुष्टतमम) अतिप्रसन्न (त्वा) आपका (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं के मारने के लिए स्वीकार करता हूं। हे सब भूमि में प्रसिद्ध राजन्। मैं (इन्द्राय) विद्या, योग और मोक्षरूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए जो आप (उपयामगृहीत) साधन उपसाधनों से युक्त (असि) हो, उस (पृथिवी सदम्) पृथिवी में भ्रमण करते हुए (अन्तरिक्षसदम्) अवकाश में चलने वाले (त्वा) आपका और (दिविसदम) न्याय के प्रकाश में नियुक्त (देवसदम) धर्मात्मा और विद्वानों के मध्य में अवस्थित (नाकसदम) सब दुखों से रहित परमेश्वर और धर्म में स्थिर (जुष्टम) सेवनीय (त्वा) आपको (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे सब सुख देने और प्रजापालन करने हारे राजपुरुष ! जिस (ते) तेरा (एष) यह (योनि) रहने का स्थान है उस (जुष्टतमम) अत्यन्त प्रिय (त्वा) आपको (इन्द्राय) समग्र ऐश्वर्य सुख होने के लिए (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

भाव यह है कि हे राज प्रजाजनो ! जैसे सर्वव्याप्त परमेश्वर सम्पूर्ण ऐश्वर्य

---

१ प्रवो महे मन्दमानायान्धसोर्चा
विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमख सहो
महि श्रवो नम्ण च रोदसी सपर्यत ॥ यजुर्वेद भाष्य, ३३ २१

के लिए जगत रच के सबके लिए सुख देता है, वैसा ही आचरण तुम लोग भी करो कि जिससे अर्थ, धर्म काम और मोक्ष फलो की प्राप्ति सुगम होवे।[1]

हे (मरुत) विद्वान् मनुष्यो! (ऋतावृध) ऋत अर्थात् सत्य को बढाने वाले आप लोग (देवाय) दिव्य गुणो वाले (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त ईश्वर के लिए (देवम्) दिव्य सुखदायक (जागृवि) जागरूक (ज्योति) तेज को (अजनयत्) उत्पन्न करो उस (वृत्रहन्तमम्) वृत्र अर्थात् मेघ का हनन करने वाले सूर्य के समान (बृहद्) महान साम का (तस्य) उस ईश्वर के लिए (गायत) गान करो अर्थात् उसकी स्तुति करो।[2]

भाव यह है कि मनुष्य सदा ही युक्त आहार विहार से शरीर और आत्मा के रोगो का निवारण करके, पुरुषार्थ को बढा कर, परमेश्वर के प्रति स्तुति गान करे।

हे विद्वान! जैसे—(देवम्) दिव्य (वारितीनाम्) वरण के योग्य पदार्थों के मध्य मे वर्तमान (स्वासस्थम्) अच्छे प्रकार बैठने के आधार (इन्द्रेण) ईश्वर के साथ (आसन्नम्) समीपस्थ (इन्द्रम्) विद्युत एवम (बर्हि) अन्तरिक्ष (देवम्) दिव्य गुण का (अवर्धयत्) बढाता है, (अन्या) अन्य (बर्हीषि) अन्तरिक्ष के अवयव (अभि+अभूत) सब ओर व्याप्त है, (वसुवने) पदार्थ विद्या के याचक के लिए (वसुधेयस्य) सब द्रव्यो के आधार जगत के मध्य मे (वेतु) पदार्थों को प्राप्त कराता है, वैसे (यज) यज्ञ कर।[3]

जैसे आकाश समीपवर्ती है वैसे ईश्वर का समीपवर्ती जीव है। यहाँ उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त होने से वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। भाव यह है कि जैसे सब ओर व्याप्त आकाश सब पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है, सबके समीप है, वैसे ईश्वर के समीपवर्ती जीव को जानकर इस संसार मे सुपात्र याचक को ही विद्यादि का दान दो।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ९ २

अप्सुषद त्वा नृषद मन सदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्ट गृह्णाम्येष ते योनि रिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। अप्सुषद त्वा घृतसद व्योमसदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। पृथिविसद त्वान्तरिक्षसद दिविसद देवसदम् नाक सदमुपयामगृहीतो सीन्द्राय त्वा जुष्टम गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम ॥

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २० ३०

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देव देवाय जागृवि ॥

३ देव बर्हिर्वारितीना देवमिन्द्रमवर्द्धयत्।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥
वही, २८ २१

जिनका (इध्म) प्रदीप्त, (पृथु) विस्तीर्ण (स्वरु) प्रतापी (युवा) युवक (बृहन्) महान (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान परमात्मा (सखा) मित्र है (एषाम) इन मनुष्यों का (इत) ही (भूरि) बहुत (शस्तम) स्तुति योग्य कर्म होता है।[1]

इस मन्त्र म उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त होन के कारण वाचक लुप्तोपमा अलकार है। परमात्मा के सखा सूय के समान प्रतापी होते हैं। भाव य। है कि प्रदीप्त, विस्तीण प्रतापी युवक महान परम एश्वय वाला परमात्मा जिन मनुष्या का मित्र है वे अत्यन्त प्रशसा को प्राप्त होत है और जैसे इस ब्रह्माण्ड मे सूय प्रताप से युक्त है, वैसे प्रतापी होत हैं।

इस मन्त्र म इन्द्र (=ईश्वर) को 'इध्म' अर्थात प्रदीप्त 'पृथु' अर्थात् विस्तीण 'स्वरु' प्रतापी, 'युवा' अर्थात युवक और बृहत अर्थात महान् कहा गया है।

ऋग्वेद म इन्द्र से सम्बन्धित कुछ मन्त्रो मे इन्द्र का हरियो अर्थात अश्वो के साथ अथवा अश्वो से जुडे हुए रथ मे बठकर इतस्तत आ जाना, सग्रामो को जीतना, सोमपान के लिए अत्यन्त लालायित रहना, सोमपान से उत्पन्न शक्ति स अनेक वीरता युक्त कार्यों को करना, सब पर शासन करना, अपने अधीन प्रजा को अच्छे कार्यों मे लगाना व अशुभ कार्यों स रोकना, दुष्ट प्रकृति को अर्थात वत्रादि को अपने वज्र से मारना, सासारिक भोगो और वैभवो को भोगना आदि का वणन किया गया है। इस प्रकार के वणनो म इन्द्र शब्द सामान्य जीव अथवा जीवात्मा का वाचक ही प्रतीत होता है। वास्तव मे जीवात्मा ही विविध क्रियाओ का कर्ता और विविध भोगो का भोक्ता है।[2]

स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य मे शरीर परक अध्यात्म का चित्रण करते हुए जीवात्मा योग, प्राणादि सम्बधी विचार प्रस्तुत किए हैं। एक मन्त्र मे अग्नि के दृष्टान्त से जीवात्मा के गुणो का वणन किया गया है। एक मन्त्र मे जीवात्मा को 'चित' अर्थात विद्युत् के समान स्वप्रकाश, 'अमृत' अर्थात स्वरूप के नाशरहित, 'सहोजा' अर्थात बल का उत्पादन करने वाला, 'होता' अर्थात कर्मफल का भोक्ता, सब

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३३ २४
बर्हिनिदिध्मएषा भूरि शस्त पृथु स्वरु ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥

२ साख्य दशन, सूत्र १ १०४ व ६ ५०
चिदवसाना भोग । चिदवसाना
भुक्तिस्तत्कर्माजितत्वात् ।

मन और शरीर का धर्ता 'दूत' अर्थात सबको चलाने हारा और 'देवताता' अर्थात् दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्य स्वरूप कहा गया है।[1]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा है कि मरण को प्राप्त हुआ जीव अपने कर्म से तीव्र स्वभाव वाला और शान्त, भयकारी और निर्भय, अन्धकार को प्राप्त और प्रकाश को प्राप्त, कांपता हुआ और निष्कम्प वस्तु, सहनशील और न सहने वाला, संयुक्त और वियुक्त तथा विक्षेप को प्राप्त होता है।[2]

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च।
सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा॥[3]

इसी मन्त्र का स्वामी जी कृत पदार्थ अन्वयानुसार इस प्रकार होगा—पुनः ये जीवा विद्वांसो यूयं शृणुताह। हे मनुष्या मरणं प्राप्तो जीवः (स्वाहा) स्वकीयया क्रियया (उग्रश्च) तीव्र स्वभावः शान्तश्चचर[4] (भीमः) बिभेति यस्मात् स भयंकरः निर्भयश्च (ध्वान्तश्च) ध्वान्तमन्धकारं प्राप्तः प्रकाशं गतश्च, (धुनिश्च) कम्पमानः निष्कम्पश्च (सासह्वान् च) भृशं सहमानः असहमानो वा (अभियुग्वा च) यो भितो युङ्क्ते स वियुक्तश्च (विक्षिपः) यो विक्षिपति विक्षेपं प्राप्नोति स जायते।

स्वामी जी ने जीवात्मा की परमात्मा से पृथक् स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है, जीव भी परमात्मा के समान अजर-अमर है, किन्तु परमात्मा सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ। परमात्मा द्रष्टा है तथा जीव अपने कर्मफलों का भोक्ता है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'[5] 'न नूनमस्ति नो श्वः'[6] 'अयं होता प्रथमः'[7] आदि मन्त्रों के भाष्य में ये सम्यक् प्रमाणित कर दिया गया है।

---

१ ऋग्वेद १।५८।१
नू चिन्त्सहोजा अमृतो नि तुन्दते
होता यद् दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो
मम आ देवताता हविषा विवासति॥
२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३९।७
३ वही, ३९।७
४ ऋग्भाष्य (सायण) १०।९०।१
च से अन्य सदृश अथवा विरोधी वस्तुओं का ग्रहण कर लिया जाता है।
चकाराभ्याम् अन्यदपि सजातीय धर्मजातम् समुच्चीयते।
५ ऋग्वेद भाष्य (दयानन्द) १।१६४।२०
६ वही, १।१७०।१
७ वही १।६४।

यह शरीर एक यज्ञ स्थली है मन सप्त होता यज्ञ को रचा रहा है। पाँच प्राण, जीवात्मा व अव्यक्त में मानस यज्ञ के सात होता माने गए हैं।[1] आत्मा का कर्त्तव्य परमात्मा का दर्शन करना है। कहा भी गया है—'युञ्जते मन उत युञ्जते धियः'[2] अर्थात जीवात्मा को परमात्मा के साथ योग करना है। स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य में अनेक मन्त्रों में 'इन्द्र' का अर्थ जीव अथवा जीवात्मा किया है।[3]

इन्द्रिय शब्द से भी सिद्ध होता है कि इन्द्र का अर्थ जीवात्मा है। जब कोई मरता है तो भी कहा जाता है कि इसके प्राण चले गए अथवा आत्मा चला गया।[4]

जीवात्मा ही प्राण और इन्द्रिय रूप देवों का प्रमुख वा राजा है। इन्द्र शब्द जीवात्मा का वाचक है।[5] देवराज यज्वा ने अपने निघण्टु भाष्य में इन्द्र को आत्मा का वाचक माना है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३ ४४।

२ ऋग्वेद, ५ ८१ १।

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १६ ७६, २२ ५४, २८ ८, २८ ६, २८ १८, २८ २६, २८ २८ २८ ३३, २८ ३५, २८ ३६, २८ ३७, २८ ३८, २८ ३६, २८ ४०, ३२ १३।

४ इन्द्रिय शब्देन सिद्ध्यति यद् आध्यात्मिक दृष्ट्या इन्द्र=जीवात्मा यथा कश्चित् म्रियते तथा कथ्यते—प्राणा (वायव) निर्गता, जीवात्मा (इन्द्र) वा निर्गत।
   मनुष्य स्वजीवात्मानम् (इन्द्रम्) प्रार्थयत यत्षट्शत्रुभ्यो मोह क्रोध मात्सर्य-काम मद लोभेभ्यो मम रक्षां कुरु, एषां च शत्रूणाम् दृषदेव पेषणं कुरु।
   उलूकयातुं शुशुलूकयातुम्।
   जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
   सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुम्
   दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥
   ऋग्वेद, ७ १०४ २२।
   वेद समुल्लास पृ० १०।

५ (क) अष्टाध्यायी, ५ २ ९३।
   इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमितिवा।
   काशिका, ५, २ ९३।
   इन्द्रियमिति रूढिरेषा चक्षुरादीनां करणानाम्।
   इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। इन्द्र आत्मा, स चक्षुरादिना करणेनानुमीयते, नाकर्तृकं करणमस्ति। इन्द्रेण दृष्टम्, आत्मना दृष्टमित्यर्थ।
   (ख) तैत्तिरीय ब्राह्मण, २ २ १० ४
   अस्मिन् वा इदमिन्द्रियं प्रत्यस्थादिति तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम्।

'इन्द्र । इदि परमैश्वर्ये । परमैश्वर्ययुक्त उच्यते । इन्द्रस्य लिंगम्, एनेन हि ऐश्वर्ययुक्त इति व्यज्यत । अत्र षष्ठी समर्थात लिंगार्थत्न् । यद्वा इन्द्रेण दृष्टमिन्द्रियम । यद्वा इन्द्र आत्मा तेनेन शुभाशुभेन कर्मणा सृष्टम । इन्द्रजुष्टम वा आत्मना सेवितम तद्द्वारेण भोगोत्पत्ते ।'[1]

दुर्ग ने भी आत्मा को इन्द्र पद वाच्य माना है ।[2]

द्वावात्मानौ अन्तरात्मा शरीरात्मा च ।[3] इस वचन के अनुसार आत्मशब्द से अन्तरात्मा और शरीरात्मा दोनो का ग्रहण कर लिया जाता है । ऋग्वेद के अनुसार जीवात्मा अमरत्व परन्तु मरणशील शरीर के साथ आविर्भूत और तिरोभूत होने वाला है ।[4] ऋग्वेद के एक मन्त्र का भाष्य करते हुए सायण ने स्वीकार किया है कि मन्त्र में इन्द्र की जो स्तुति की गई है वह इन्द्र नाम से अन्तरात्मा की ही स्तुति की गई है ।[5]

स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र स्तुति को जीवात्मा अथवा जीव की स्तुति मान कर पारमार्थिक अर्थ प्रस्तुत किया है । एक मन्त्र का अर्थ करते हुए कहा है कि इन्द्र नामक यह जीव बुद्धियो से रूपो मे प्रत्यक्ष वर्णन करने के लिए तदाकार बुद्धि वाला होता है और अनेक प्रकार के शरीरो को धारण कर चेष्टा करता है और शरीर के प्रति तत्पर स्वभाव वाला होता है और विद्युत से युक्त इसके शरीर मे जो असंख्य नाड़ियाँ, इन्द्रिय अन्त करण व प्राण है उनमे यह सारे शरीर के समाचारो का जाना करता है ।[6]

---

१ निघण्टु भाष्य (देवराज यज्वा) २ १० २ ।
२ निरुक्त टीका (दुर्ग), १ १ २ ।
इन्द्रियनित्य वचनमोदुम्बरायणः
निरुक्त टीका (दुर्ग) १ १ २ ।
इन्द्र आत्मा स येन ईयते लिंग्यते अनुमीयते वास्त्यसाव यस्येदम करणम ।
३ महाभाष्य १ ३ ६७ ।
४ ऋग्वेद १ १६४ ३० ।
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम ।
जीवोमृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनि ॥
वही, १ १६४ ३८ ।
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येनासयोनि ।
ताशश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्य चिक्युर्न निचिक्युरन्यम् ।
५ ऋग्वेद १० २७ २४ ।
६ ऋग्वेद भाष्य (सायण), १० २७ २४ ।
७ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), ६ ४७ १८ ।

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति ना य प था विद्यतेऽयनाय'[1] तथा
उर्वारुकमिव ब धना मृत्योमु क्षीयमामतात्'।[2]

शुक्लयजुर्वेद के इन म त्राशो को ध्यान मे रखते हुए इ द्र का दूसरा आध्यात्मिक स्वरूप यह भी है कि वह स्वयम तो अत्य त सूक्ष्म, सत चित स्वरूप, अज मा और विनाशरहित है कि तु कम के अधीन होन स शरीर का धारण करके सुख दु खादि भागो का भोगता रहता है। अ त मे परम पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार करके मत्यु रूप ब धन से मुक्त होता है।[3]

ऋग्वेद के समान यजुर्वेद मे भी अनेक म त्रा मे इ द्र पद जीवात्मा अथ का बोधक है।

ऐ द्र प्राणोऽङ्गेऽङ्गे निदीध्य द्र
उदानोऽङ्गेऽङ्गे निधीत ।[4]

यजुर्वेद के इस मन्त्र मे शरीर मे रहने वाले प्राण और उदान का मुख्य सम्ब ■ इ द्र स बताया गया है। इ द्र से सम्बन्धित प्राण और उदान अग अ ग मे रहते हैं। इन्द्र पद जीवात्मा का प्रत्यायक है। सायण, उवट, महीधर और स्वामी दयान द— इन भाष्यकारो म इस स्थल पर कोई विरोध नही है। इसन अश म चारो वेदभाष्यकारो का ऐकमत्य है।[5]

इ द्रो जीवो देवता अस्य स ए द्र। (प्राण) शरीरस्थो वायुविशेष (अग अगे) यथा प्रत्यग प्रकाशते।'[6]

१ शुक्लयजुर्वेद, ३१ १८।
२ वही, ३ ६०।
३ वेद मे इ द्र, पृ० ३१।
४ यजुर्वेद, ६ २०।
५ (क) यजुर्वेदभाष्य (उवट), ६ २०।
पशु समशति। ऐ द्र प्राण।
इ द्र आत्मा तस्य स्वभूत प्राण ऐ द्र, प्राण।
(ख) यजुर्वेद भाष्य (महीधर), ६ २०।
ऐ द्र प्राण इति पशु समशतीति, पशुरूपम् हवि स्पृशेदिति सूत्राथ। इ द्र आत्मा तत्सम्ब धी प्राण प्राणवायुरस्य पशोरगे ■ गे सर्वेष्वगेषु निदीध्यत्। निहित तथा ऐ द्र इ द्रसम्बन्धी, उदान वायु पशो सर्वेष्वगेषु निधीत निक्षिप्त।
(ग) काण्वसहिता भाष्य (सायण) १ ६ ४ ४।
ऐ द्र इ द्रसम्ब धी प्राणवायु।
६ यजुर्वेदभाष्य (दयान द) ६ २०।

यजुर्वेद के अनेक मन्त्रो मे इन्द्र और इन्द्रिय शब्द का साथ साथ प्रयोग हुआ है।[1] इन स्थलो म इन्द्र से सम्बन्धित वस्तु इन्द्रिय कही गई है। इन्द्र का अर्थ जीवात्मा होने पर प्रकरणानुसार इन्द्रिय का अर्थ भी शरीरस्थ करचरणादि कर्मेन्द्रिय व चक्षु श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय लिया जाएगा। प्रकरण भेद म इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्यवान मानने पर इन्द्रिय का अर्थ परमैश्वर्य होगा। जो इन्द्रिय युक्त है अर्थात ऐश्वर्य युक्त है वह इन्द्र है।

अश्विना तेजसा चक्षु प्राणेन सरस्वती वीर्यम।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम।[2]

मन्त्र के उत्तरार्ध का भाव है कि इन्द्र ने वाणी और बल से इन्द्र के लिए इन्द्रिय का धारण किया। महीधर के अनुसार प्रथमान्त इन्द्र से पूर्व जन्म मे उत्पन्न इन्द्र और चतुर्थ्यन्त इन्द्र म वर्तमान इन्द्र का बोध होता है।[3] स्वामी दयानन्द के अनुसार 'इन्द्र' अर्थात सभा का अधिष्ठाता 'इन्द्राय' अर्थात जीव के लिए तथा 'इन्द्रियम' अर्थात जीव के चिह्न को—यह अर्थ करके मन्त्र की सगति लगाई गई है।[4]

एक मन्त्र म इन्द्रम का अर्थ सूर्य के तुल्य जीव किया गया है।

हे विद्वन्! जो (इन्द्र) प्राणो के द्वारा (भारती) धारण करने वाली वाणी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञान से युक्त वाणी (यज्ञम) सगति के योग्य

---

१ यजुर्वेद ९ ४०, १० १८।
इम देवा असपत्न सुवध्व महते क्षत्राय महते।
ज्यैष्ठ्याय महते जान राज्याय इन्द्रस्य इन्द्रियाय॥
वही, १० १७।
सोमस्य त्वा द्युम्ने नाभिषिचाम्यग्नेर्भ्राजसा
सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण।
वही २० ५६, ७०, ७३, ७८, ८०।
वही १९ ७२ ७९।
इन्द्रस्येन्द्रियेण०
२ यजुर्वेद, २० ८०।
३ यजुर्वेदभाष्य (महीधर), २० ८०।
इन्द्र कल्पान्तरीण वाचा बलेन च सह इन्द्रायैतत कल्पोत्थाय इन्द्रिय सामर्थ्य ददौ।
एवमश्विसरस्वतीन्द्रा इन्द्राय तेज आदि दधुरित्यर्थ।
किन्तु यजुर्वेद के एक मन्त्र ९ ४० मे—
महीधर ने ही इन्द्रस्येन्द्रियाय का अर्थ आत्मा के पराक्रम के लिए अथवा आत्मा के ज्ञान के लिए किया है। 'इन्द्रस्यात्मन इन्द्रियाय वीर्याय आत्मज्ञानसामर्थ्याय।
४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) २० ८०।

व्यवहार को (वसुवनी) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसनीय वाणी (गृहान्) गृहस्थों व घरों का धारण करती हुई (देवी त्रिस्र) ये तीन दिव्य वाणियाँ (तिस्र देवी) तीन दिव्य क्रियाओं को तथा (पतिम्) पालक (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य जीव को (अवर्द्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार (वसुवने) संसार में (गृहान्) गृहस्थों वा घरों को (व्यन्तु) व्याप्त करती हैं, उनका तू (यज) समझकर आप उनकी (अस्पृक्षत) स्पृहा अथवा कामना करो।[1]

भाव यह है कि जैसे जल, अग्नि और वायु की गतियाँ दिव्य क्रियाओं को और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे सब मनुष्य उक्त तीनों वाणियों को जानें तथा इस संसार में लक्ष्मी को प्राप्त करें।

इन्द्र ही वायु को धारण करने वाला जीव है। (होतारा) विद्या आदि के दाता अध्यापक और उपदेशक। जैसे—(ईड्या) कमनीय विद्वानों में कुशल (देवा) कमनीय विद्वान् (वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले (इन्द्रम्) कामना करने वाले (इन्द्रम्) जीव को (देवी) शुभ गुणों की कामना करने वाले माता पिता तथा (देवम्) कमनीय पुत्र के समान (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वीताम्) प्राप्त करते हैं।

हे विद्वन्! (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुभ् नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाश से युक्त (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय तथा (वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर।[2]

भाव यह है कि विद्वान लोग माता-पिता के समान वेद विद्या से सबको बढ़ावें एवम् मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें। इन्द्र (=जीव) को प्राणों का धारक भी कहा गया है।

हे (होतः) यजमान! जैसे (होता) विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला विद्वान् (वृत्रहन्तमम्) वृत्र अर्थात् मेघहन्ता सूर्य के तुल्य (इडाभिः) सुशिक्षित

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २८ १८
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
अस्पृक्षद् भारती दिवं रुद्रैर्यज्ञं सरस्वतीडा वसुमती
गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥

२ यजुर्वेद-भाष्य (दयानन्द) २८ ४०
देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रम्।
वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियम् त्विषिमिन्द्रे
वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥

वाणिया स (ईटेन्यम्) स्तुति के योग्य (ईडितम) प्रशस्त (सह) बल (न्यम) प्रशसा के योग्य (सामम) सोम आदि ओषधि गण (वयोधसम्) कमनीय प्राणा के धारक (इन्द्रम) जीव को (यक्षत) सग करता है (इन्द्रियम) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (अनुष्टुभम्) स्तुति क योग्य (छन्द) स्वतन्त्रता (पञ्चाविम) पाच प्राणो की रक्षा करने वाली (गाम) पृथिवी और (वय) कमनीय वस्तु को (आज्यस्य) विज्ञेय वस्तुओ के मध्य मे (दधत) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त करता है वैसे इन्हे (यज) प्राप्त कर।

भाव यह है कि जो मनुष्य न्याय से प्रशस्त गुण वाले सूर्य क तुल्य प्रशस्त होकर जानने योग्य वस्तुओ को जानकर स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियता और राज्य को धारण करत हैं, वे प्रशसा क योग्य होते हैं।[1]

हे विद्वन ! जैसे (दुघे) सुख से पूर्ण करने वाली, (सुदुघे) अच्छे प्रकार कामनाओ को पूर्ण करने वाली (देवी) सुखदायी (ऊर्जाहुती) सुगन्धित अन्न की आहुतियाँ (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम) स्त्रीव्रत विद्वान के तुल्य (अवर्धताम) बढाती हैं। (पङ्क्त्या) पङ्क्ति नामक (छन्दसा) छन्द मे (इन्द्रे) जीव म (शुक्रम्) वीर्य और (इन्द्रिय) धन को (वीताम) प्राप्त कराती है, वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) धन सेवक के लिए (वय) कमनीय सुख को (दधत) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर।[2]

भाव यह है कि मनुष्यो, जैसे अग्नि म डाली हुई आहुती, मेघ मण्डल म पहुँच कर और फिर लौट कर शुद्ध जल से सब जगत् को पुष्ट करती है, वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट करना चाहिए।

हे विद्वन् ! जैसे (उपासानक्ता) रात्रि और दिन के तुल्य (देवी) विद्यादि गुणो से देदीप्यमान अध्यापिका और अध्येत्री स्त्रियाँ (वयोधसम) आयु को धारण करने वाले (देवम) दिव्य गुणो से युक्त (इन्द्रम) जीव को तथा (देवी) दिव्य पतिव्रता स्त्री (देवम) दिव्य स्त्रीव्रतपति के तुल्य (अवर्धताम) बढाती हैं और जैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य याचक के लिए (वीताम) प्राप्त होती है वैसे जीवन को (दधत)

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ २६
होता यक्षदीडेन्यमीडित वृत्रहन्तममिडाभिरीड्य सह सोममिन्द्र वयोधसम ।
अनुष्टुभ छन्द इन्द्रिय पञ्चावि गा वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

२ वही, २८ ३१
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे
पयसेन्द्र वयोधस देवी देवमवर्धताम ।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रिय शुक्रमिन्द्र
वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वीता यज ॥

धारण करता हुआ (अनुष्टुभा) अनुष्टुप नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (इन्द्रियम्) जीव से सेवित इन्द्रिय एवम् (बलम्) बल को (यज) प्राप्त कर।[1]

भाव यह है कि जैसे प्रीति से स्त्री पुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धन व्यवस्था से आप लोग बढ़ें।

हे मनुष्यो। मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया अथवा वाणी से जिस (सदस) सभा, ज्ञान न्याय व दण्ड के (पतिम्) पालक (अद्भुतम्) आश्चर्यपूर्ण गुणकर्मस्वभाव वाले (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव के लिए (काम्यम्) कामना करने योग्य (प्रियम्) प्रीति विषय वाले अथवा सदा प्रसन्न करने वाले व रहने वाले परमात्मा की उपासना और सेवा करके (सनिम्) सत्य और असत्य का सम्विभाव करने वाली (मेधाम्) संगत मेधा बुद्धि को (अयासिषम्) प्राप्त करता हूँ, उसकी सेवा करके इसे तुम भी प्राप्त करो।[2]

इन मन्त्रों में इन्द्र (जीव) को 'वयोधसम्' अर्थात आयु को धारण करने वाला, 'देवम्' अर्थात दिव्य गुणों से युक्त, 'पतिम्' अर्थात पालक, 'ईडितम्' अर्थात प्रशस्त आदि विशेषणों से युक्त किया गया है।

उपरोक्त विवेचन में यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र देवता का पारमार्थिक दृष्टि से अर्थ करते हुए अध्यात्म ईश्वर परक अर्थ 'परमेश्वर' स्वीकार किया है तथा अध्यात्म शरीरपरक अर्थ 'जीवात्मा' माना है। महर्षि के विचारानुसार वेदों का मुख्य तात्पर्य ईश्वरानुभव में ही है। वे विज्ञान विषय को ही मुख्य बताते हैं। अतः वेद भाष्य में भी ईश्वर परक अर्थ को ही प्रधानता दी है।[3]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ ३७

देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रम्
वयोधसं देवी देवमवर्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियम्
बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने
वसुधेयस्य वीतां यज॥

२ वही, ३२ १३

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्
सनिं मेधामयासिषं स्वाहा।

३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय विचार प्रकरण

तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति।
तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्त पदार्थेषु साक्षाद् बोधान्वयत्वात्।
तत्रापि ईश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुतः ? अत्रैव सर्वेषां वेदानाम् तात्पर्य-
मस्ति, ईश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्॥

इन्द्र के पारमार्थिक स्वरूप का विवेचन करने के उपरान्त मरुत के पारमार्थिक स्वरूप का विवेचन किया जाता है। यद्यपि स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य में मन्त्र के संस्कृत पदार्थ अथवा हिन्दी पदार्थ में मरुत का परमात्मा अर्थ स्पष्ट रूप में नहीं मिलता किन्तु यजुर्वेद के एक 'मरुत' देवता वाले मन्त्र में परमात्मा का स्वरूप वर्णन किया गया है। पारमार्थिक दृष्टि से यही मरुत का पारमार्थिक अर्थ भी है। ईश्वर शुद्ध प्रकाश युक्त अद्भुत प्रकाश वाला विनाश रहित एवं विस्तृत प्रकाश वाला, शुद्ध स्वरूप और सत्य की रक्षा करने वाला है।

हे मनुष्यो। जसे (शुक्रज्योति) शुद्ध है जिसका प्रकाश (च) और (चित्रज्योति) अद्भुत है जिसका प्रकाश (च) और (सत्यज्योति) विनाशरहित है जिसका प्रकाश (च) और (ज्योतिष्मान्) जिसके बहुत प्रकाश है (च) और (शुक्र) शीघ्रता करने वाला व शुद्ध स्वरूप (च) और (अत्यंहा) जिसने दुष्ट काम को दूर किया (च) और (ऋतपा) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है, वैसे तुम लोग भी होओ।[1]

मरुत' की शक्ति ईश्वरीय शक्ति ही है। वैदिक मन्त्र अग्नि इन्द्र, मरुत, पर्जन्य उषस आदि प्राकृतिक शक्तियो के प्रति कहे गए हैं। वैदिक देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियो के ही मानवीकरण हैं। वेदो के मन्त्रो में प्राकृतिक दृश्यो में व्यक्त दैवीशक्ति का ही वर्णन है।

इन्द्र और मरुत का पारमार्थिक दृष्टि से स्वरूप विवेचन करते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि ये दोनो पद ईश्वर अथवा परमात्मा बोधक हैं। वेदो में एक ईश्वर ही उपास्य है। निस्सन्देह वेदो में स्थान स्थान पर अनेक देवो का वर्णन मिलता है। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, इन्द्र व प्रजापति—इन ३३ देवो का भी उल्लेख किया गया है। मन्त्र में देवता शब्द से वेद मन्त्रो का भी ग्रहण किया जाता है। माता-पिता आचार्य अतिथि को भी देव कहा है। किन्तु ये सब देव परमेश्वर से दिव्यता प्राप्त करते हैं। अतः परमेश्वर ही एक मुख्य देव है, वही, उपास्य है।[2]

शतपथ ब्राह्मण में भी उसी को एक देव कहा गया है। वही परमेश्वर उपासना करने योग्य है जो अन्य देव की उपासना करता है वह नहीं जानता कि वह तो विद्वानो के बीच पशु के समान है।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७८०
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्चज्योतिमाश्च।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहाः॥

२ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३३६
अतो मुख्यो देव एक परमेश्वर एव उपास्यो स्मीति मन्तव्यम्।

३ शतपथ ब्राह्मण १४४२२२
योऽन्या देवतामुपास्ते न स वेद यथा पशुरेव सा देवानाम्।

वेदो मे जहाँ जहाँ उपासना का विधान है वहाँ देवता रूप म ईश्वर का ही ग्रहण है।[1]

मैक्समूलर ने वेदो मे हीनोथीइज्म (=उपास्य श्रेष्ठतावाद) की कल्पना की है।[2] इसका अभिप्राय यह है कि अनेक देवो मे से प्रत्येक का ही उस समय, जबकि उसकी स्तुति की जा रही है, कवि सबसे बडा और स्वतन्त्र सवशक्तिमान समझता है। उस स्तुति के समय वही एक मात्र स्तोता व भक्त के मन म विद्यमान होता है।[3]

स्वामी दयानन्द के अनुसार आय लोग सष्टि के आरम्भ से आज पयन्त इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि नामो से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आए हैं।[4]

इस अध्याय मे यजुर्वेद के 'इन्द्र' एव मरुत' देवता वाल कुछ म त्रो की स्वामी दयानन्द भाष्यानुसारी व्याख्या के आधार पर 'इन्द्र देव के तथा मरुत देव के पारमार्थिक स्वरूप का वणन किया गया है। आय समाज के दूसरे नियम के अनुसार ईश्वर, सच्चिदानन्द, निराकार, सवशक्तिमान न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सवव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर अमर अभय, नित्य पवित्र और सष्टि कर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

स्वप्रकाशमयता, सर्वप्रकाशमयता सवज्ञानमयता, सर्वशुद्धता, सवशोधकता, सवव्यापकता, सवशक्तिमत्ता, सर्वान्तर्यामिता परमैश्वर्यवत्ता, यज्ञरूपता, सर्वोत्पादकता, सवरक्षकता, सवव्यवस्थापकता व सवसहारकता आदि ईश्वर की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

यजुर्वेद मे तथा अन्य वेदो मे भी दूसरे देवताओ से सम्बन्धित विशेषण पदों म परमेश्वर की अप्रतिम विशेषताओ का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद के ऋषि का यह वचन है कि एक ही सत्य को मेधावी विद्वान् ने अनेक नामो से कहा है। 'इन्द्र' और 'मरुत' भी उसी परम तत्त्व की ऐश्वय शालिनी शक्ति का नाम है। आध्यात्मिक

---

१ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४४
वदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र तत्र देवतात्वेनेश्वरस्यैव ग्रहणात।

2 F Maxmuller The Vedas p 85
In the veda, however the gods worshipped as supreme by each sect stand still side beside—no one is first always no one is last always Even gods of a decidedly inferior and limited character, assume occasionally in the eyes of a devoted poet a supreme place above all other gods

३ वेदो का यथाथ स्वरूप, पृ० १८२।

४ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० ३४३।

व्याख्याकारो का यह दढ मत है कि वह एक परमतत्व ही लौकिक और अति लौकिक रूपो म सवम ओत प्रोत है। वास्तव म परमात्मा की महिमा अनन्त है। मानव की तुच्छ बुद्धि उस परमात्मा को जानन मे असमथ ही सिद्ध होती है। उस कौन जान सका है तथा उसके स्वरूप का वणन कौन कर सकता है।[1]

उस वणनातीत परमतत्त्व का वणन ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा भक्त एव विद्वान यथा बुद्धि अपनी अपनी भाषा और शैली म करत रहे हैं। स्वामी दयानन्द न भी ईश्वर की विशेषताओ को वदिक म त्रो का भाष्य करते हुए स्पष्ट किया है। इस अध्याय मे परमात्मा अथवा परमेश्वर की विशेषताओ का ही वर्णन किया है चाहे यह वणन, मुख्य रूप से इन्द्र एवम 'मरुत के पारमार्थिक स्वरूप के रूप मे ही प्रस्तुत है। वस्तुत इन्द्र मरत अग्नि, विष्णु बहस्पति आदि सभी देवता उस परमात्मतत्त्व की विशेषताओ के ही द्योतक हैं। य विभिन्न दवता उसक विशेषण रूप हैं। वद इन विभिन्न दवो को स्वतन्त्र व पृथक-पृथक मानता हुआ भी इन्हे एक ही महान देव की विभिन्न अभिव्यक्तियां स्वीकार करता है।

ऋग्वद के अनुसार वह एक ही परन्तु विद्वान् लोग उसे बहुत प्रकार स निर्देश करत हैं। वह अग्नि है यम है तथा मातरिश्वा है।[2] यह सहिता, भाग के तत्त्व ज्ञान का सक्षिप्त निदशन है। एकत्व की भावना पर ही वैदिक देवता तत्त्व आश्रित है।

विभिन्न विशेषणो को धारण करने वाला परमात्मा तो एक ही है। एक वही द्रष्टव्य है अर्थात् देखने योग्य है तथा जिज्ञासा करने योग्य है। उसी एक परमात्मा की शरण म सभी भुवन समर्पित हैं व उसी के व्यक्त रूप हैं।[3]

---

१ ऋग्वेद, १० १२ ६६
को अद्धा वेद क इह प्रावोचत।

२ ऋग्वेद १ १६४ ४६
इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

३ (क) अथववेद २ १ १
वेनस्तत पश्यत परम गुहायत
यत्र विश्व भवत्येकरूपम्।

(ख) वही २ १ ३
यो देवाना नामध एक एव
त सप्रश्न भुवना यन्ति सर्वा

पचम अध्याय

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य मे 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का व्यावहारिक स्वरूप

स्वामी दयानन्द ने मन्त्रार्थ करते हुए व्यावहारिक प्रक्रिया को भी अपनाया है। परमेश्वर सम्बन्धी विषय से भिन्न शेष विषय व्यवहारार्थ मे ग्रहण किए गए हैं। मन्त्रो का व्यावहारिक विद्यापरक अर्थ ही व्यावहारिक अर्थ कहलाता है। स्वामी दयानन्द ने इन्द्र के व्यवहार परक अर्थ किए हैं। इस पचम अध्याय म स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य को ध्यान मे रखते हुए 'इन्द्र' व 'मरुत' के व्यावहारिक स्वरूप को प्रस्तुत किया जा रहा है। व्यावहारिक शब्द से मानव समाज एव पूरे विश्व के लिए उपयोगी व कल्याणकारी सिद्धान्त, विचार, साधन और मानव समाज के मुख्य अगो के आदर्श आदि अभिप्रेत है। मानव समाज के प्रमुख अगो मे योगी योगिराज राजा, विद्वान, उपदेशक, गृहस्थ, गृहपति, सद्वैद्य सभाध्यक्ष, सेनापति सज्जन, तेजस्वी आदि अभिप्रेत है।[1] इनके अतिरिक्त 'इन्द्र' शब्द के अर्थ के रूप मे स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य मे वायु, विद्युत तथा सूर्य यह आधिदैविक अर्थ व सर्वोच्च शासक, राजा, सेनाध्यक्ष आदि यह आधिभौतिक अर्थ भी अभिप्रेत है। 'मरुत' शब्द भी व्यावहारिक अर्थ म वायु विद्वान्, ऋत्विग तथा अतिथि का बोधक है।

प्रथम वर्ग मे योगी विद्वान, आचार्य, उपदेशक, वैद्य आदि मानव शरीर मे मुख अथवा मस्तिष्क के समान मुख्य अग के रूप म प्रतिष्ठापित किए गए हैं।[2] द्वितीय वर्ग मे राजा, सेनापति राजपुरुष सभापति इत्यादि अभिप्रेत है जो शरीर मे बाहु के समान, समाज की रक्षा करने का उत्तरदायित्व धारण करते हैं। अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से भी गृहपति पिता आदि मानव समाज के ऐसे अनिवार्य व उपयोगी अग हैं जिन पर परिवार की उन्नति का और इस प्रकार पारिवारिक उन्नति के द्वारा समाज की उन्नति का भार रहता है। समाज के इन प्रमुख अगो तथा वर्गों के द्वारा

---

१ स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य मे अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन, डा० कपिलदेव शास्त्री।

२ ऋग्वेद, १० ९० १२
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्य कृत ।
उरुतदस्य यद्वैश्य पदभ्या शूद्रो अजायत ॥

वैदिक आदर्शों व मान्यताओं का अनुपालन व आचरण में लाने से ही सम्पूर्ण मानव समुदाय का कल्याण निश्चित है। इस दृष्टि से इन्द्र व मरुत् पद के तथा उनके विशेषणों से कुछ महत्त्वपूर्ण अर्थों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

इन्द्र राजा के रूप में

सम्पूर्ण संसार में माङ्गलिक व अध्यात्म से सम्बन्धित भावनाओं का अपनी पवित्र प्रेरणा से प्रसार करके मानव समुदाय की उन्नति करने वाले राजाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वामी दयानन्द ने कई स्थलों पर इन्द्र से सम्बन्धित मन्त्र में इन्द्र का अर्थ राजा किया है।

हे सभापते राजन्! जो तू (सवानाम्) ऐश्वर्यों के (सविता) सूर्य के समान प्रेरक (गृहपतीनाम्) गृहस्थों के उपकारक (अग्निः) पावक के सदृश (वनस्पतीनाम्) पीपल आदि वृक्षों में (सोम) सोमवल्ली के सदृश (धर्मपतीनाम्) धर्म के पालन हारों के मध्य में (सत्य) सज्जनों में उत्तम (वरुण) शुभ गुण कर्मों से श्रेष्ठ (मित्र) सखा के तुल्य (वाचे) वेद वाणी के लिए (बृहस्पतिः) महाविद्वान् के सदृश (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिए (इन्द्र) परमैश्वर्य से युक्त राजा के तुल्य (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं के लिए (रुद्र) शुद्ध वायु के सदृश है उस (त्वा) तुझ को धर्मात्मा सत्यवादी विद्वान् धर्म से प्रजा की रक्षा में (सुवताम्) प्रेरणा करें।[1] भावार्थ यह है कि हे राजन्! जो आप को अधर्म से हटाकर धर्म के अनुष्ठान में प्रेरणा करें उन्हीं का संग करो, औरों का नहीं।

स्वामी जी ने यहाँ इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्य से युक्त राजा करके मन्त्र की व्यावहारिक अर्थ से संगति लगाई है। इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में इन्द्र का अर्थ राजा का उपदेशक लेकर मन्त्रार्थ किया गया है।

हे (इन्द्रवायू) राजा के उपदेशक तथा अभ्यासी पुरुषो! तुम दोनों (हि) सूर्य और प्राण के सदृश हो। इसलिए (इमे) ये (सुताः) सब उत्पन्न हुए (इन्दवः) सुख कारक जल आदि पदार्थ (युवाम्) तुम दोनों की (उशन्ति) चाहते हैं। इसलिए तुम दोनों इन (प्रयोभिः) आनन्द करने योग्य पदार्थों के साथ (उप—आगतम्) हमारे समीप आओ।

हे वायविन्द्रश्च। इस यज्ञ-प्रसादक के द्वारा तू (वायव) वायु के समान गति आदि की सिद्धि के लिए अथवा यान बन के व्यवहारों को प्राप्त कराने वाले राज -

---

1. यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ९.३९
सविता त्वा सवाना
सुवतामग्निर्गृहपतीना सोमो वनस्पतीनाम्।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः
पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्॥

कुशल योगी बनाने के लिए (उपयामगृहीत) योग के यम नियम आदि अंगों सहित स्वीकार किया गया (असि) है। इन्द्र यागैश्वर्य से युक्त योगाभ्यासक। यह योग (ते) तेरा (योनि) मन दुःखों का निवारण करने वाले घर के समान है। (इन्द्र वायुभ्याम्) विद्युत और प्राण के समान श्वास को खींचना और बाहर निकालना रूप योग विद्या से (जुष्टम्) युक्त (त्वा) तुझे तथा (हे) योग के जिज्ञासु पुरुष! (सजोषोभ्याम्) सेवन करने वाले इन उक्त गुणों से (जुष्टम्) युक्त (त्वा) तुझे मैं (वशिम) चाहता हूँ।

भाव यह है कि वे ही लोग योगी बन सकते हैं जो योग विद्या का अभ्यास करके ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को साक्षात् करने का प्रयत्न करते हैं।[1]

भूतों (=प्राणियों) से सम्बन्ध रखने वाला पक्ष आधिभौतिक कहलाता है। इसमें राजा, शासक, सेनापति सभापति सभेश, नेता, विद्वान आदि सभी का समावेश हो जाता है। वेदों में प्रयुक्त शब्द यौगिक माने जाते हैं। वे रूढ़ि नहीं हैं।[2] इन्द्र शब्द का व्यावहारिक अर्थ करने पर आधिभौतिक तथा आधिदैविक दोनों दृष्टियों से विचार करना अपेक्षित है। आधिभौतिक दृष्टि से विचार करने पर राजा, शासक, सेनापति, विद्वान्, योग का उपदेष्टा अनेक रूपों में इन्द्र का स्मरण किया गया है। वह परमैश्वर्यवान स्वामी शत्रुविदारक, दुष्टों का नाशक, दारिद्र्य विदारक, ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है। वह अन्न दाता है।

ऋग्वेद में भी इन्द्र के आधिभौतिक स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। वह दस्यु अव्रत अयज्वा, अनायु (=युद्ध का इच्छुक), शत्रुगामी, शुष्ण तथा वृत्र का विनाशक कहा गया है। वह वेदविहित कर्मों को करने वालों का रक्षक है तथा गौ आदि सम्पत्तियों को बढ़ाने वाला है। वह श्रेष्ठ शासक है, राजा है व सेनापति के लक्षणों से भी युक्त है। इन्द्र नृमण अर्थात् मनुष्यों के कल्याण में लगे हुए मन वाला व्यक्ति है।[3] आर्य अर्थात् श्रेष्ठ और दस्यु अर्थात् हिंसक लोगों के मध्य आर्यों की रक्षा

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ७ ८
इन्द्र वायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि।
उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्याम्
त्वैष ते योनि सजोषोभ्यां त्वा॥

२ (क) निरुक्त, १ १२
नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च।
(ख) महाभाष्य ३ ३ १
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।

३ ऋग्वेद १ ५१ ५
त्वं मायाभिरपमायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ॥

व दस्युओं का दमन करने वाला इन्द्र ही है।[1] इन्द्र पापात्मा राक्षस का हन्ता है तथा धर्माचरण करने वाले विद्वज्जन का त्राता है।[2]

इन्द्र विद्वान् के रूप में

स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य में अनेक स्थलों पर 'इन्द्र' शब्द का 'विद्वान्' अर्थ किया है। विद्वान् की प्रमुख विशेषताओं में उसकी विशिष्ट ज्ञानवत्ता, परोपकारपरायणता, ज्ञान पिपासा, ज्ञान वर्धन की अभिलाषा, सत्यभाषण, सज्जन-वन्दनीयता, ईश्वर निष्ठा, धनैश्वर्य सम्पन्नता, दारिद्र्यराहित्य, भयराहित्य व निश्छलता का उल्लेख किया जा सकता है। यजुर्वेद के मन्त्रों का भाष्य करते हुए स्वामी दयानन्द ने इन्द्र पद का अर्थ विद्वान् भी किया है।

हे (शत क्रतो) जिसकी सैंकड़ों प्रकार की बुद्धि और (गोमत) प्रशंसित वाणी है सो ऐसे हे (इन्द्र) विद्वान् पुरुष! आप (आ, याहि) आइये (इह) इस संसार में (विश्वभि) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ली आदि औषधियों के रस को (पिब) पियो जिससे आप (उपयामगृहीतः) यम नियमों से इन्द्रियों का ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (असि) हो इसलिए (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिए और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिए (त्वा) आपको और जिन (ते) आपका (एषः) यह (योनिः) निमित्त है उस (गोमते) प्रशंसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिए (त्वा) आपका हम लोग सत्कार करते हैं।[3] भाव यह है कि जो वैद्यक शास्त्र विद्या से सिद्ध और मेघों से उत्पन्न हुई औषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्य युक्त होते हैं।

यद्यपि प्राचीन भारतीय वैदिक परम्परा के अनुसार यजुर्वेद कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ माना जाता है। यज्ञ प्रधान कर्मों का ही प्रत्यक्ष म

१ ऋग्वेद, १.५१.८
विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥

२ वही १.१२९.११
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद् वसो रक्षोहणम्
त्वा जीजनद् वसो॥

३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २६.४
इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा
सोमं शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते
योनिरिन्द्राय त्वा गोमते॥

पराभ रूप से वर्णन किया गया गया है। शुक्लयजुर्वेद संहिता के पहले दोनों अध्यायों का विनियोग दर्श पूर्णमास यज्ञों में है।[1] शुक्लयजुर्वेद संहिता के प्रथम मन्त्र की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में आधियाज्ञिक और आधिदैविक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए की गई है।[2]

'आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्'

शुक्लयजुर्वेद संहिता (माध्यन्दिनी) के प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र के उपरिलिखित पदों का अर्थ करते हुए उवट और महीधर इन्द्र को क्षीरादि हविभक्षण करने वाला देवता मानते हैं।[3]

शुक्लयजुर्वेद (काण्व संहिता) में इसी मन्त्र के सायण-भाष्य में इन्द्र को देवता विशेष माना गया है। तथा दधि के हेतुभूत दूध को इन्द्र का भाग माना है।[4]

स्वामी दयानन्द जी ने इस मन्त्र में इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्य किया है। अब इस मन्त्र की स्वामी दयानन्दानुसार की गई व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत की उत्पत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त (देव) सब सुखों को देने वाला और सब विद्या को प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है सो हमारे और (वः) तुम्हारे (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने हारे जो स्पर्शगुण वाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियाँ (स्थ) हैं, उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिए (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा

---

१ शुक्लयजुर्वेद संहिताभाष्य (उवट, महीधर), १ १, पृ० ४
अत्र इषे त्वा द्वावध्यायौ दर्शपूर्णमासमन्त्राः ।

२ नूनमेषो ऽर्थो छियज्ञ, परमेतेनव पदव्याख्यानेनाधिदैवतोऽर्थोऽपि सम्पद्यते ।
ऐतरेयालोचनम्, पृ० ६

३ (क) यजुर्वेदभाष्य (उवट) १ १, पृ० ४५
यूयम (गावः) अपि यज्ञाय समर्पिताः सत्य आप्यायध्वम् ।
हे अघ्न्या अनुपहिस्या गावः । कस्य इन्द्राय भागं तादर्थ्ये चतुर्थी ।
इन्द्राय यो भागस्तमिति सम्बन्धः । इन्द्रो न हविर्भाक ।

(ख) यजुर्वेद भाष्य (महीधर), १ १, पृ० ४-५
ते अघ्न्या गावः गोवधस्योपपातकरूपत्वाद्धन्तुमयोग्या अघ्न्या उच्यन्ते ।
तथाविधा यूयम इन्द्राय भागम इन्द्रमुद्दिश्य सम्पादयिष्यमाणादधिरूपहेतु क्षीरं समन्तात वर्धयध्वम । सर्वास्वपि गोषु प्रभूतक्षीरं कुरुत ।

४ शुक्लयजुर्वेद काण्व संहिता भाष्यम् (सायण), १ १ १, पृ० १८
हे अघ्न्या गावः—यूयमिन्द्राय भागम् इन्द्रदेवतामुद्दिश्य सम्पादयिष्यमाणादधिहेतुभूतम् क्षीरम् आप्यायध्वम् समन्ताद् वर्धयध्वम् ।

के लिए (त्वा) उक्त गुण वाले और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात उत्तम रस की प्राप्ति के लिए (भागम) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणो के देने हारे आप का सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगो। तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हो।

हे भगवन् जगदीश्वर। हम लोगो के (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए (प्रजावती) जिनके बहुत सतान हैं तथा जो (अनमीवा) व्याधि और (अयक्ष्मा) जिनमे राजयक्ष्मा आदि रोग नही है वे (अघ्न्या) जो जो गौ आदि पशु या उन्नति करने योग्य है, जो कभी हिंसा करने योग्य नही तथा जो इन्द्रियाँ व पृथिवी आदि लोक हैं, उनको सदैव प्राप्त कराइय। हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से हम लोगो मे स दुःख देने के लिए (अघशस) पापी वा (स्तेन) चोर डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकारक रूप धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ, घोडे और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरतर रक्षा कीजिए जिसस (व) इन पदार्थों के हरने का पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो। (अस्मिन) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वी) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवा) निश्चल सुख के हेतु (स्यात्) हो।[1]

हे (हरिव) प्रशस्तहरि (=घोडो) वाले (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य को बढाने वाले विद्वान्! तू (उप आयाहि) हमारे समीप आ और (तुतुजान) शीघ्रकारी होकर (न) हम (सुन) सिद्ध व्यवहार म स्थापित करने के लिए (ब्रह्माणि) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त पदार्थों तथा (चन) भोग्य अन्न को (दधिष्व) धारण कर। भाव यह है कि विद्या और धर्म की वृद्धि के लिए कोई भी आलस्य न करे।[2]

हे (अध्वर्यो) यज्ञ का युक्त करने वाले मनुष्य! तू (इन्द्राय) परम् ऐश्वर्यवान पुरुष के (पातवे) पीने क लिए (अद्रिभि) मेघो से (सुतम) निष्पन्न (=तैयार) हुए (सोमम) सोमलता आदि औषधियो के सार रूप रस को (पवित्रे) शुद्ध व्यवहार मे

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १ १, पृ० ६, २५ २६
इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो व सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या
इन्द्राय भाग प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन
ईशत माघश सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।

२ वही, २०, ८९
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिव।
सुते दधिष्व नश्चन॥

(आ+नय) ला, उससे तू (पुनीहि) सबको पवित्र कर। भाव यह है कि यज्ञ करने वाले विद्वान् वैद्यराज लोग शुद्ध देश में उत्पन्न औषधियों के सारभूत रसों का निर्माण करके इनके दान से सब मनुष्यों के रोगों की निवृत्ति सदा करें।[1]

हे (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न (इषित) प्रेरणा से युक्त (विप्रजूत) मेधावी लोगों से शिक्षित (वाघत) वाणी से जानने वाला तू (धिया) बुद्धि से (सुतावत) पदार्थों को तैयार करने वाले पुरुष के (ब्रह्माणि) अन्नों व धनों को (उप आ याहि) ग्रहण कर। भाव यह है कि विद्वान् मनुष्य जिज्ञासु लोगों का सङ्ग करके इनमें विद्याकोश को स्थापित करें।[2]

हे मनुष्यो! जैसे (कवय) बोलने में चतुर (वृषाणम्) अतिवीर्यवान (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले, (वीरम्) बलवान वीर पुरुष के प्रति (धावमाना) दौड़ती हुई स्त्रियाँ (दुर) द्वारों (=घरों) को (यन्तु) प्राप्त होती हैं। जैसे (प्रथमाना) प्रख्यात, (सुवीरा) सुन्दर वीर पुरुष (महोभि) सुपूजित गुणों से, (द्वार) द्वार के तुल्य वर्तमान (देवी) विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (जनय) सन्तान उत्पन्न करने वाली (सुपत्नी) सुन्दर पत्नियों को (अभित) सब ओर से (विश्रयन्ताम्) प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी प्राप्त करो। भाव यह है जहाँ लोग परस्पर प्रीति से विवाह करते हैं वहाँ सब आनन्द से रहते हैं।[3]

हे विद्वान! जैसे (बर्हिष्मत) अन्तरिक्ष से सम्बन्ध रखने वाले वायु, जल आदि का (अत्ययात्) लाँघता है, (वसुवन) पृथिवी आदि वसुओं को धारण करने वाले जगत् के (वसुधने) धन के सेवन में (वेद्याम्) हवनाधार कुण्ड में (स्तीर्णम्) काष्ठों और हवि से आच्छादित करने योग्य, (वस्तो) दिन में (वृतम्) स्वीकृत, (अक्तो) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हुआ होम द्रव्य आरोप्य को (प्रावर्द्धयत्) बढ़ाता है, सुव (वेतु) पहुँचाता है, वैसे (बर्हि) अन्तरिक्ष के समान (राया) धन के साथ (देवन्) दिव्य गुणों वाले विद्वान् का, (देवै) दिव्य गुणों वाले विद्वानों के साथ (वीरवत) वीरों के तुल्य बर्ताव करने वाले (सुदेत्रम्) उत्तम (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २० ३१
अध्वर्यो अद्रिभि सुत सोम पवित्र आ नय।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥
२ वही, २० ८८
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूत सुतावत।
उप ब्रह्माणि वाघत ॥
३ वही, २० ४०
इन्द्र दुर कवष्यो धावमाना वृषाण यन्तु जनय सुपत्नी।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ता सुवीरा वीर प्रथमाना महोभि ॥

कारव विद्वान का (यज) सग कर। भाव यह है कि जैसे यजमान वेदी म समिधाओ म रखे हुए घृत का होम किए हुए अग्नि को बढा कर, अन्तरिक्ष म स्थित वायु और जल आदि का शुद्ध करके रोग निवारण से सब प्राणियो को प्रसन्न करता है, वस ही सज्जन नाग धन आदि से सबको सुखी करते हैं।[1]

परम ऐश्वय म युक्त विद्वान की स्तुति करने वाले लोग जला के समान बढत हैं आच्छादित करने वाली किरणो के समान सत्य को व्याप्त करते हैं। इन्द्र अर्थात ऐश्वय प्रदान करने वाला विद्वान आज के कारण महान होता है सब ओर म पूज्य होता है। मनुष्य इस विद्वान को प्राप्त करे तथा अन्न की वद्धि सेवन और आहार-विहार का ज्ञान।[2]

हे (चित्र) आश्चयस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ मे लिय (अद्रिव) प्रशस्त पत्थर क बन हुए वस्तुओ वाले (इन्द्र) शत्रु नाशक विद्वान। (धृष्णुया) ढीढता से (मह) बहुत (स्तवान) स्तुति करत हुए (स) सो पूर्वोक्त (त्वम) आप (जिग्युषे) जय करन वाले पुरुष के वास्ता तथा (न) हमारे लिय (सत्रा) सत्य (वाजम) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम) बैल तथा (रथ्यम) रथ क योग्य (अश्वम्) घोडे को (स किर) सम्यक प्राप्त कीजिए।[3]

भाव यह है कि जैस मेघ सम्बन्धी सूय वर्षा से सबको सम्वद्ध करता है वसे विद्वान सत्य क विज्ञान स सबक ऐश्वय को प्रकाशित करता है।

हे विद्वन्! जस (देवं) देदीप्यमान गुणा क साथ वतमान, (हिरण्यपण) तेजस्वी पत्तो वाला (मधुशाख) मधुर शाखाओ वाला, (सुपिप्पल) सुदर फलो वाला (देव) दिव्य गुण प्रदान करने वाला (वनस्पति) किरणो का पालक सूय एव

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ १२
देव बर्हिरिन्द्र सुदेव दवैर्वीरवत स्तीर्ण वेद्यामवर्धयत ।
वस्ताव त प्रोक्तोम त राया बर्हिष्मताऽत्यगाद वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥

२ वही, ३३ १८, २५
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृत जरितारस्त इन्द्र।
याहि वायुन नियुता नो अच्छा त्व हि धीभिदयसे वि वाजान् ॥
इन्द्रहि मत्स्यधसो विश्वेभि सामपर्वभि ।
महा अभिष्टिराजसा ॥

३ वही, २७ ३८
स त्व नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह
स्तवानो अद्रिव ।
गामश्व रथ्यमिन्द्र स किर सत्रा
वाज न जिग्युषे ॥

वनस्पति (द्रुमम्) दरिद्रता के विदारक (देवम्) दिव्य गुणों वाले तारों का व मेघों का (अवर्धयन्) बढ़ाता है (अग्रेण) अग्रसर होकर (दिवम्) प्रकाश की (अस्पृक्षत्) स्पृहा करता है, (अन्तरिक्षम्) आकाश एवं उसमें स्थित तारों को और (पृथिवीम्) भूमि को (आ+अदृंहीत) सब ओर से धारण करता है (वसुवने) धन प्रदान करने वाले जीव के लिए (वसुधेयस्य) संसार के सब धन (वतु) प्राप्त कराता है, वैसा (यज) यज्ञ कर। भाव यह है कि जैसे वनस्पतियाँ मेघों को बढ़ाती हैं। सूर्य तारों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या के याचक विद्यार्थी को पढ़ाते हैं।[1]

हे (इन्द्राग्नी) अध्यापक और उपदेशक लोगो—(अपात्) बिना पग वाली उषा (पद्वतीभ्यः) बहुत पग वाली सोई हुई प्रजा के लिए (पूर्वा) प्रथम (आ+अगात्) आती है, (शिरः) शिर को (हित्वा) छोड़कर प्राणियों की (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) बहुत बोलती है (चरत्) विचरण करती है (त्रिंशत्) तीस (पदा) मुहूर्तों के पश्चात् (न्यक्रमीत्) प्रत्येक प्रदेश में गति करती है उस उषा को तुम जानो। भाव यह है कि निद्रा और आलस्य को छोड़कर सुख के लिए उषा का सेवन करना चाहिए।[2]

इन्द्र परमैश्वर्य परमश्वर्यकारक व परमैश्वर्यवान् रूप में

यजुर्वेद के एक मन्त्र में मित्र और वरुण के लिए द्विवचनान्त इन्द्र शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में किया गया है।[3] इन्द्र का स्वर्गाधिपति देवराज अर्थ करने वाले उवट, महीधर[4] तथा सायण आदि भाष्यकार भी यहाँ आध्यात्मिक पक्ष

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २८ २०
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः
सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृ
ंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वतु यज ॥

२ वही, ३३ ९३
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥

३ यजुर्वेद १० १६
हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च।
आरोहतं वरुणमित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥

४ शुक्लयजुर्वेद संहिता, १० १६
उवट—हे हिरण्यरूपौ मित्रावरुणौ यो युवाम् उषसा विराके उषसो व्युष्टानकाले।
उभावपि हे इन्द्रौ, इदि परमैश्वर्ये परमेश्वरौ उदिथः उद्गच्छथः। सूर्यश्च।
सूर्यश्च यथायुवयोः कार्यसम्पादनाय सूर्य उदेति तौ युवाम् आरोहतम्।
महीधर—हे वरुण शत्रुनिवारक, दक्षिण बाहो, हे मित्र सखिवत्पालक वामबाहो,

में ईश्वर और आधिदैवत पक्ष में मुख्य अर्थ स्वीकार करते हैं। वास्तव में इन्द्र शब्द वेदों में रूढ अर्थ अथवा व्यक्ति विशेषमात्र का वाचक नहीं है। यह तो यौगिक शब्द है।

स्वामी दयानन्द ने इस स्थल पर भी इन्द्र का यौगिक अर्थ ही किया है। इन्द्रौ (परमैश्वर्यकारकौ) अर्थात परमैश्वर्य को उत्पन्न करने वाले 'मित्र' अर्थात सबके मित्र उपदेशक तथा वरुण अर्थात् शत्रुओं का उच्छेदन करने वाले श्रेष्ठ सेनापति तुम दोनों (गर्त्तम्) उपदेशक के घर (आरोहतम) आओ और (अदितिम) अविनाशी व (दितिं) विनाशशील पदार्थों का (चक्षाथाम) उपदेश करो।[1]

यहाँ मित्र और वरुण ऐश्वर्य युक्त होने के कारण 'इन्द्रौ' इस विशेषण से विशेषित हैं। 'इन्द्र शब्द का द्विवचनान्त रूप 'इन्द्रौ' है। इन्द्र का यौगिकत्व स्पष्ट है। इसी प्रकार 'इन्द्रतम' शब्द में भी यौगिकत्व है।[2] तमप् प्रत्यय का प्रयोग व्यक्ति-वाचक अथवा रूढि शब्द के पश्चात् नहीं होता। विशेषण व भाववाचक शब्दों के पश्चात ही इसका प्रयोग होता है। भाष्यकारों ने यौगिक दृष्टि से ही इन्द्र शब्द की व्याख्या की है।[3]

जैसे निवृत्तिमार्ग में योगी सब सिद्धियों को प्राप्त करता है वैसे गृहस्थ भी

तौ युवां गर्त पुरुषमारोहतमारोहणं कुरुतम। बाहू वै मित्रावरुणौ पुरुषो गर्त (५ ४ १ १५) इति श्रुतिरध्यात्मविषयं व्याचष्टे। तौ कौ। यौ युवाम यौ द्वौ उषसा विरोके रात्रे समाप्तौ उदिथ उदयं कुरुथः। किं भूतौ युवाम्। हिरण्यरूपौ—हिरण्यवद्भासमानौ। तथा इन्द्रौ सामर्थ्योपेतौ। एवमध्यात्म-मर्थ। अधिदैवं त्वमथ। हे वरुण! हे मित्र! मित्रावरुणौ देवविशेषौ, युवां गर्त रथो परिमाण वत्तसदयमारोहतम्। हिरण्यरूपौ अतितेजस्विनौ। इन्द्रौ—परमेश्वरौ। ततो अदितिं दितिं दीनं च युवां चक्षाथाम अतितिम-दीनं विहितानुष्ठातारं दितिं दीनं च नास्तिकवत्तं च पश्यतम।

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १० १६

२ यजुर्वेद, ३८ १६

३ (क) शुक्लयजुर्वेद संहिता ३८ १६
उवट—इन्द्रतमे=इन्द्रियवत्तम वीर्यवत्तम।
महीधर—अग्नौ मधु मधुरं घर्माज्यं हुतमस्माभि वीदृशेऽग्नौ। इन्द्रतमे इन्द्रे वीर्यमस्यास्ति इन्द्रियवान अत्यन्तमिन्द्रवानिन्द्रतम। वत्प्रत्यय लोप वीर्यवत्तम इत्यर्थ। मधुहुतमिन्द्रियवत्तमेऽग्नावित्यर्थ पर्वतदाह इति श्रुते।

(ख) यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३८ १६
(मधु) मधुरादिगुणयुक्तम (घृतादिभिर हुतम) वह्नौ प्रक्षिप्तम (इन्द्रतमे) अतिशयेनैश्वर्यकारके विद्युद्रूपे (अग्नौ) पावके (अश्याम) प्राप्नुयाम।

प्रवृत्ति मार्ग में (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य रूप सिद्धियों का (रूपम्) स्वरूप प्राप्त करे।[1] सब मनुष्य उत्तम गुणों वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करें तथा विघ्नों का निवारण करें। जो विद्वान जितना सामर्थ्य प्राप्त हो सबके (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए वह उतने सामर्थ्य से सेवा रत हो[2] सब मनुष्य ऐश्वर्य के लिए विद्वानों की सेवा करें।[3] यहाँ इन्द्रम' अर्थात परम ऐश्वर्यरूप सिद्धयों का, इन्द्रम् ऐश्वर्य को तथा 'इन्द्राय' अर्थात परम ऐश्वर्य के लिए—इन पदों का प्रयोग करते हुए 'इन्द्र' का अर्थ ऐश्वर्य ही लिया गया है।

इसी प्रकार अन्य कई मन्त्रों में भी 'ऐश्वर्य' इन्द्र पद वाच्य है। हे[4] (होत) यजमान ! तू जैसे (होता) विद्वान (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य वाले (त्वष्टारम्) देदीप्यमान, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि को बढ़ाने वाले (रूपाणि) रूपों को (पृथक्) अलग-अलग (बिभ्रतम्) धारण करने वाले, (वयोधसम्) चिरायु को धारण करने वाले (पुष्टिम्) पुष्टिकारक (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को तथा (द्विपदम्) को चरणों वाले (छन्द) छन्द, (इन्द्रियाम्) धन (उक्षाणम्) वीर्य सेचन में समर्थ (गाम्) युवा अवस्था वाले साँड के (न) समान (वयः) गति को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान को (यक्षत्) संगत करता है, (वेतु) उसे प्राप्त करता है, वैसे (यज) यज्ञ कर। भाव यह है कि गृहस्थ लोग स्त्रियों से प्रजा को बढ़ावें तथा जैसे सूर्य रूप का ज्ञापक है वैसे विद्वान विद्या को प्रकाशित करने वाला है।[5]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) १९.९१
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात्॥

२ वही, २५.३
मशकान् केशैरिन्द्रं स्वपसा ... रोराभ्याम्॥
वही, २६.१७
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वीरवोवित्परि स्रव॥

३ वही, २७.२२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्॥

४ वही, २८.११, १३, १६, २८, ३३,३६।

५ वही, २८.३२
होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतम्।
पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो।
दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

हे स्त्री व पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्यवाणी व सत्य क्रिया से (वसुमते) बहुत धन से युक्त तथा (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान होने के लिए (त्वा) तुझे, स्त्री व पुरुष को (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (आदित्यवते पूर्ण विद्या में युक्त पाण्डित्य वाला होने, (रुद्रवते) बहुत प्राणों वाला होने तथा (इन्द्राय) दुष्टों का विदारण बनने के लिए (त्वा) तुमदे (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (अभिमातिघ्ने) शत्रुओं का घातक होने तथा (इन्द्राय) परमैश्वर्य का दाता बनने के लिए (त्वा) तुझे (स्वाहा) सत्य वाणी व सत्य क्रिया से (सवित्र) सूर्य-विद्या का ज्ञाता, (ऋभुमते) बहुत मेधावी जनों से युक्त (विभुमते) नाना पदार्थों का वेत्ता (वाजवते) पुष्कल अन्न से युक्त होने के लिए (त्वा) तुझे (स्वाहा) सत्यवाणी व सत्य क्रिया से (बृहस्पतये) वाणी का पति तथा (विश्वदेव्यावते) सब दिव्य गुणों वाला होने के लिए (त्वा) तुझे (उप+यच्छामि) स्वीकार करता हूँ। भाव यह है कि जो स्त्री-पुरुष ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं व विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान सन्तानों को प्राप्त करके सबकी रक्षा कर सकते हैं।[1]

स्वामी जी ने 'इन्द्र' पद का ऐश्वर्यवान (वैद्य) के रूप में भी अर्थ किया है।

हे (होत) शुभ गुणों का दाता जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्ता जन (त्वष्टारम्) धातु वैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रम-युक्त (मघोनम्) परमप्रशस्त धनवान (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर संग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान (वैद्य) का (यक्षत) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिए (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियां व धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर।[2] भाव यह कि हे मनुष्यो ! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोग निवारक सुन्दर औषधि देने वाले ऐश्वर्यवान वैद्यजन का सेवन कर शरीर, आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों में बल को बढ़ाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३८८।
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत स्वाहेन्द्राय त्वाऽऽदित्यवते।
स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्न स्वाहा।
सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमत वाजवत स्वाहा
बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावत स्वाहा।

२ वही २८१।
होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्र देवम्
भिषजं सुयजं घृतश्रियम्॥
पुरुरूपं सुरेतस मघोनमिन्द्राय त्वष्टा
दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

इन्द्र सम्राट के रूप में

इन्द्र को सम्राट् भी कहा गया है। यह प्रजा की सेवा करने वाला है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में इन्द्र सम्राट है तथा वरुण राजा है। उवट और महीधर वाजपेय यज्ञ का कर्ता होने के कारण इन्द्र को सम्राट मानते हैं तथा राजसूय यज्ञ का कर्ता होने के कारण वरुण राजा माना जाता है।[1]

किन्तु ये सब वर्णन आधियाज्ञिक हैं। स्वामी जी ने इनका व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्यान किया है।

हे प्रजाजन ! जो (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (च) राज्य के अंग-उपांग सहित (सम्राट) सब जगह एक चक्र राज्य करने वाला (वरुण) अति उत्तम (च) और (राजा) न्यायादि गुणों से प्रकाशमान माण्डलिक है (तौ) वे दोनों (अग्रे) प्रथम (तं) उस (भक्षम) सेवन अर्थात् नाना प्रकार से रक्षा (चक्रतु) करें और (अहम) मैं (तयो) उनके (एतम) इस (भक्षम) सेवन करने योग्य पदार्थ का (अनुभक्षयामि) पालन करता हूँ। जो (सोमस्य) विद्या रूपी ऐश्वर्य की (जुषाणा) प्रीति कराने वाली (देवी) सब विद्याओं की प्रकाशक (वाक्) वेद वाणी है, उस (स्वाहा) सत्यवाणी से (प्राणेन सह) बल के साथ सब मनुष्य (तृप्यतु) सन्तुष्ट रहें।[2]

इन्द्र द्यौ और पृथिवी का महान् सम्राट है।[3] न केवल मात्र बौद्धिकता में इन्द्र बहुत और बहुस्तुत है किन्तु उसकी शक्ति उग्र है। वह भीम है और शक्तिशाली है।[4]

---

१ (क) इन्द्रश्च सम्राट् यो वाजपेययाजी। वरुणश्च। चकारो समुच्चयार्थीयो राजा यो राजसूय याजी। राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड् वाजपेयेन इति श्रुतेः। यजुर्वेदभाष्य (उवट), ८.३७ पृ० १४४।
(ख) हे पात्रगिग्रह तौ देवौ इन्द्रावरुणौ
ते एवं एतं सामग्रं प्रथमं भक्ष चक्रतु।
तौ कौ ? इन्द्रो वरुणश्च। चकारौ समुच्चये।
किं भूत इन्द्र ? सम्राट परमैश्वर्ययुक्त वाजपेययाजी यः किं भूतो वरुण ? राजा राजसूययाजी, राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति सम्राड वाजपेयेन इति श्रुते। यजुर्वेदभाष्य (महीधर), ८.३७ पृ० १४४।
२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ८.३७
इन्द्रश्च सम्राड वरुणश्च राजा तौ ते भक्ष चक्रतुरग्र एतम।
तयोरहमनुभक्ष भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥
३ ऋग्वेद १.१००.१
महोदिव पृथिव्याश्च सम्राट।
४ वही, १.१००.१२
चक्रोपो न शवसा।

इन्द्र की शक्ति का अन्त देव और मनुष्य नहीं जान सकते। अपने बल से वह पृथिवी और द्यो लोक का प्रकृष्ट रोचक 'प्ररिक्वा' अर्थात बल में बढा हुआ है।[1] जो शूर हैं जो भीरु हैं, जो दोहते हैं और जीतने के इच्छुक हैं इन सबों से इन्द्र आहातव्य हैं।[2]

स्वामी जी ने इन्द्र का व्यावहारिक अर्थ करते हुए प्रकरणानुसार उसे सम्राट् भी कहा है। वह इन्द्र (सम्राट) स्तुत अर्थात प्रशंसित, 'शूर' अर्थात वीर पुरुष, 'सत्पति' अर्थात श्रेष्ठ व्यवहारों अथवा विद्वानों का पालक पति अर्थात स्वामी, 'सुत्रामा' अर्थात अच्छी प्रकार रक्षा करने वाला, स्ववान अर्थात प्रशस्त कुल और धन वाला 'विश्ववेदा' अर्थात समस्त धन वाला समद्धीक' अर्थात अत्यन्त सुखकारी, 'वज्रबाहु' अर्थात वज्र के समान दृढ भुजाओं वाला 'तनूनपात' शरीरों की रक्षा करने वाला, 'जेता' अर्थात जयशील, स्वर्विद' अर्थात सुख को प्राप्त, 'देव' अर्थात् दिव्यता युक्त अथवा विद्या-विनय युक्त वृत्रहा अर्थात शत्रुओं का विनाश करने वाला 'वज्र हस्त' अर्थात हाथों में वज्र वाला षोडशी' अर्थात सोलह कला युक्त, 'महान' अर्थात बड़ा, 'वयोधम' अर्थात जीवन को धारण करने वाले जन्म का दाता 'अविता' अर्थात तृप्त करने वाला सुहव' 'अर्थात अच्छी प्रकार आह्वान करने वाला, 'पुरुहूत' अर्थात बहुत विद्वानों से निमन्त्रित, 'सुसन्दश' अर्थात सुन्दर प्रकार से देखने योग्य और सुहव अर्थात सुन्दर प्रकार के बुलाने योग्य है।

स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में इन्द्र का अर्थ सम्राट् अथवा राजा स्वीकार किया है उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

जो (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को धारण करने वाला (इह) इस समय (स्तुत) प्रशंसित (शूर) वीर पुरुष (पूर्वी) पूर्व विद्वानों के द्वारा सुशिक्षा से उत्तम की हुई (तविषी) सेनाओं को (वावधान) बढाता है (यस्य) जिसका (अभिभूति) शत्रुओं का अभिभव करने वाला (क्षत्रम) राज्य (द्यौ) सूर्य प्रकाश के (न) समान है, जो (न) हमको (पुष्यात्) पुष्ट करता है, वह हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (उप+आ +यातु) समीप आवे और (सधमात) समान स्थान से रक्षक (अस्तु) हो।

भाव यह है कि हृष्ट पुष्ट सेना वाले, प्रजापालक व दुष्टनाशक राज्य के अधिकारी बनें।[3]

जो (अभिष्टिकृत) सब ओर से इष्ट सुख उत्पन्न करने वाला (वज्रबाहु) वज्र के समान दृढ भुजाओं वाला (नृपति) नरों का पालक (आजिष्ठेभि) बलिष्ठ

---

१ ऋग्वेद १ १०० १५।
२ वही १ १०१ ६।
३ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २० ४७
आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुत सधमादस्तु शूर ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीद्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥

योद्धाओं के कारण, (उग्र) दुष्टों पर क्रोध करने वाला (तुवणि) शीघ्र शत्रुओं का हनन करने वाला (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक राजा (न) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (समत्सु) संग्रामों में (सत्रा) साथ (दूरात्) दूर देश से एवम् (आसात्) समीप देश से (आ+यासत्) आवे, वह (न) हम (पृत यून्) अपनी सेना के इच्छुक शूर-वीरों की सदा रक्षा व मान करें। भाव यह है कि जो दूत प्रेषण द्वारा प्रजा की रक्षा करते हैं व शूरवीरों का सत्कार करते हैं वे राज्य के अधिकारी हैं।[1]

(विश्वा) सब (गिर) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणियाँ (समुद्र-व्यचसम्) आकाश के समान गुणों की व्याप्ति वाले (रथीनाम्) शूरवीरों के मध्य में (रथीतमम्) अत्यन्त शूरवीर (वाजानाम्) विज्ञानवान जनों के एवम् (सत्पतिम्) श्रेष्ठ व्यवहारों अथवा विद्वानों के पालक, प्रजा के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त सभापति को (अवीवृधन्) बढ़ावें।

भाव यह है कि राजा और प्रजा जब राजधर्म से युक्त, ईश्वर के समान वर्तमान न्यायाधीश सभापति को सदा प्रोत्साहित करें तथा इसी प्रकार सभापति भी इन्हें प्रोत्साहित करें।[2]

जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला (स्ववान्) प्रशस्त कुल और धन वाला (इन्द्र) पिता के समान वर्तमान सभापति राजा (अस्मे) हमारे (द्वेष) शत्रुओं को (आरात्) दूर व समीप देश से (चित्) भी (सुनुत) सदा (युयोतु) दूर करे। (तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ करने वाले सभापति राजा की (सुमतौ) श्रेष्ठ मति, (भद्रे) कल्याण कारी (सौमनसे) श्रेष्ठ मन में विद्यमान व्यवहार में भी हम अनुकूल (स्याम) रहें। वह हमारा राजा है और (वयम्) हम उस राजा की प्रजा हैं। भाव यह है कि सभापति राजा अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, प्रशस्त कुल व धन वाला और पिता के समान व्यवहार करने वाला हो। प्रजा उसकी सम्मति में रहे।[3]

जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार पुरुषों वाला (विश्ववेदा) समस्त धन वाला, रक्षा करने वाला (स्ववान्) अपने बहुत से उत्तम (सुमृडीक) अत्यन्त सुखकारी (भवतु) हो, वह (इन्द्र) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला राजा (अवोभि) न्यायपूर्वक रक्षा आदि से प्रजा की रक्षा करे, वह (द्वेष) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे, प्रजा को (अभयम्) निर्भय

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), २०.४८
आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्॥

२ वही, २०.५२
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु॥

३ वही, १५.६१
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्।

(कृणातु) करे, स्वयं भी वैसा ही निर्भय (भवतु) हो जिससे हम (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम के (पतय) पालक (स्याम) हों। भाव यह है कि राजा अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, अपने बहुत से श्रेष्ठ पुरुषों वाला समग्र धन वाला अत्यन्त सुख देने वाला व ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला हो।[1]

हे (वसिष्ठास) अत्यन्त वास करने वाले प्रजाजनो! जो विद्वान लोग (वृषणाम्) बलिष्ठ (वज्रवाहुम्) वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाले (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारक राजा का (अर्कै) पूजित कर्मों से (अभ्यर्चन्ति) सब ओर से सत्कार करते हैं, उसका (एव) निश्चय से तुम (इत्) भी सत्कार करो। (स) वह (स्तुत) प्रशंसा को प्राप्त राजा (न) हमारे (गोमत) प्रशंसित गौ आदि पशुओं तथा (वीरवत्) वीरों से युक्त राज्य को (धातु) ग्रहण करे। (यूयम्) तुम (स्वस्तिभि) कल्याण कारक कर्मों से (न) हमारी (सदा) सब काल में (पात) रक्षा करें।

भाव यह है कि जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे प्रजा जन भी उनकी रक्षा करें।[2]

हे राजा और प्रजा के पुरुषो! (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान तुम दोनों (आगतम्) आओ और (गीर्भि) उत्तमशिक्षायुक्त वचनों से हमारे लिए (वरेण्यम्) वरण करने योग्य (नभ) सुख को (सुतम्) उत्पन्न करो और (धिया) ज्ञान व कर्म से (इषिता) प्रेरित व प्रार्थित होकर तुम दोनों (अस्य) इस सुख की (पातम्) रक्षा करो। हे प्रजा के जन! तू (उपयामगृहीत) उत्तमनियमों से स्वीकृत है (त्वा) तुझे (इन्द्राग्निभ्याम्) सभापति और सभासद से स्वीकृत मानते हैं। (एष) यह राजा का न्याय (ते) तेरा (योनि) घर है इसलिए (त्वा) तुझे (इन्द्राग्निभ्याम्) सभापति और सभासद के सत्कार के लिए सचेत करते हैं।

भाव यह है कि अकेला पुरुष यथोक्त राज्य के कार्य नहीं कर सकता इसलिए प्रजा जनों का सत्कार करके उन्हें राज्य के कार्यों में नियुक्त करें और वे यथोक्त व्यवहार से उस राजा का सत्कार करें।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २०.५१
इन्द्र सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभि सुमृडीको भवतु विश्ववेदा।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतय स्याम॥

२ वही, २०.५४
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कै।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभि सदा न॥

३ वही ७.३१
इन्द्राग्नी आगत सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पात धियेषिता।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते
योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा।

हे (इन्द्र) राजन ! जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य आदि में श्रेष्ठ (सखायः) मित्र जन (सोमम्) ऐश्वर्य आदि को (सुन्वन्ति) निष्पन्न करते हैं, (प्रयांसि) कामना करने योग्य विज्ञान आदि को (दधति) धारण करते हैं और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचन को (आ+तितिक्षन्ते) सब ओर से सहन करते हैं उनका तू सदा सत्कार कर। (हि) क्योंकि (त्वत्) तुझ से (प्रकेतः) उत्तम प्रज्ञा वाला (कश्चन) कोई नहीं है, अतः सब तुझे चाहते हैं। भाव यह है कि जो मनुष्य यहाँ निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि को सहन करने वाले पुरुषार्थी, सबके साथ मैत्री करने वाले हैं उनकी सब सेवा करें। वे ही उपदेश देने वाले हों।[1]

हे (होतः) यजमान ! तू जैसे (होता) सुख का दाता विद्वान (ऊतिभिः) रक्षा आदि एवं (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधुर जल आदि एवं (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों की रक्षा करने वाले, (जेतारम्) जयशील (अपराजितम्) अन्यों से पराजित न होने वाले (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त, (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य का उत्पन्न करने वाले राजा का (यक्षत्) संग करता है, (नराशंसेन) नरों से प्रशंसित (तेजसा) तेज से (आज्यस्य) विज्ञान को (वेतु) प्राप्त करता है वैसे (यज) संग कर। भाव यह है कि यदि राजा स्वयं न्याय मार्ग पर चलते हुए प्रजा की रक्षा करें तो वे अपराजित होकर शत्रुओं को जीतने वाले होते हैं।[2]

हे (वृत्रहन्) शत्रुओं का विनाश करने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य से युक्त राजन्! तू (अस्माकम्) हमारी (अर्द्धम्) वृद्धि को (आ+गहि) सब ओर से प्राप्त कर। तू (महान्) पूज्यतम होकर (महीभिः) महान (ऊतिभिः) रक्षा आदि से (नः) हमें (तू) शीघ्र (आ+वधनत्) सब ओर से पुष्ट कर। भाव यह है कि शत्रुओं का विनाशक परम ऐश्वर्य से युक्त राजा प्रजा की वृद्धि को सब ओर से प्राप्त करे। जैसे राजा प्रजा का रक्षक हो, वैसे प्रजा भी राजा को बढ़ावे।[3]

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ३४।१८

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः॥

२ वही, २८।२

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्।
इन्द्रं देवं स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशंसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥

३ वही ३३।६५

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।
महान्महीभिरूतिभिः॥

हे (इन्द्र) राजन ! जो (आयव) सत्य को प्राप्त करने वाले प्रजाजन (सकृत्स्वम्) एक बार प्रसव वाली (पुरुपुत्राम) अन्न आदि रूप में प्रकट बहुत पुत्रों वाली (सहस्रधाराम) असंख्य प्राणियों को धारण करने वाली (बृहतीम) विस्तीर्ण (महीम) विशाल भूमि को (दुदुक्षन) दुहना चाहते हैं, जो (गोमतम) दुष्ट इन्द्रियों वाले (व्रजम) हिंसक का (अभितितत्सान) मुख्य रूप से हनन करना चाहते हैं और जो (त) तेरे (तद) उस राजकर्म की (पनन्त) प्रशंसा करते हैं उन्हें तू सदा उन्नत कर।

भाव यह है कि जो मनुष्य राजभक्त, दुष्टों के हिंसक, एक बार में बहुत पुष्प और फल प्रदान करने वाली, सबको धारण करने वाली भूमि दुह सकते हैं, वे राज कार्यों को कर सकते हैं।

हे (इन्द्र) सूर्य के तुल्य जगत के रक्षक राजन ! (वाजस्य) विद्या का विज्ञान से हुए कार्य के (हि) ही (कारव) करने वाले (नर) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम) आपको जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम) सत्य के प्रचार से रक्षक (त्वाम) आपको (अर्वत) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में दबे (काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम) आपको (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें।

भाव यह है कि सेना और सभा के पति ! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ।[2]

हे मनुष्यों ! (वज्रहस्त) जिसके हाथों में वज्र (षोडशी) सोलह कलायुक्त (महान्) बड़ा (इन्द्र) और परम ऐश्वर्यवान राजा (शर्म) जिसमें दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (य) जो (अस्मान) हम लोगों को (द्वेष्टि) अधर्माव से चाहता उस (पाप्मानम) पापात्मा खोटे कर्म करने वालों को (हन्तु) मारे। जो आप (महद्राम) बड़े-बड़े गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीत) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किए हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (त) आपका

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ३३.२८

आ तत इन्द्रायव पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान ।
सुकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन ॥

२ वही, २७.३७

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारव ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वत ॥

(एष) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (योनि) निमित्त हैं उन (त्वा) आपका भी हम लोग सत्कार करें।[1]

भाव यह है कि हे प्रजाजनो! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है।

हे विद्वन्! जैसे (देवी) विद्या से देदीप्यमान (जोष्ट्री) प्रीति से युक्त (वसुधिती) विद्या को धारण करने वाली स्त्रियाँ (वयोधसम्) जीवन को धारण करने वाले, (इन्द्रम्) अन्न के दाता (देवम्) दिव्य गुणों वाले सन्तान को तथा (देवी) धर्मात्मा स्त्री (देवम्) धर्मात्मा पति के तुल्य (अवर्धताम्) बढ़ाती है और (दवहृत्या) बहती नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (श्रोत्रम्) शब्द को सुनने वाले श्रोत्र नामक (इन्द्रियम्) ईश्वर के रचे इन्द्रिय को (वीताम्) प्राप्त करती हैं, वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य याचक के लिए (वयः) कमनीय सुख को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर। भाव यह है जैसे अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक उपदेशिका विद्या देकर अपनी सन्तति को बढ़ाती हैं वैसे ही स्त्री पुरुष भी परमप्रीति से सन्तति को बढ़ावें और स्वयं भी वृद्धि को प्राप्त हों।[2]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि मैं कार्य-कारण वाले सविता देव के उत्पन्न जगत में बृहस्पति तथा इन्द्र के उत्तम नाक (दुःख रहित लोक) में आरूढ होऊं।[3] यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन्द्र या बृहस्पति का यह उत्तम नाक

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २६.१०

महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु।
हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते
योनिर्महेन्द्राय त्वा॥

२ वही, २८.३८

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्।
बृहत्या छन्दसेन्द्रियं श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥

३ यजुर्वेद, ९.१०

देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवसो
बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम्।
देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस
इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम्॥

कौन है ? उवट और महीधर इसका कोई स्पष्ट समाधान प्रस्तुत नहीं करते।[1] स्वामी जी ने यहां बृहस्पति से तात्पर्य बड़े प्रकृति आदि पदार्थों और बड़ी वेद वाणी के पालक, परमेश्वर तथा वेदविद्वान् से लिया है। इन्द्र से तात्पर्य है परमैश्वर्ययुक्त सम्राट तथा दुष्ट विनाशक सेनाध्यक्ष।[2] 'नाक' (न+अ+क) शब्द से अतिशय सुख और आनन्द का बोध होता है।[3] परमेश्वर की शरण में जाने से मोक्ष का सुख, गुरु की शरण में जाने से विद्या का सुख तथा सम्राट अथवा सेनाध्यक्ष की शरण में जाने से वैभव प्राप्ति का सुख प्राप्त होता है। यही बृहस्पति का नाक तथा इन्द्र का नाक है।

हे सेनाध्यक्ष! जैसे। मैं (हवे हवे) प्रत्येक युद्ध में (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) दुष्टों के विदारक (अवितारम्) तृप्त करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य के दाता (सुहवम्) अच्छे प्रकार आह्वान करने वाले (शूरम्) शत्रुओं के हिंसक (इन्द्रम्) शत्रुओं के धारक (शक्रम्) आशुकारी (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों से निमन्त्रित (इन्द्रम्) शत्रु दल के विदारक तुमको (ह्वयामि) पुकारता हूँ, सो (मघवा) परम पूज्य (इन्द्र) प्रशस्त मनः का धारक तू (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को (धातु) धारण कर। भाव यह है कि मनुष्य उसका सदा सत्कार करें जो विद्या, न्याय और धर्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय होकर सबकी सुख-वृद्धि के लिए प्रयत्न करे।[4]

---

१ शुक्लयजुर्वेद संहिता, ९ १० प १३७

उवट—ब्रह्मा रथचक्रमारोहति। देवस्याहम् सवितु सवे अभ्यनुज्ञाया सत्यसवस सत्याभ्यनुज्ञाया वर्तमानस्य बृहस्पते सर्वेषि उत्तममुत्कृष्ट नाक स्वर्गलोक रहयम् आरोहामि। देवस्याह सवितु सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तम, नाक रहयमिति देवतामात्र विशेष।

महीधर—देवस्याहमिति।

सत्यसवस सत्याभ्यनुज्ञस्य सवितुर्देवस्य सर्वेऽनुज्ञाया वर्तमानोऽहं बृहस्पते सम्बन्धिनमुत्तममुत्कृष्ट नाक स्वर्गरहयामारोहामि।

२ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) ९ १०

३ निरुक्त, २ १४

कमिति सुखनाम्। तत्प्रतिषिद्ध प्रतिषिध्यते।

४ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द) २० ५०

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥

हम लोग जिन (सुन्दशा) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले (सुहवा) सुन्दर बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) राजा-प्रजाजनों को (इह) इस जगत में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जैसे (सङ्गमे) संग्राम व समागम में (न) हमारे (सर्व, इत्) सभी (जन) मनुष्य (अनमीव) नीरोग (सुमना) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें वैसे किया करें। भाव यह है कि जैसे सब मनुष्य प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों वैसे ही राजा प्रजा पुरुष प्रयत्न करें।[1]

उवट व महीधर के अनुसार इन्द्रवायु याज्ञिक देवता है।

'इन्द्रवायू सुसन्दृशा। सुसन्दृशा सुनरा सम्यग्दर्शनीयौ।
सुहवा स्वाह्वानौ च इह हवामहे आह्वयाम।'

—इति उवट।

राजा आदि लोग विद्वानों से उत्तम वाणी प्रज्ञा और कर्म को ग्रहण करें। विद्वान लोग भी (इन्द्रम्) परमबल के योग से शत्रुओं के विदारक राजा को उत्सवादि महान कार्यों के अवसर पर अनुकूलतापूर्वक आनन्दित करें।[3]

हे (इन्द्र) शत्रुओं का विदारण करने वाले राजन! (ते) तेरे (तुरयन्तम्) हिंसक (शुष्मम्) शत्रुओं के शोषक बल को (शिशुम्) बालक को (मातरा) माता-पिता के (न) समान (क्षोणी) अपनी और पराई भूमि (अनु+ईयतु) अनुगमन करती है, सो (तव) तेरे (मन्यवे) क्रोध में (विश्वा) सब (स्पृध) शत्रु सेनाएँ (नश्यन्त) नष्ट हो जाती हैं और (यत्) जिस (वृत्रम्) न्याय के आच्छादक शत्रु को तू (तूर्वसि) मारता है वह पराजित हो जाता है।[4]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३.८६

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमना असत्॥

२ शुक्लयजुर्वेद संहिता, ३३.८६ पृ० ५५६

तुलना—वही (महीधर)

तापस दृष्टन्द्रवायवी। इह यतो वयमिन्द्रवायू हवामहे आह्वयाम।

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३.२६

इमा ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥

४ वही, ३३.६७

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥

इन्द्र सेनापति के रूप मे

यजुर्वेद मे इन्द्र को सेनापति मानकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे (इन्द्र) सेनाओ के पति ! तू (कुचर) कुटिल चाल चलता (गिरिष्ठा) पर्वतो मे रहता (भीम) भयकर (मृग) सिह के (न) समान (परावत) दूर देश से शत्रुओ को (आ, जगन्थ) चारो ओर से घेरे (परस्या) शत्रु को सेना पर (तिग्मम्) अति तीव्र (तिग्मम्) दुष्टो को दण्ड से पवित्र करने हारे (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (सशाय) सम्यक् तीव्र करके (शत्रून्) शत्रुओ को (वि, ताढि) ताडित कर और (मृध) सग्रामो को (वि नुदस्व) जीत कर अच्छे कर्मो मे प्रेरित कर।[1]

यजुर्वेद के कई मन्त्रो मे इन्द्र को महत्वान् कहा गया है।[2] इन स्थलो पर उव्वट व महीधर इन्द्र को नगर का देवता विशेष तथा मरुतो को उसके सहायक देव गण मानकर ही इन मन्त्रो का अर्थ करते हैं।[3] सायण ने इन्द्र के सहचर मरुतो की सख्या उनचास (४९) निश्चित की है।

हे इन्द्र! मरुद्भिरेकोनपञ्चाशद् मरुद्गणै
सह एव सपरिवार सन सोम पिबा।[4]

स्वामी जी ने यहा इन्द्र को वीर और विद्वान सेनापति तथा मरुतो का उसके सैनिक मानकर अर्थ किया है। स्वामी जी के अनुसार इन्द्र द्वारा मोक्षधाम का अथ सेनापति द्वारा मे धर्मात्माओ की रक्षा का सेवन करता है। आधिदैविक दृष्टि से विद्युत सूर्य अथवा वायु ही इन्द्र है विविध प्रकार के मरुत ही उसके सहचर हैं।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १८ ७१
मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा परावत आ जगन्था परस्या।
सृक सशाय पविमिन्द्र तिग्मम् वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व॥

२ (क) यजुर्वेद ७ ३७
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभय कृणुहि विश्वतो न।
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

(ख) वही, ७ ३८
मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वध मदाय।
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

३ शुक्लयजुर्वेद सहिता ७ ३७, ३८

४ काण्व सहिता भाष्य (सायण), १७ २०१

मरुता (वायुओं) की सहायता से भौतिक जगत में विद्यमान सभी ...ों का ...रण करना ही इन्द्र का सोमपान करना कहलाता है।[1]

इन्द्र विश्व राज्य में सम्पन्न मन्त्री और क्षत्रिय समाज का प्रतिनिधि है। इन्द्र राष्ट्र के शत्रुओं का मर्दन करके सज्जनों की रक्षा करके राष्ट्र को ... से सुरक्षित रखता है। इन्द्र के सैनिक मरुत हैं। ये सैनिक इन्द्र को ... प्रकार से सहायता करते हैं। इनका नाम ही मरुत अर्थात ... है। ये मरते दम तक उड़-उड़कर शत्रुओं से लड़ते हैं। ऐसी शूरवीर सेनाओं का सेनापति इन्द्र है।

स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद के कई मन्त्रों में इन्द्र पद का अर्थ सभेश, सेनाध्यक्ष और सेनापति किया है। वह इन्द्र (सेनापति) भयंकर सिंह के समान वीर है, वह बहुत सज्जनों के द्वारा सत्कृत है। वह शत्रुओं के कुल को विलोडन करने वाला, दया से रहित, शत्रु प्रकार के क्रोध वाला, शत्रु सेना का मर्दन करने वाला, अयुध्य अर्थात् जिससे शत्रु युद्ध न कर सके ऐसा अपनी बुद्धि से शत्रुओं के गोत्रों का भेदन करने वाला, शत्रुओं की भूमि को प्राप्त करने वाला, हाथों में वज्र रूप शस्त्र रखने वाला शत्रुओं का हनन करने वाला शत्रुओं को दूर करने वाले संग्राम को जीतने वाला सूर्य के समान तेज वाला महान बलवान् शस्त्र विद्या में शिक्षित, ऐश्वर्यवान, बलयुक्त सेना का निर्माण जानने वाला, राजधर्म के व्यवहार को जानने वाला, उत्तमवीर, बहुत बल वाला उत्तम शास्त्र बोधवाला, सुख-दुःख आदि का सहन करने वाला दुष्टों के वध में तीव्र तेज वाला, अभीष्ट वीरों वाला सब और युद्ध के विद्वान् रक्षक व भृत्यों वाला, बल से प्रसिद्ध, पृथिवी को प्राप्त करने वाला भुशुण्डि (बन्दूक) आदि आग्नेय अस्त्रों वाले भृत्यों से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों व धर्मात्माओं की रक्षा करने वाला, इन्द्रिय और अन्तःकरण को वश में करने वाला मिले हुए शत्रुओं को जीतने वाला सोम नामक औषधि रस का पान करने वाला, वायुओं से बल वाला, उग्रधनुष वाला, युद्ध करने वाला धर्मात्माओं को बनाने वाला सेनाओं को शीघ्र चलाने वाला, पर्वतों को सूक्ष्म करने वाला बैल के समान भयंकर वीर, शत्रुओं का अत्यन्त घातक, भयानक, शत्रुओं को सम्यक् रुलाने वाला एक मात्र वीर, निरन्तर प्रयत्न करने वाला शत्रुओं को दुःख पहुंचाने वाला ... उत्साही ... से युक्त होकर भृत्यों को शिक्षित व अभिषिक्त करने वाला वीर्यवान्, दाता हाथों में शस्त्र धारण करने वाला, दुष्टों को रुलाने वाला, जयशील आदि-आदि विशेषताओं व विशेषणों से युक्त कहा गया है।

यजुर्वेद भाष्य करते हुए स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में इन्द्र पद का अर्थ सभेश अथवा सेनापति अथवा सेनाध्यक्ष किया है अब उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

---

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), ... ३७ ३८

२ ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, पृ० ५१६

हे (पुरुहूत) बहुत सज्जनों के द्वारा सत्कृत, (इन्द्र) शत्रुविदारक सेनापति ! जैसे सूर्य (सहदानुम्) एक साथ जल को देने वाले, (क्षियन्तम्) गतिशील (कुणारुम्) शब्द करने वाले, (अहस्तम्) हाथों से रहित (पियारुम्) जलपान कराने वाले, (अपादम्) पांव से रहित (अभिवर्द्धमानम्) सब ओर से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघ को (सपिणक्) पीस देता है वैसे हे (इन्द्र) सेनापति ! तू शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्थ) मार।

हे सेनापति इन्द्र ! मृध अर्थात रक्त से आर्द्र करने वाले संग्रामों को विनष्ट कर। अपनी सेना की इच्छा करने वाले हमारे शत्रुओं को भगाकर पकड़, जो शत्रु हमें क्षीण करता है उसे अधोगति व अन्धकारमय कारागार में पहुंचा।[1]

सेना को सब दिशाओं में प्रेरणा करने वाला सेनापति पद के योग्य है। सेनापतियों का युद्ध समय का घोष शौर्य और उत्साहवर्धक हो। सेनापति का आदेश पालन करने वाली सेनाएँ संग्राम में जीतें। सेनापति अपने तुल्य बलवान् वीर योद्धाओं के साथ नीतिपूर्वक सदव्यवहार करें जिससे वे शत्रुओं को जीतने का प्रयत्न करें। विद्युत और अग्नि के तुल्य सेनापति व सभापति श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करें व दुष्टों का विनाश करें।[2]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द)

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ २ अभिदासत्यधरं गमया तमः॥

२ वही, १७.४०, ४१ ४३ ४५ ६४

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ २ उ देवा अवता हवेषु॥
इन्द्रेमं प्रतरं नय सजातानामसद्वशी।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा असत्॥
उदग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम्॥

हे विद्वानो ! जो (युत्सु) मिश्रित अमिश्रित करने वाले युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रुकुलों को (प्रगाहमान) प्रयत्न से विलोडन करने वाला, (अदय) दया से रहित (शतमन्यु) सौ प्रकार के क्रोध वाला (दुश्च्यवन) शत्रुओं के द्वारा दुःख से प्राप्त करने योग्य, (पतनाषाट) शत्रु सेना का मर्षण करने वाला (अयुध्य) जिसमें शत्रु युद्ध नहीं कर सकते वह (वीर) शत्रुओं का विदारक वीर (अस्माकम्) हमारी (सेना) सेनाओं की (अभ्यवतु) सब ओर से रक्षा कर वह (इन्द्र) सेनापति हो, ऐसी आज्ञा करो। भाव यह है कि दुष्टों के प्रति दयाहीन शत्रुओं के प्रति शतमन्यु युद्ध में शक्ति से शत्रु कुलों का विदारक शत्रुओं से दुःख से प्राप्त होने वाला तथा शत्रु से अजेय, शत्रु सेना का विदारक और अपनी सेना का रक्षक मनुष्य ही सेनापति होने के योग्य है।[1]

हे (सजाता) एकदेश (=स्थान) में उत्पन्न (सखाय) परस्पर के सहायक मित्रो ! तुम (ओजसा) अपने शरीर और बुद्धि के बल से व सेना से (गोत्रभिदम्) शत्रुओं के गोत्रों का भेदन करने वाले (गोविदम्) शत्रुओं की भूमि को प्राप्त करने वाले (वज्रबाहुम्) अपने हाथों में शस्त्रों को रखने वाले (प्रमृणन्तम्) उत्तमता से शत्रुओं का हनन करने वाले (अज्म) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, संग्राम को (जयन्तम्) जीतने वाले (इमम्) इस (इन्द्रम्) शत्रुदल के विदारक सेनापति के (अनुवीरयध्वम्) अनुकूल वीरता दिखाओ तथा (अनुसरभध्वम्) अनुकूल होकर सम्यक् युद्ध का आरम्भ करो। भाव यह है कि सेनापति और भृत्य परस्पर मित्र होकर एक दूसरे का अनुमोदन करके युद्धारम्भ और विजय करके शत्रुओं के राज्य को प्राप्त करके, न्याय से प्रजा का पालन करके सदा सुखी रहें।[2]

जो मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न होकर महौषधि के सार को स्वयं सेवन करके विद्वान् व विदुषी, अध्यापक व उपदेशक तथा सभापति व सेनापति को सेवन करा कर सदा आनन्द को बढ़ाते हैं वे धन्य हैं।

हे सूर्य के समान तेजस्वी सेनापति ! जैसे सूर्य मेघ का छेदन करता है वैसे ही

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७.३९
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥

२ वही, १७.३८
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥

शत्रुओं की सेना का विनाश कर। महान बलवान, शस्त्र विद्या में शिक्षित व ऐश्वर्यवान सेनापति युद्ध में स्थिर रहें व विजय प्राप्त करें। जैसे शिकारी पक्षियों को जाल में बांध देते हैं वैसे शत्रु सेनापति को ने बांध सकें।[2]

ह (इन्द्र) युद्ध की परम सामग्री से युक्त सेनापति (बलविनाय) बलयुक्त सेना का निर्माण जानने वाला स्थविर, वृद्ध (=राजधर्म) के व्यवहार में ज्ञाता, (प्रवीर) उत्तमवीर (महस्वान) बहुत बल वाला (वाजी) उत्तम शास्त्र बोध वाला, (सहमान) सुख दुःख आदि को सहन करने वाला (उग्र) दुष्टों के वध में तीव्र तेज वाला, (अभिवीर) अभीष्ट वीरों वाला, (अभिसत्वा) सब ओर युद्ध के विद्वान, रक्षक व भृत्यों वाला (सहोजा) बल के कारण प्रसिद्ध, (गोविद) गौ अर्थात वाणी, गाय व पृथिवी को प्राप्त करने वाला होकर तू युद्ध के लिए (जैत्रम) विजेताओं से घिरे हुए (रथम) रमणीय भूयान समुद्रयान और आकाश यान में (आतिष्ठ) बैठ। भाव यह है कि सेनापति व सेना के वीर जब शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहें तब परस्पर मेल जोर से रक्षा साधना का संग्रह करके बुद्धिपूर्वक उत्साह से युक्त होकर, पुरुषार्थी होकर शत्रुओं को विजय करने में तत्पर रहें।[3]

(स) वह सेनापति (इषुहस्तैः) शस्त्र हाथ में रखने वाले, सुशिक्षित, बलिष्ठ, (निषङ्गिभिः) निषङ्ग अर्थात भुशुण्डि (=बन्दूक), शतघ्नी (=तोप) आदि बहुत आग्नेय अस्त्रों वाले भृत्यों के साथ विद्यमान, (स) वह (संस्रष्टा) श्रेष्ठ मनुष्यों व शस्त्र अस्त्रों का समागम करने वाला (वशी) इन्द्रियों और अन्तःकरण को वश में रखने वाला (संसृष्टजित) संसृष्ट अर्थात् मिले हुए शत्रुओं को जीतने वाला,

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १९.२३,७१

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥

२ वही, २०.४६, ५३

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥

३ वही १७.३७

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥

(सोमपा) ओषधि रस का पान करने वाला (बाहुशर्द्धी) बाहुओं में बल वाला (उग्रधन्वा) उग्र धनुष वाला (स) वह (युध) युद्ध करने वाला, (अस्ता) शस्त्र अस्त्र को चलाने वाला (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक सेनापति (गणेन) सुशिक्षित भृत्यो व सेनाओं और (प्रतिहिताभि प्रत्यक्ष धारण की हुई सेनाओं के साथ वर्तमान होकर शत्रुओं को जीते।

भाव यह है कि सेनापति सुशिक्षित वीरो के साथ दुर्जय शत्रुओं को जैसे जीत सके वैसा सब आचरण करें।

हे विद्वान् मनुष्यो! तुम जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यो व उनमें सम्बन्धित सेनाओं को (आशु) शीघ्र बनाने वाला, (शिशान) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला, (वृषभ) बैल के (न) समान (भीम) भयंकर, (घनाघन) अत्यन्त शत्रुओं का घातक (क्षोभण) सञ्चालक (सङ्क्रन्दन) शत्रुओं को सम्यक् रुलाने वाला (अनिमिष) दिन-रात प्रयत्न करने वाला, (एकवीर) एक वीर (इन्द्र) शत्रुओं का विदारक सेनापति हमारे (साकम) साथ (शतम) असंख्य (सेना) शत्रुओं को बांधने वाली सेनाओं को (अजयत) जीतता है उसे ही सेनापति बनाओ।

भाव यह है कि एक मात्र वीर, निरन्तर प्रयत्न करके शत्रु-सेनाओं को पराजित करने वाला तथा रुलाने वाला आलस्य रहित होकर शीघ्र कार्य करने वाला, बैल की तरह भयानक, दुष्टों का घातक, अपनी सेनाओं का भली भांति सञ्चालन करने वाला और पदार्थों को बुद्धि चातुर्य से सूक्ष्म करने वाला व्यक्ति सेनापति बनने का अधिकारी होता है।[2]

हे (युध) युद्ध करने वाले (नर) मनुष्यो! तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करने वाले (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को दुःख पहुंचाने वाले (धृष्णुना) दृढ उत्साही (युत्कारेण) व्यूहों से युक्त होकर भृत्यो को मिश्रित और अमिश्रित करने वाले (वृष्णा) वीर्यवान (इषुहस्तेन) दोनों हाथों में शस्त्र धारण करने वाले (सङ्क्रन्दनेन) दुष्टों को सम्यक् रुलाने वाले (जिष्णुना) जयशील (तत) उस पूर्वोक्त

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७.३५

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी स सृष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
स सृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥

२ वही, १७.३३

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो
घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं
सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥

(इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले सेनापति के साथ वर्तमान रह कर शत्रुओं को जीतो और (तत्) उस शत्रु सेना का युद्ध जन्य दुःख को (सहध्वम) सहन करो।

भाव यह है कि हे मनुष्यो ! तुम युद्ध विद्या में कुशल, सब शुभ लक्षणों में युक्त बल और पराक्रम से भरपूर पुरुषों को सबका अधिष्ठाता बनाकर, उसके साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत कर निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य को भोगो।[1]

हे (इन्द्र) सेनापते एवं सेनाध्यक्ष ! आप (न) हमारे (विमृध) विशेष शत्रुओं को (जहि) मारो। (पृतन्यतः) अपनी सेना की इच्छा करने वाले (नीचा) नीच दुष्टों को (यच्छ) पकड़ो (यः) जो शत्रु (अस्मान्) हमें (अभिदासति) सब ओर से क्षीण करता है उसे (तमः) अन्धकार को सूर्य के समान (अधरम्) नीचे (गमय) गिराओ। जिस (ते) आपका (एव) यह उक्त आचरण (यानि) निवास है सो आप हमसे (उपयामगृहीतः) सेना आदि सामग्री से युक्त होने से ग्रहण किये गये (असि) हो अतः (इन्द्राय) ऐश्वर्य को देने वाले (विमृधे) विशेष शत्रुओं से युक्त संग्राम को जीतने के लिए (त्वा) आपको सेनापति स्वीकार करते हैं तथा (इन्द्राय) परमानन्द की प्राप्ति के लिए (त्वा) आपको (नियोजयामः) आज्ञा देते हैं।

भाव यह है कि जो दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल को बढ़ाकर सबको पीड़ा देना चाहे उसे राजा सब प्रकार से दण्ड दे, यदि वह अपने प्रबलतर दुष्ट स्वभाव को न छोड़े तो उसे राष्ट्र से निकाल दे अथवा मार डाले।[2]

इन्द्र सभेश अथवा सभापति के रूप में

स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद भाष्य में अनेक स्थलों पर प्रकरणानुसार इन्द्र को सभेश अथवा सभापति अर्थ का वाचक भी माना है। वह इन्द्र (सभेश अथवा सभापति) 'अङ्ग' अर्थात् प्रिय, 'शविष्ठ' अर्थात् अत्यन्त बलशाली 'मघवन्' अर्थात्

१ यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), १७.३४

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥

२ वही ८.४४

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः
यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते
योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे॥

ईश्वर के समान समृद्ध, 'मंहिता' अर्थात दिव्य रूप से शत्रुओं को जीतने वाला, 'वज्रहस्त' अर्थात हाथ में वज्र रूप शस्त्र वाला 'तुराषाट्' अर्थात शीघ्रकारी शत्रुओं का नष्ट करने वाला आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। इन मन्त्रों में भी सायण ने याज्ञिक प्रक्रियानुसार इन्द्र को यज्ञ का एक प्रमुख देवता माना है। उनके अनुसार इन्द्र मुख्यतः याज्ञिक देवता ही है तथा मन्त्रों में औषधि आदि जड़ पदार्थों की स्तुति होने पर अथवा सूर्यादि पदार्थों की इन्द्रादि नाम से स्तुति होने पर औषधि आदि अथवा इन्द्रादि नाम से उस उस नाम की चेतनाभिमानी देवता की ही स्तुति की गई है।[1]

अब स्वामी जी के मतानुसार इन्द्र का सभेश अथवा सभापति अर्थ जिन मन्त्रों में प्राप्त है उनका अर्थ भी प्रस्तुत किया जाता है ताकि तत् तत् प्रकरणानुसार वह अर्थ समझा जा सके।

हे (अङ्ग) प्रिय (शविष्ठ) अत्यन्त बलशाली (मघवन्) ईश्वर के समान समृद्ध (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सभापते! आप (मर्त्यम्) प्रजा के मनुष्यों की (प्र+शंसिष) प्रशंसा करो। (त्वदन्य) आप से भिन्न दूसरा कोई (मर्डिता) सुख देने वाला (देव) और शत्रुओं को जीतने वाला (न) नहीं (अस्ति) है, इसलिए मैं (ते) आपको (वच) पूर्वोक्त राजधर्म के अनुरूप वचन (ब्रवीमि) कहता हूं।

भाव यह है कि जैसे पक्षपात रहित ईश्वर सबका मित्र है वैसे ही सभापति भी प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दण्डनीय को दण्ड और रक्षा करने योग्य की रक्षा करके सबका अभीष्ट करे।[2]

जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते हैं, जैसे वनों को अग्नि दग्ध करती है, वैसे दुष्ट शत्रुओं को जलाते हैं जैसे दिन रात्रि को निवृत्त करता है, वैसे जो छल, कपट, अविद्या अन्धकार को मिटाते हैं वे प्रतिष्ठित सभापति होते हैं।[3]

---

१ ऋग्वेद भाष्योपक्रमणिका, पृ० १७

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ६.३७

स्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥

३ वही ३३.२६

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम्॥

सभापति असहाय होकर कोई राज कार्य न करे। सज्जनों की रक्षा व दुष्टों के ताडन में राज सहाय से युक्त रहे। शुभ आचरण वाला सभापति शिष्ट जनों की सम्मति से प्रजा का शासन करे।[1]

हे (चित्रभानो) विचित्र विद्या प्रकाश वाले (इन्द्र) सभापति! तू जो (इमे) ये (अण्वीभि) अगुलियों से (सुता) तैयार किए हुए (तना) विस्तृत गुण से (पूतास) पवित्र (त्वायव) तुझे मिलने वाले पदार्थ हैं उन्हें (आयाहि) प्राप्त कर, उनका सेवन कर। भाव यह है कि विद्या प्रकाश से युक्त सभापति व मनुष्य श्रेष्ठ क्रिया से पदार्थों को शुद्ध करके खावें।

हे (इन्द्र) सभापते! (ते) आपके जो (स्वभानव) अपने ज्ञान विज्ञान में दीप्तिमान (अवप्रिया) अविद्या के विरोध से प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले (विप्रा) मेधावी विद्वान लोग हैं, वह (नविष्ठया) सर्वथा नवीन (मती) बुद्धि से (हि) स्थिरतापूर्वक परमेश्वर की (अस्तोषत) स्तुति करते हैं, (अक्षन्) उत्तम भोजन करते हैं (अमीमदन्त) आनन्दित रहते हैं। इसलिए वे मेधावी विद्वान् शत्रुओं को और दुःखों को (नु) शीघ्रता से (अधूषत) दूर हटाते एवं दुष्टों और दोषों को कम्पा देते हैं। इसलिए हे सभापते! आप भी इन दुष्टों और दोषों के हटाने में (ते) अपने (हरी) बल और पराक्रम को (योज) लगाओ।

भाव यह है कि मनुष्य प्रतिदिन नये विज्ञान और क्रिया को बढावें। जैसे मेधावी लोग विद्वानों के संग और शास्त्रों के अध्ययन से नई नई मति (विज्ञान) और क्रिया को उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें।[3]

हे (देव) दिव्य गुणों से युक्त (इन्द्र) सभापति (वज्रहस्त) हाथों में वज्र के समान शस्त्रों वाले! (वयम) हम राजपुरुष और प्रजाजन (ते) आपके सम्बन्ध में (अप्रयुक्तास) श्रम न करने वाले (मा) न हों और (ते) आपकी (अब्रह्मता)

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३.२७
कुतस्त्वमिन्द्र माहिन स नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सपृच्छसे समराण शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥

२ वही २०.८७
इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायव।
अण्वीभिस्तना पूतास ॥

३ वही, ३.५१
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती
योजान्विन्द्र ते हरी ॥

वेद और ईश्वर सम्बन्धी श्रद्धा कम (मा) न हो जिससे हम लोग आपकी (विद साम) उपमा करें। आप (तुरापाट) शीघ्रकारी शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, सो जिन (रश्मीन) लगाम वाले (स्वश्वान) उत्तम घोड़ों को (आ) यम से वश में करते हो और (यम) जिस (रथम) रथ में (अधितिष्ठ) बैठते हो, हम लोग भी उन घोड़ों को वश में करें तथा रथ में बैठें।

भाव यह है कि राजपुरुष और प्रजाजन राजा के साथ अयोग्य व्यवहार कभी न करें और राजा उनके साथ अन्याय न करे।

हे स्त्री पुरुषो! तुम जैसे (विश्वा) सब (गिर) वेदविद्या में सस्कृत वाणियाँ (समुद्रव्यचसम) समुद्र के समान व्याप्ति वाले (वाजानाम) सग्रामो तथा (रथीनाम) प्रशस्तवीरों के मध्य में (रथीतमम) अत्यन्त प्रशस्त रथ वाले प्रधान महारथी (सत्पतिम) सत अर्थात ईश्वर वेद, धर्म व जनों के पालक (पतिम) अखिल ऐश्वर्य से सम्पन्न पति रूप (इन्द्रम) परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र को (अवीवृधन) बढ़ाती है, वैसे सबको बढ़ाओ।

भाव यह है कि जो कुमार और कुमारियाँ दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य में साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़कर अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करते हैं धर्मयुक्त व्यवहार में, व्यभिचार रहित होकर उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर परोपकार में प्रवृत्त रहते हैं, वे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करते हैं, दूसरे अविद्वान् नहीं।[२]

हे (अग) मित्र! जो (बर्हिष) अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले (यवमन्त) बहुत यव (जौ) वाले किसान लोग (नम उक्तिम) अन्न आदि की वृद्धि के लिए उपदेश (यजन्ति) देते हैं (एषाम) इनके पदार्थों एवं किसानों के (इहेह) इस ससार में और व्यवहार में तू (भाजनानि) पालन वा लाभ दानों को (कृणुहि) सिद्ध कर। जैसे ये (यवम) जौ आदि धान्य को (चित्) भी (वियूय) विभक्त करके (अनुपूर्वम) अनुकूलता से प्रथम (दान्ति) छेदन करते हैं वैसे तू इनके धन से (वृवित) बल को प्राप्त करा। (ते) तेरा (एष) यह (योनि) कारण है सो (त्वा) तुझे (अश्विभ्याम) द्युलोक और पृथिवी के लिए (त्वा) तुझे (सरस्वत्यै)

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १० २२
मा त इन्द्र ते वय तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम ।
तिष्ठा रथमधि य वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान ॥

२ वही, १२ ५६
इन्द्र विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचस गिर ।
रथीतम रथीना वाजाना सत्पति पतिम् ॥

कृषि कर्म की प्रचारक वाणी के लिए (त्वा) तुझे (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिए तथा (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक के लिए (त्वा) तुझे (तेजसे) तेज के लिए (त्वा) तुझे (वीर्याय) पराक्रम के लिए (त्वा) तुझे (बलाय) बल के लिए जो (यजन्ति) दान करते हैं अथवा जिन कृषक आदि के तू (उपयाम गृहीत) स्वीकार किया गया (असि) है। उनके साथ तू विहार कर। भाव यह है कि जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने वाले, राज्य में कर देने वाले परिश्रमी लोगों की प्रीतिपूर्वक रक्षा करते हैं व उन्हें उपदेश देते हैं, वे इस संसार में सौभाग्य शाली होते हैं।

इन्द्र मनुष्य रूप में

स्वामी दयानन्द ने कई मन्त्रों में इन्द्र का अर्थ मनुष्य भी स्वीकार किया है (इन्द्र) सुख के इच्छुक, विद्या ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य! तू (नः) हमारे (धानावन्तम्) सुन्दर धन धान्य अन्नों से युक्त (करम्भिणम्) श्रेष्ठ क्रिया से निष्पन्न (अपूपवन्तम्) उत्तम रीति से सम्पादित अपूप (=पूआ) आदि सहित (उक्थिनम्) प्रशस्त उक्थ वचन से उत्पन्न बोध से निष्पादित अर्थात् तैयार किये हुए भक्ष्यपदार्थों से युक्त भोज्य अन्न रस आदि का (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) सेवन कर। भाव यह है कि जो विद्या अध्यापन और उपदेश से सब को अलङ्कृत करने वाले, विश्व के उद्धारक विद्वान् लोग सुगन्धित रस आदि से युक्त अन्न आदि का यथासमय सेवन करते हैं और जो उन्हें विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी सिखलाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं।

हे मनुष्यो! जो (महिषाः) महान् पूजनीय (स्वर्काः) उत्तम अर्क (=अन्न) आदि पदार्थों वाले (यजमानाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोग (नमोभिः) अन्नों से (सुरावन्तम्) प्रशस्तसोम वाले (बर्हिषदम्) आकाश में स्थित होने वाले (सुवीरम्) उत्तम वीरों को शरीर और आत्मा के बल से युक्त करने वाले (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं व (दिवि) शुद्ध व्यवहार में (देवतासु) विद्वानों में (शामम्)

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १९.६
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै
त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ■
योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥
२ वही, २०.२९
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व ■ ॥

ऐश्वय का (इन्द्रम्) परम ऐश्वय से युक्त पुरुष को (दधाना) धारण करते हुए हर्षित होते हैं और हम भी (मदेम) प्रसन्न होवें। भाव यह है कि जो मनुष्य अन्न आदि ऐश्वय का सञ्चय करके, उससे विद्वानों को सन्तुष्ट कर सदविद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करके सबके हितैषी होते हैं वे ही आनन्द को प्राप्त करते हैं।[1]

इन्द्र सूय रूप में

ऋग्वेद के एक सूक्त में[2] स्वामी जी ने इन्द्र देवता वाले मन्त्रों की सूय परक व्याख्या की है। इस आधिदैविक व्याख्या में सूय के कर्मों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। एक मन्त्र[3] का अथ करते हुए कहा है कि हे मनुष्यो! जो चलती हुई विस्तृत भूमि को धारण करता है जो अत्यन्त कोपयुक्त शत्रुओं के समान वतमान मेघों को छिन्न भिन्न करता है, जो बहुत विस्तार वाले अन्तरिक्ष को विशेषता से मापता है, जो प्रकाश को धारण करता है वह विदारक सूय जानने योग्य है।[4]

एक अन्य मन्त्र में स्वामी जी ने इन्द्र का अधिदैवत अथ सूय करते हुए स्पष्ट किया है कि सूय अपनी धुरी पर घूमता है वह स्थानान्तर गति नहीं करता।

हे (अङ्ग) विद्वान पुरुष जो (स्थिर) स्थिर अपनी परिधि में ठहरा हुआ (विचर्षणि) दशक (इन्द्र) ऐश्वयवान सूय (महत्) बहुत (सत) होता हुआ (भयम) भय को (अप अभि चुच्यवत्) अलग करता है (स हि) वही सूय लोक जानने

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १६ ३२
सुरावन्त बर्हिषद सुवीर यज्ञ हिन्वन्ति महिषा नमोभि।
दधाना सोम दिवि देवतासु मदेमेन्द्र यजमाना स्वर्का।

२ ऋग्वेद, २ १२ २

३ वही २ १२ २
य पृथिवी व्यथमानामदृहद य पवतान् प्रकुपिता अरम्णात्।
यो अन्तरिक्ष विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात स जनास इन्द्र॥

४ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २ १२ २
य पृथिवी विस्तीर्णां भूमि व्यथमानाम चलन्तीम् अदृहत धरति, य पवतान मेघान प्रकुपितान् प्रकोपयुक्तान शत्रूनिव वतमानान् अरम्णात वधति, रम्णाति वधकर्मा (निघण्टु २ १९), य अन्तरिक्षम द्यावोक्त्याग्द्यस्यमाकाशविममे विशेषेण मिमीते वरीय अतिशयेन बहु य द्या प्रकाशम अस्तभ्नात स्तम्नाति धरतिस (हे) जनास इन्द्र (दारयिता सूय वेदितव्य)।—हे मनुष्या यदीश्वरो विद्युत सूय वा न रचयेत तर्हि चलतो महतो भूगोलान् को धरेत कश्च मेघ वषयेत, कोन्तरिक्ष स्वप्रकाशेन पूरयेच्च।

योग्य है।[1] इन मन्त्रो में सायण ने इन्द्र को देवता विशेष मानकर अर्थ योजना की है।[2]

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥[3]

यजुर्वेद के इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य को सम्बोधित किया गया है। रात्रि का अन्धकार प्रकाश का आवरण है अतः वह वृत्र है। वृत्र (=रात्रि का अन्धकार) का नष्ट करने वाला वृत्रहन (=प्रकाशरूपी ऐश्वर्य से युक्त इन्द्र) ही सूर्य है। सूर्य के लिए वृत्रहन और इन्द्र शब्द सम्बोधन में प्रयुक्त है। उवट और महीधर ने भी इन्द्र शब्द को सूर्य का विशेषण और पर्याय स्वीकार किया है।[4]

स्वामी दयानन्द ने जिन मन्त्रो में इन्द्र का अर्थ सूर्य अथवा सूर्यलोक किया है उनका व्याख्यान प्रस्तुत किया जाता है।

जैसे यह (इन्द्र) सूर्यलोक (वृत्रसूर्ये) मेघ के वध करने के लिए (युष्मा) इन पूर्वोक्त जलों का (अवनीत) स्वीकार करता है और जैसे वे जल (इन्द्रम्) वायु को

---

१ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २ ४१ १०,
इन्द्रो अङग महद्भयमभी षदप चुच्यवत ।
स हि स्थिरो विचर्षणी ॥

२ ऋग्वेदभाष्य (सायण) २ १२ १ २
जनास जना हे असुरा य जात एव जायमाना एव सन्, प्रथम देवानां प्रधान-भूत मनस्वान मनस्विनामग्र गण्य देव द्योतमान सन् क्रतुना वृत्रवधादिलक्षणेन स्वकीयेन कर्मणा देवान् सर्वान् मोगदवान्, पर्यभूषत् "दयत्वेन पर्यग्रहीत ।

हे जनास जना, य इन्द्र व्यथमानाम् चलन्तीम् पृथिवीम् अदृहत शर्करादिभिर्दृढामकरोत ।—य च द्या दिवमस्तभ्नात तस्तम्भ निरुद्धमकरोत ॥

॥ एव इन्द्रो नाहमिति ।

३ यजुर्वेद, ३३ ३५

४ शुक्लयजुर्वेद सहिता, ३३ ३५, पृ० ५४३

उवट—हे वृत्रहन् ! वृत्रस्य पाप्मन आवरकस्य तमसो हन्त, त्वमुदगा अभि अभ्यु-दगा अभ्युदेषि । हे सूर्य ! तत्सर्वमेतत् हे इन्द्र ! ऐश्वर्ययुक्त । ते तव वशे वर्तते । त्वमेवैक ईश्वरो न द्वितीय इत्यभिप्राय ।

महीधर—वृत्रो मेघे रिपौध्वान्ते दानवे वासवे गिरौ इति कोशात् वृत्रमन्धकार आवरकं हन्तीति वृत्रहा रवि । हे वृत्रहन् ! हे सूर्य ! इन्द्र ! ऐश्वर्ययुक्त । अद्य यत् कच्च यत्र कुत्रचिद् त्वमभिउदगा अभ्युदेषि, तत्सर्वं ते तव वशे अस्तीति शेष । यद्वा उदगा अत्र पुरुषव्यत्यय । यत्किञ्चित् प्राणिजात भुदेति तत्सर्व तव वशे सर्वस्याशिता त्वमेवेत्यर्थ ।

(अवृणीध्वम्) स्वीकार करते हैं वैसे ही उन जलों को (यूयम्) तुम विद्वान लोग (वृत्रतूर्ये) मेघ के शीघ्र वेग से (प्रोक्षिता) उत्तम रीति से सींचे हुए (वृणीध्वम्) स्वीकार करो।

जैसे वे जल शुद्ध (स्थ) होवें इसलिए मैं यजमान (दव्याय) दिव्य (कर्म) पाँच प्रकार के कर्मों के लिए (देवयज्याय) विद्वानों वा दिव्यगुणों के सत्कार के लिए (अग्नये) परमेश्वर या भौतिक अग्नि को जानने के लिए (जुष्टम्) विद्या और प्रीति से सेवित (त्वा) उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) घृत से सींचता हूँ तथा (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम से (जुष्टम्) प्रीति से सेवनीय (त्वा) तृप्ति के लिए उस यज्ञ को (प्रोक्षामि) प्रेरित करता हूँ। इस प्रकार यज्ञ से शुद्ध किये जल (शुन्धध्वम्) शुद्ध हो जाते हैं (यत्) यज्ञ से शुद्ध होने से (व) उन जलों के (अशुद्धा) अशुद्ध गुण अर्थात् दोष (पराजघ्नु) नष्ट हो जाते हैं। (तत्) इसलिए अशुद्धि की निवृत्ति से सुखदायक होने से (व) उन जलों के (इदम्) इस शोधन को (शुन्धामि) पवित्र करता हूँ।

भाव यह है कि ईश्वर ने अग्नि और सूर्य को इसलिए रचा है कि ये सब पदार्थों के मध्य में *प्रविष्ट होकर, जल और ओषधि रसों का छेदन करके वायु को प्राप्त हों,* मेघमण्डल में जाकर और वहाँ से पृथिवी पर आकर शुद्ध और सुख के करने वाले हों।[1]

हे विद्वान मनुष्य! तू (पूर्वकृत) पूर्व दिशा को बनाने वाला (वावधान) बढ़ता हुआ (वज्रबाहु) वज्र को हाथ में धारण किये हुए, (उपसाम) प्रभातों की (अनीके) सेना में जैसे (पुरोरुचा) प्रथम फैली हुई दीप्ति से (समिद्ध) प्रदीप्त (इन्द्र) सूर्य (त्रिभि) तीन अधिक (त्रिंशता) तीस अर्थात् तैंतीस पृथिवी आदि (देवै) देवताओं के साथ विद्यमान होकर (वृत्रम्) प्रकाश के आच्छादक मेघ को (जघान) मारता है, (दुर) द्वारों को (विववर) खोलता है वैसे अतिबलवान् योद्धाओं की सहायता से शत्रुओं को मारकर विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर भाव यह है कि विद्वान लोग सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ शान्ति

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १.१३

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये
यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याम्
त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै
यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥

एवं प्रीति से सत्य-असत्य के विवेक के लिए संवाद कर, ठीक निश्चय करके सब लोगों का सम्यक् हित करें।[1]

हे विद्वान् मनुष्य! जैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष का (ऊर्णम्रदाः) आच्छादन करने वाला (हरिवान्) बहुत किरणों वाला (उरुप्रथाः) बहुत विस्तार करने वाला (आदित्यैः) बारह आदित्य मास (वसुभिः) पृथिवी आदि आठ वसुओं के (सजोषाः) साथ वर्तमान (इन्द्रः) लोकों का धारण करने वाला सूर्य (पृथिव्याः) भूमि की (प्रदिशा) दिशा से (प्रथमानम्) (विस्तृत) अत्यन्त प्रसिद्ध (प्राचीनम्) प्राचीन तथा (स्योनम्) सुखकारक स्थान में (सीदत्) विद्यमान है वैसे तू हमारे मध्य में हो। भाव यह है कि मनुष्य जिस प्रकार से सूर्य के समान अविद्या अन्धकार का निवारण करके जगत् में महान् सुख को उत्पन्न करें।[2]

हे मनुष्य! आप यह (यत्) जो हवन करने योग्य द्रव्य है (हविषा) इसका शुद्ध आहुति रूप (घृतेन) सुगन्धि आदि गुणों से युक्त घृत के साथ (सम्) संयुक्त—मिला करके (आदित्यैः) बारह मास (वसुभिः) अग्नि आदि आठ वसु और (मरुद्भिः) वायु-विशेषों के साथ (बर्हिः) अन्तरिक्ष को सुख से (सम्+अङ्क्ताम्) एकीभाव पूर्वक संयुक्त कीजिए। यह (इन्द्रः) सूर्यलोक यज्ञ से (स्वाहा) सुगन्धि आदि गुणों से युक्त हवि को (सम्+अङ्क्ताम्) प्रकट रूप में संयुक्त करता है। संयुक्त हुई (विश्वदेवेभिः) अपनी किरणों से (दिव्यम्) द्युलोक में विद्यमान (नभः) जल को (सम् गच्छतु) अच्छे प्रकार यत्नपूर्वक प्रकट करता है।

भाव यह है कि यज्ञ में शुद्ध किया हुआ जो हवि अग्नि में डाला जाता है वह आकाश में वायु, जल और सूर्यकिरणों के साथ रह कर, इधर-उधर जाकर आकाश को सब पदार्थों को दिव्य गुणों से युक्त बनाकर निरन्तर प्रजा को सुख देता है।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २०.३६
समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार॥

२ वही २०.३९
ऊर्णम्रदा बर्हिर्हरिवानिन्द्रः प्राचीनं सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः।
उरुप्रथाः प्रथमानं स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः॥

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २.२२
सं बर्हिरङ्क्तां हविषा घृतेन
समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं
नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥

जैसे रात दिन विभक्त होकर मनुष्य आदि के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं, उनमें से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती है और दिन सब व्यवहारों को प्रकाशित करता है, वैसे योगाभ्यास से राग आदि को निवृत्त करके शान्ति आदि गुणों को प्राप्त करके सुखों को प्राप्त करो।[1]

जैसा विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण करने वाले विद्वान् लोग शरीर के रक्षक उस आयु के बढ़ाने वाले पवित्र सूर्य का संग करते हैं वैसे हे यजमान तू भी इसका संग कर।

भाव यह है कि जैसे माता गर्भ और उत्पन्न बालक की रक्षा करती है, वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयु को बढ़ाओ।[2]

हे मनुष्यो ! जो (पृश्निः) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्निः) जिसका तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्वपृश्निः) जिसका ऊँचा व उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुताः) वायु देवता वाले जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त हो। (लोहितोर्णी) जिसकी लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और (पलक्षी) जिसकी चंचल चपल आँखें ऐसे पशु हैं (ता) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्णः) जिसके कान में प्लीहा रोग के आकार चिह्न हों। (शुण्ठाकर्णः) जिसके सूखे कान और जिसके (अध्यालोहकर्णः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले जो (कृष्णग्रीवः) काले गले वाले (शितिकक्षः) जिसके पांजर की ओर श्वेत अंग और (अञ्जिसक्थः) जिसकी प्रसिद्ध जंघा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हो ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्नाः) पवन और बिजली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जिः) जिसकी (कराती हुई) चाल (अल्पाञ्जिः) जिसकी थोड़ी चाल और (महाञ्जिः) जिसकी बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिए।

भाव यह है कि जो पशु और पक्षी, पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य

---

1 यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २८.१५।
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम् ।
अयाव्यन्याघा द्वेषांस्यान्या वक्षद्वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते
वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥

२ वही २८.२५
होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥

गुण वा जो पवन और बिजली गुण तथा जो प्रात समय की वेला के गुण वाले हैं उनसे उन्ही के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहिए।[१]

इन्द्र वायु रूप मे

विश्वेभि सोम्य मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभि ॥[२]

यजुर्वेद के इस मन्त्र मे 'इन्द्रेण वायुना' इस स्थल मे पठित तनीयान्त इन्द्र और वायु शब्द परस्पर विशेष्य विशेषण अथवा पर्याय हैं। ऋग्वेद मे भी इन्द्र को वायु का पर्याय माना गया है।[३] निरुक्त निरुक्त समुच्चय व शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणो से भी वायु और इन्द्र की एकात्मता व विशेष्य विशेषणता सिद्ध हो जाती है।[४] स्वामी दयानन्द ने वायु और इन्द्र शब्दो मे विशेष्य विशेषणभाव मानते हुए (इन्द्रेण) सर्वधा धारणेन (वायुना) बलवता (पवनेन) अर्थ किया है।[५]

उवट और महीधर ने इन्हे पर्याय अथवा विशेष्य विशेषण न मानकर इन शब्दो की स्वतन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की है।[६]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २४४
पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुता फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ता सारस्वत्य प्लीहाकर्ण शुण्ठाकर्णो ध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्रा कृष्णग्रीव शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्ना कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्या ॥
२ यजुर्वेद ३३ १०
३ (क) ऋग्वेद, १ १४ १०
(ख) ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द) १ ३ ६
अनेन प्रमाणेनेन्द्र शब्देन वायुग्र ह्यते।
४ (क) वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान । निरुक्त ७ २ १
(ख) तस्मादाधायस्य (धातास्य)
मध्यमस्याप्रवचनावतो (इन्द्रवायू) शब्दाविति।
—निरुक्तभाष्य (दुर्ग) ७ २ १
(ग) इन्द्रो मध्यस्थानो वायुरुच्यते। निरुक्तसमुच्चय (वररुचि), ४ ८३
(घ) अय वा इन्द्रो योय पवत। शतपथ ब्राह्मण, १४ २ २ ६
५ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३ १
६ शुक्लयजुर्वेद सहिता ३३ १० पृ० ५३६
उवट—वैश्वदेवस्य। विश्वेभि साम्यम गायत्री। विश्वेभि देवै सह। साम सबन्धि मधु हे अग्न इन्द्रेण च सह वायुना च सह पिब। मित्रस्य धामभिर्नामभि स्तुत सन। तदुक्तम त्वमग्ने वरुणो जायसे यस्त्व मित्रो भवसि यत्सम ईड्य इति।

इन्द्र विद्युत् रूप में

ऋग्वेद के एक मन्त्र में[1] स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र का अर्थ विद्युत् करते हुए बताया है कि सभी पदार्थों की उत्पत्ति और स्थिति में यह सूक्ष्मविद्युत् रूप अग्नि कारण है। मन्त्र का भाष्य करते हुए वे कहते हैं कि हे मनुष्यो, प्रति दिशा में जिसके समस्त व्याप्ति शील वेगादि गुण हैं, जिसकी किरणें हैं, जिसके मनुष्यों के निवास स्थान ग्राम हैं जिसके रथ हैं, जो कारण रूप विद्युत् सूर्य और उषा को उत्पन्न करता है, जो जलों का स्थानान्तर में ले जाने वाला है, वह विद्युद्रूप अग्नि है, ऐसा जानो।[2]

स्वामी जी इन्द्र देवता वाले जिन मन्त्रों में यजुर्वेद का भाष्य करते हुए इन्द्र का विद्युत् अथवा विद्युतरूप अग्नि अर्थ किया है अब उनकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजली का (क्रोड) डूबना (अदित्यै) पृथिवी के लिए (पाजस्यम्) अन्नों में जो उत्तम वह (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रव) सन्धि अर्थात् उनका एक दूसरे से मिलना (अदित्यै) अखण्डित प्रकाश के लिए (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहिए तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाड़ी से (अन्तरिक्षम्) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होते हुए व्यवहार से (नभ) जल और (चक्रवाकौ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उनको (मतस्नाभ्याम्) गले के दोनों ओर के भागों से (दिवम्) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अवगुणों का त्याग होता उनसे (गिरीन्) पर्वतों को (प्लाशिभि) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान्) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीहा) हृदयस्थ प्लीहा अंग से (वल्मीकान्) मार्गों को

महीधर –गायत्री मेधातिथिदृष्टा वैश्वदेवग्रहपुरोरुक् आमासश्चर्षणी (७ ३३) इत्यस्या स्थाने। हे अग्ने विश्वेभि विश्वेदेव इन्द्रेण वायुना च सह सोम्य सोममय मधु पिब। कीदृशस्त्वम्। मित्रस्य धामभि नामभि स्तुत इति शेष। त्वमग्ने वरुणो जायसे यस्त्व मित्रो भवति इस ईडय इति श्रुत।

१ ऋग्वेद, २ १२ ७

२ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द), २ १२ ७
अथ विद्युद्रूपाग्निविषयमाह। यस्य विद्युदाख्यस्य अश्वास व्याप्तिशीला वेगादयोगुणा प्रदिशि उपदिशि, यस्य गाव किरणा, यस्य ग्रामा मनुष्यनिवासा, यस्यविश्वे सर्वे रथास रमणसाधना य कारणाख्या विद्युदाग्नि सूर्य सवितृमण्डलम् य उषस प्रत्यूषकालम् जजान जनयति, य अपा जलाना नेता प्रापक, स जनास इन्द्र।

(क्लामभि) ग्लेपन और (ग्लाभि) रूप तथा ग्लानियों से (गुल्फान) दाहिनी और उदर म स्थित जो पदाथ उनको (हिराभि) बढतियो से (सुवन्ती) नदियों को (हृदान्) छोट बडे जलाशयों को (कुक्षिभ्याम) काखो से (समुद्रम) अच्छे प्रकार जहा जल जाता है। उन समु को (उदरेण) पेट और (भस्मना) जले हुए पदाथ को जो शेष भाग उस राख से (वैश्वानरम) सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो।

भाव यह है कि जो मनुष्य अनेक विद्या बोधों को प्राप्त होकर ठीक ठीक यथोचित आहार और विहारों से सब अंगों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवे।

हे (स्तोत) स्तुति करने हारे जन! जसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम) अति सुन्दर (तन्वम) विस्तारयुक्त शरीर को (वत) पवन के समान पाकर (यत) जिस कलायन्त्र रूपी घोडे और (अप) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे (एतन) इस (अश्वम) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोडे को (अनेन) उक्त बिजली रूप (पथा) माग म आप प्राप्त होते (पुन) फिर (न) हम लोगों को (आ वनयासि) भली भाँति बताते अमान इधर उधर ले जाते हो उन आपका हम लोग सत्कार करें।

भाव यह है कि हे मनुष्य! जो तुमको अच्छे माग से चलाते हैं, उनके सग से तुम लोग पवन और बिजली आदि की विद्या को प्राप्त होओ।[1]

मनुष्य वेद-मन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य का विद्युत् रूप अग्नि में होम करके उस मेघ मण्डल में पहुँचा कर, जल को शुद्ध करके सबके लिए बल को बढावे।[2]

जसे वायु से प्रेरित भूमि सम्बन्धी अग्नि और विद्युत् रूप अग्नि सूय लोक के तेज को बढाते हैं। जैसे दुधारू गौ के समान उषा वेला सब व्यवहारों के आरम्भ का हेतु है वसे सब लोग प्रयत्न पुरुषार्थ करें।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २३ ■
यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम ।
एत स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि न ॥

२ वही, २८ १
होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहा वेत्वाज्यस्य होतयज ॥

३ वही, २८ ६
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतयज ॥

मनुष्य सृष्टि के विद्युत् आदि पदार्थों को जानकर उन्हें प्रयुक्त करके कार्यों का सिद्ध करे।[1]

स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य में मरुत का व्यावहारिक अर्थ बताते हुए विद्वान अतिथि ऋत्विक, गृहस्थ, वायु, मनुष्य, विद्वान सेनापति, राजा, प्रजा आदि कई तरह से अर्थ किया गया है।

यजुर्वेद के दयानन्द भाष्य में गृहस्थों का कर्त्तव्य बताते हुए मरुत का विद्वान अतिथि व मरुत विद्वान अतिथि व ऋत्विक रूप में ऋत्विक अर्थ किया है।[2]

हम गृहस्थ लोग (करम्भेण) अविद्या के नाश से (सजोषस) समान रूप से सबसे प्रीति करने वाले (रिशादस) दोषों और शत्रुओं का नाश करने वाले (प्रघासिन) उत्तम भोजन करने वाले (मरुत) विद्वान अतिथियों को एवं ऋत्विजों को (हुवामहे) आमन्त्रित करते हैं। सभी गृहस्थियों को वक्ता, शूरवीरों, यज्ञकर्त्ता ऋत्विजों का बुला करके सेवा करके विद्या ग्रहण करनी चाहिए।

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में मरुत का विद्वान अर्थ लिया गया है।

हे (मरुत) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो! जो (ईदृक्षास) इस लक्षण से युक्त (एतादृक्षास) इस पहले कहे हुए के सदृश (सदृक्षास) पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले (प्रतिसदृक्षास) शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओं के सदृश हैं वे आप (न) हम लोगों को (सु आ, इतन) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (३) वा (मितास) परिमाणयुक्त जानने योग्य (संमितास) तुला के समान सत्य झूठ का पृथक्-पृथक् करने (च) और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (सभरस) अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हो वे (अद्य) आज (न) हम लोगों की रक्षा करें और उनका हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें।[3]

भाव यह है कि जब धार्मिक विद्वान जन कहीं मिलें जिनके समीप जावें पढ़ावें और शिक्षा देवें तब व उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हैं।

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३३.४५
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥

२ प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः करम्भेण सजोषसः।
वही, ३.४४

३ वही, १७.८४
ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः
सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥

हे राजन ! आप वैसे अपना बर्ताव कीजिए (यथा) जैसे (दवी) विद्वान जनों के व (विश) प्रजाजन (मरुत) ऋतु ऋतु मे यज्ञ कराने वाले विद्वान (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त राजा के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल मार्ग से चलने वाले (अभवन) होवें व जसे (मरुत) प्राण के समान प्यारे (देवी) शास्त्र जानने वाले दिव्य (विश) प्रजाजन (इन्द्रम) समस्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल आचरण करने हारे (अभवन) हों (एवम) ऐसे (दवी) शास्त्र पढे हुए (च) और (मानुषी) मूर्ख (च) ये दोनों (विश) प्रजाजन (इमम) इस (यजमानम) विद्या और अच्छी शिक्षा से सुख देने हारे सज्जन के (अनुवर्त्मानि) अनुकूल आचरण करने वाले (भवन्तु) हैं।[1]

इन मन्त्रों में मरुतों को 'सजोषस'[2] अर्थात समान रूप से सबसे प्रीति करने वाले 'रिशादस'[3] अर्थात दोषों और शत्रुओं का नाश करने वाले 'प्रघासिन'[4] अर्थात उत्तम भोजन करने वाले 'सदक्षास'[5] अर्थात पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले, 'प्रतिसदक्षास'[6] अर्थात शास्त्रों को पढे हुए सत्य बोलने वाले, 'मितास'[7] अर्थात्

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १७ ८६
इन्द्र दवीविशो मरुतो नुवर्त्मानो भवन् यथन्द्र दवीविशा मरुतानुवर्त्मानो भवन।
एवमिम यजमान दवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु।

२ तुल०—शुक्लयजुर्वेद संहिता (महीधर) ३ ४४, पृ० ५२
सजोपस समानप्रीतय।

३ वही, पृ० ५२
रिशादस रिशतिं साय। रिशा वरिकृता हिंसा दस्यति उपक्षयन्तीति रिशा-दस। दसु उपक्षये विवप। यद्वा रिशन्ति हिंसन्तीति रिशा। इगुपध—(पा० ३ १ १३५) इति क। रिशान हिंसकान दस्यन्तीति रिशादस। यद्वा रिशन्तीति रिशन्त। शकादिषुपरत्वादस। रिशतोस्यन्ति क्षिपन्ति ते रिशादस। अस्य तविच।

४ वही, १७ ८४ पृ० ३३४
प्रघासिन घस्लृ अन्न प्रकर्षेण घस्यते भक्ष्यते इति प्रघासा हविर्विशेष। स एषाम स्तीतितान प्रघासिन एतन्नामकान।

५ वही
सदक्षास समान दर्शना सर्व एव।

६ वही,
प्रतिसदक्षास प्रतिसमानदर्शना सर्व एवा।

७ तुल० —शुक्लयजुर्वेद संहिता (उवट), १७ ८४
मितास मित प्रमाणत सर्व एव।

परिमाण युक्त जानने योग्य, 'समितास'[1] अर्थात तुला के समान सत्य झूठ को पृथक्-पृथक् करने वाले 'समरस'[2] अर्थात अपने समान प्राणियो की पुष्टि पालना करने वाले, 'दैवी विश'[3] अर्थात विद्वान प्रजाजन आदि विशेषणो से विशेषित किया गया है।

यजुर्वेद के (३ ४६) मन्त्र मे मरुतो को 'मीढुष' अर्थात विद्या आदि उत्तम गुणो को सीचने वाले तथा हविष्मत अर्थात प्रशस्त हवि देने वाले ऋत्विक जन कहा गया है। उवट व महीधर ने इनकी व्याख्या मे लिखा है—'महत चित यस्य तव मीढुष। मिह सेचन सेक्तु वरुणस्य वपयितुर्वा। यध्या हविष्मनो मरुत। यवमयैं करम्भपात्रै हविष्मतो मरुत तव स्वभूता सजाता तदनुग्रहात इति उवट। तथा मीढुषो वृष्टिप्रदत्वेन सेक्तु। हविष्मतो हविर्योग्यस्य तव—इति महीधर।'[4]

स्वामी जी के अनुसार मन्त्र का व्याख्यान निम्न प्रकार किया गया है। हे (इन्द्र) शूरवीर का जगदीश्वर! आप (अत्र) इस ससार मे (पृत्सु) युद्धो मे (देवै) शूर विद्वानो के सहित (न) हमारी (सु) अच्छे प्रकार (रक्ष) रक्षा करो (मा) मत (हिस्म) हिंसा करो। हे (शुष्मिन) अनन्त बल ईश्वर एव पूर्ण बल वाले शूर! (हस) इस समय (यस्य) जिस (ते) आपकी (मह) महान (चि) वाणी (हि) निश्चय से इन (मीढुष) विद्या आदि उत्तम गुणो को सीचने वाले (हविष्मत) प्रशस्त हवि देने वाले (मरुत) ऋत्विक जनो की (वन्दत) स्तुति करती है एवम उनके सद्गुणो को प्रकाशित करती है। (चित) जैसे यह लोग आपकी सदा वन्दना करते हैं एवम अभिवादन करके आनन्दित करते हैं, वैसे ही जो (अवया) यजन करने वाला यजमान (अस्ति) है, वह आपकी आज्ञा से जिन (यव्या) यव आदि उत्तम हवियो को अग्नि मे (जुहोति) डालता है वे हवियाँ सब प्राणियो का सुख देती हैं।[5]

भाव यह है कि जब सब मनुष्य परमेश्वर की आराधना करके, अच्छे प्रकार

---

१ तु० —शुक्लयजुर्वेद सहिता (उवट) १७ ८४
सम्मितास सङ्गत्य मिता सव एव।

२ वही,
सभरस समानमलकारादिक बिभृत।

३ वही, (महीधर), १७ ८६, पृ० ३२५
दवी दैव्य देवानामिमा देवसबन्धिन्या विश प्रजा।

४ शुक्लयजुर्वेद सहिता ३ ४६, पृ० ५३

५ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३ ४६
भो ष ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवया।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गी॥

सामग्री को बनाकर युद्धो म शत्रुओ को जीत कर चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त कर तथा उसकी रक्षा करके महान आनन्द का सेवन करते हैं तब सुराज्य बनता है।

ऋत्विक जनों से शूरवीरो की उपमा दी गई है। मन्त्र म उपमायक चित्त पद प्रयुक्त हुआ है।

मरुत् सेनापति के रूप मे

स्वामी जी ने मरुत का प्रकरण के अनुसार सेनापति अर्थ भी प्रस्तुत किया है। मन्त्र का व्यावहारिक अर्थ करते हुए सेनापति क कर्त्तव्यो का भी निदश कर दिया गया है। उवट और महीधर भाष्यकारो न मरुत को यज्ञ यज्ञीय देवता मान कर ही व्याख्या की है।[1] स्वामी जी के द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिकमन्त्राथ इस प्रकार है—

हे (मरुत) सेनापतियो ! तुम (या) जो (असौ) यह (परेषा) शत्रुओ स (स्पर्द्धमाना) ईर्ष्या करने वाली सेना (ओजसा) बल से (न) हमे (अभि+आ+एति) सब ओर से प्राप्त होती है (ताम) उसे (अपव्रतेन) कठोर कर्म से एव (तमसा) अन्धकार अर्थात शतघ्नी आदि के धूम से वा मेघ और पर्वताकार अस्त्र आदि के धूम से (गूहत) आच्छादित करो। ये शत्रुसेना के लोग (यथा) जैसे (अन्यो अन्यम्) एक दूसरे को (न) न (जानन) जान सके वैसा पराक्रम करो।[2]

भाव यह है कि युद्ध के लिए आई शत्रु सेना जिससे आच्छादित हो जाय एसा सेनापति उपाय करें।

मरुत् मनुष्य रूप मे

स्वामी जी न कई मन्त्रो मे मरुत का वायु के समान क्रियाशील मनुष्य मनुष्य व मरणधर्मा मनुष्य अर्थ किया है तथा व्यावहारिक अर्थ मे मन्त्र की संगति लगाई है। हे (सरराणा) उत्तमदान करने वाले, (मरुत) वायु के समान क्रिया कुशल

१ शुक्लयजुर्वेद संहिता, १७ ४७ पृ० ३२४
उवट—असौ या। मारुती त्रिष्टुप। असौ या सेना हे मरुत, परेषा शत्रूणाम् अभि एति अभ्यागच्छति न अस्मा प्रति ओजसा बलेन स्पर्धमाना। यथामी अन्यो अन्य न जानन यथा अमी सनिका अन्योन्य परस्पर न जानीयु ॥
महीधर—मरुद्देवत्या त्रिष्टुप। हे मरुत या प्रसिद्ध असौ परेषा शत्रूणा सना नो स्मानभि आ एति अभ्यागच्छति। कीदृशी। बलेन स्पर्धमाना स्पर्धां कुर्वाणा ता सेना तमसा अन्धकारेण यूय गूहत संवृता कुरुत। तथा गूहत येनव्याप्तानां कम नश्यति तादृशेन तमसा गूहतेत्यर्थ ।

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७ ४७
असौ या सेना मरुत परेषामभ्यति न आजसा स्पर्धमाना।
ता गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्य न जानन ॥

मनुष्यो ! तुम (पवत) पवताकार (अश्मन) मेघ मे (शिश्रियाणाम) एव मेघ के अवयवो मे स्थित विद्युत् को तथा (ऊजम) पराक्रम को (न) हमारे लिए (अधिधत्त) धारण करो। और (अदभ्य) जलाशय, (ओषधिभ्य) यव (जौ) आदि औषधियो, (वनस्पतिभ्य) अश्वत्थ (=पीपला) आदि वनस्पतियो के लिए (सम्मतम) उत्तम रीति से धारण किए हुए (पय) रसीले जल, (इषम) अन्न तथा (ऊजम) पराक्रम और (ताम) उस विद्युत को (धत्त) धारण करो । हे मनुष्य ! (ते) तेरे (अश्मन) मेघ मण्डल मे जो (अक) पराक्रम का अन्न है वह (मयि) मुझ मे हो और जो (ते) तेरी (क्षुत) भूख है वह (मयि) मुझ मे हो और (यम) जिस दुष्ट को (वयम) हम (द्विष्म) प्रसन्न नही रखते हैं (तम) उसे (ते) तेरा (शुक) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो ।[1]

भाव यह है कि मनुष्य समान रूप से सुख-दुख का सेवन करने वाले मित्र बनकर पारस्परिक दुख का विनाश करें, सुख को सदा बढावें ।

हे (मरुत) मनुष्यो ! जो (शतक्रतु) असख्य कर्मों वाला सेनापति (शतपवणा) असख्य जीवो के पालन के निमित्त (वज्रेण) शस्त्र अस्त्र विशेष से जैसे (वृत्रहा) वत्र को मारने वाला सूय (वत्रम्) मेघ का हनन करता है—वैसे (बहत, इन्द्राय परम् ऐश्वय के लिए शत्रुओ का (हनति) हनन करता है (व) तुम्हारे लिए (ब्रह्म) धन व अन्न को प्राप्त कराता है, उसका तुम (प्राचत) सत्कार करो ।

भाव यह है कि हे मनुष्यो ! जो जैसे सूय मेघ का हनन करता है वसे शत्रुओ का हनन करके तुम्हारे लिए ऐश्वय को बढाते हैं, उनका सत्कार करो । मन्त्र मे उपमा वाचक इव आदि पद लुप्त होने के कारण वाचक लुप्तोपमा अलकार है । जैसे सूय मेघ का हनन करता है वैसे सेनापति शत्रुओ का हनन करे ।[2]

उवट और महीधर ने इस स्थल पर भी यज्ञ परक अर्थ प्रस्तुत करते हुए मरुत को याज्ञिक देवता ही स्वीकार किया है ।[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), १७ १
अश्मन्नूर्जं पवते शिश्रियाणामदभ्य ओषधीभ्यो
वनस्पतिभ्यो अधिसभृत पय ।
ता न इषमूर्ज धत्तमरुत स रराणा अश्मस्त
क्षुन् मयि त ऊय द्विष्मस्त वे शुगृच्छतु ॥

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ३३ ९६
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्माचत ।
वत्र हनति वृत्रहा शतक्रतुवज्रेण शतपवणा ॥

३ शुक्लयजुर्वेद सहिता, ३३ ९६, पृ० ५५९
उवट—प्र व प्रथमा बहुवचनस्य व आदेश, प्राचत प्रोच्चारयत व यूयम् स्तुती । इन्द्राय बृहते महते हे मरुत, ब्रह्म त्रयीलक्षणा किमितिचेत् । वृत्र हनति । हन्तीति

हे (मरुत) मरण धर्म वाले मनुष्यो! (मादायस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदार चित्त वाले (मान्यस्य) सत्कार के योग्य (कारो) पुरुषार्थी कारीगर का (एष) यह (स्तोम) प्रशंसा और (इयं) यह (गी) वाणी (व) तुम्हारे लिये उपयोगी होने तुम लोग (इषा) इच्छा व अन्न के निमित्त से (वयाम) अवस्था वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरादि की रक्षा के लिए (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (जीरदानुम) जीवन के हेतु (इषम) विज्ञान व अन्न तथा (वृजनम) दुःखों के वर्जने वाले बल को (विद्याम) प्राप्त हों। भाव यह है कि मनुष्यों को चाहिए कि सदैव प्रशसनीय कर्मों का सेवन और शिल्प विद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन बल और ऐश्वर्य को प्राप्त हों।[1]

हे मनुष्यो! तुमको (मरुताम) मनुष्यों के (स्कन्धा) कन्धा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर शिक्षावर्द्धक (रुद्राणाम) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताडनरूप क्रिया (वायो) पवन सम्बन्धी (पुच्छम) पशु की पूछ अर्थात जिससे पशु अपने शरीर का पवन देता (अग्नि षोमयो) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवे व (कुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम) श्रोणियों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (उरुभ्याम) जाघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम) परिपूर्ण चलन वाले प्राणियों से (आक्रमणम) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निवाड और (स्थूराभ्याम) स्थूल पदार्थों से (बलम) बल का सिद्ध करना चाहिए। भाव यह है कि मनुष्यों को भुजाओं का बल, अपने अंग की पुष्टि, दुष्टों को ताडना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहिए।[2]

प्राप्नोति शत श्रवणम्। वृत्रहा वत्रवधप्रवीण शतक्रतु बहुकर्मा वज्रेण शतपर्वणा शतप्रधिना।

महीधर—हे मरुत वा युष्माकं स्वामिने इन्द्राय यूय ब्रह्म वेद सामरूपस्तोत्र प्राचत प्रोच्चारयत। कीदृशाये न्द्राय। बृहते महते। तथा वृत्रहा वृत्रस्यासुरस्य पाप्मनो वा हन्तेन्द्रो वृत्र हनति हन्ते। बहुलं छन्दसि (पा० २ ४ ७३) इति शपो लुगभाव कत्र वज्रेण स्वायुधेन। कीदृशेन वज्रेण। शतपर्वणा शतसङ्ख्यानि पर्वाणि धारा प्रयो वा यस्य स शतपर्वा तेन। कीदृशो वृत्रहा। शतक्रतु शत क्रतवो यस्य बहुकर्मा बहुप्रज्ञो वा।

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) ३४ ४८
एष व स्तोमो मरुत इय गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो।
एषा यासीष्ट तन्वे वया विद्यामेष वृजन जीरदानुम॥

२. वही २५ ६
मरुता स्कन्धा विश्वषा देवाना प्रथमा कीकसा रुद्राणा द्वितीयादित्याना तृतीया वायो पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्रा बृहस्पती उरुभ्याम मित्रा-वरुणावल्गाभ्यामाक्रमण स्थूराभ्या बल कुष्ठाभ्याम॥

शुक्लयजुर्वेद के एक मन्त्र में स्वामी दयानन्द जी ने इन्द्र का व्यावहारिक अर्थ विद्युत और मरुत का व्यावहारिक अर्थ मनुष्य किया है। हे (देव) उत्तम विद्या वाले (रथ) रमणीय स्वरूप विद्वन्![1] (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान को (जुषाण) सेवते हुए (स) पूर्वोक्त आप जो (इन्द्रस्य) बिजली का (वज्र) गिरना (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना (मित्रस्य) मित्र के (गर्भ) अन्तःकरण का आशय और (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (नाभि) आत्मा का मध्यवर्ती विचार है उसको (न) और हमको (हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का (प्रति गृभाय) प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिए।[1]

उवट और महीधर ने इस मन्त्र का आधियाज्ञिक अर्थ ही किया है। इन्द्र और मरुत को याज्ञिक देवता के रूप में स्वीकार किया गया है तथा हवि प्रदान की गई है।[2]

मरुत वायु रूप में

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः
पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट
ऊरावासन्नो विष्णुर्नरंधिषः ॥[3]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) २९.५४
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकम्
मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो
देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥

२ शुक्लयजुर्वेद संहिता, २९.५४, पृ० ५१७
उवट—इन्द्रस्य वज्रः। यस्त्वम् इन्द्रस्य वज्रः असि मरुतां च अनीकं मुखमसि मित्रस्य च गर्भोऽसि वरुणस्य च नाभिरसि। स त्वम् इमाम् नः अस्माकम्। हव्यदातिम् हविषो दानम् जुषाणः सेवमानः। हे देवरथ, प्रतिहव्यागृभाय प्रतिगृभाय प्रतिगृहाण हव्यानि हवींषि।
महीधर—हे रथ हे देव, स त्वं हव्या हवींषि प्रतिगृभाय प्रतिगृहाण। कीदृशस्त्वम्। इन्द्रस्य वज्रः वज्रोत्पन्नत्वात्। मरुतामनीकं मुखं मुख्यं देवानां जयप्रापकत्वात्। मित्रस्य देवस्य गर्भः गीयते स्तूयते गर्भः। गृणातेर्भप्रत्ययः। सूर्येण स्तूयमानः। वरुणस्य नाभिः नह्यते स्निह्यते अनेनेति नाभिः नह बन्धने इञ्प्रत्ययः। वरुणस्य हननसाधनम्। नः अस्माकमिमाम् हव्यदातिं हविषो दानम् जुषाणः सेवमानः।

३ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), ८.५५

इस मन्त्र में महीधर ने तो इन्द्र और मरुत का आधिभौतिक दृष्टि से अर्थ किया है। इन्द्र के लिए और मरुतों के लिए स्वाहा करके आहुति देने का व्याख्यान किया है।[1] स्वामी दयानन्द जी ने व्यावहारिक अर्थ करते हुए इन्द्र का विद्युत और मरुत का वायु अर्थ किया है।

हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वानों (न्याय) व्यवहार सिद्धि के लिए (इन्द्र) बिजली (च) और (मरुत) वायु (च) और (असुर) मेघ (ण्यमान) स्तुति के योग्य (मित्र) सखा (शिपिविष्ट) समस्त पदार्थों में प्रविष्ट (विष्णु) सर्वशरीर व्याप्त धनञ्जय वायु और इनमें में एक एक पदार्थ (नरंधिष) मनुष्यादि के आत्माओं में साक्षी (विष्णु) हिरण्यगर्भ ईश्वर (क्रूरो) उत्पन्न आदि क्रियाओं में (आसन्न) सन्निकट था (उत्पादित) समीप में प्रकाशित के समान और जो (श्रीन) व्यवहार में वरता हुआ पदार्थ है इन सबको जानो।

भाव यह है कि मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वर से प्रकाशित अग्नि आदि पदार्थों की क्रिया कुशलता से उपयोग लेकर गार्हस्थ्य व्यवहारों को सिद्ध करें।

एक मन्त्र में मरुत का वायु अर्थ लेकर स्त्री-पुरुषों के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। स्त्री ! जैसे (स्वराट) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है। वैसे (त) तेरा पति हो। जिस दिशा के (मरुत) वायु (देवा) दिव्य सुख प्रदान करने वाले (अधिपतय) अधिपति हैं उसके समान जो (एकविंश) इक्कीसवां (स्तोम) स्तुति का साधक (साम) चन्द्र तथा (हृतीनाम) वज्र के समान वर्तमान किरणों को (प्रति धर्त्ता) धारण करने वाला पुरुष (त्वा) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर (श्रयतु) सेवा करे। (अन्यथा) इन्द्रिय भय के अभाव के लिए (निष्केवल्यम) सदा केवल स्वरूप वालों में श्रेष्ठ (उक्थम) उपदेश का (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (वैराजम) विराट के प्रतिपादक (साम) साम प्राप्त कर्म का (स्तभ्नातु) ग्रहण करे।

जैसे (ते) तेरे (अन्तरिक्ष) आकाश में स्थित (देवेषु) दान के साधनों में (प्रथमजा) प्रथमाविस्तृत कारण में उत्पन्न (दिव) प्रकाश के (मात्रया) भाग के (वरिम्णा) बाहुल्य से युक्त (ऋषभ) बलवान प्राण है, वैसे यही इह (विधर्त्ता) विविध रूप में धारण करने वाला (अधिपति) अधिष्ठाता है, उस विषय में (ते) वे सब (संविदाना) सम्यक प्रतिज्ञा करने वाले विद्वान (त्वा) तुझे (प्रथन्तु) उपदेश करें और (नाकस्य) दुःख रहित आकाश के (पृष्ठ) सेचक भाग में एवम (स्वर्ग) सुखकारक (लोक) विमान में (त्वा) मुझे (यजमानम) इन विद्या के दाता को (सादयतु) स्थापित करें।[2]

---

१ यजुर्वेदभाष्य (महीधर) ८ ५५ पृ० १५१।

२ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) १४ १३

स्वराडस्युदीची दिङ मरुतस्ते देवा अधिपतय

इस पञ्चम अध्याय मे स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य को दृष्टिगत रखते हुए 'इन्द्र एव 'मरुत' के व्यावहारिक स्वरूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे 'इन्द्र' व 'मरुत' के अनेक रूपो तथा उनकी विशेषताओ का स्पष्ट विवरण उपलब्ध होता है। योगी, विद्वान, आचार्य उपदेशक आदि ही समाज का सचालन करने वाले होते हैं। समाज की उत्तम मर्यादाओ का निर्माण भी इन्ही से होता है। श्रीमदगीता के अनुसार भी श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है लोग भी वैसा आचरण करते हैं। वह श्रेष्ठ जैसा प्रमाण स्थापित करता है वैसा ही दूसरे लोग मानते हैं।[1] इसीलिए इन्हें समाज का प्राण कहा जाता है। द्वितीय वर्ग समाज व देश के शासको, व्यवस्थापको एव न्याय सरक्षको का है। राजा सेनाध्यक्ष, सेनापति राजपुरुष, सभाध्यक्ष सभापति आदि इसी वर्ग मे आते हैं। इन्द्र' व मरुत' के अभिप्रायो मे इन सभी तत्त्वो का समावेश है। इनके अतिरिक्त इन्द्र पद म वायु, विद्युत सूर्य तथा मरुत से वायु आदि अर्थों का भी स्पष्ट रूप से प्रयोग किया गया है।

इन्द्र एव 'मरुत शब्द के विभिन्न प्रकार के जितने भी व्यावहारिक अर्थ स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेदभाष्य म प्रस्तुत किये हैं वे सब वदिक शब्दो की यौगिकता के आधार पर ही किए गए हैं। स्वामी जी ने सवत्र वैदिक शब्दो की यौगिकता के सिद्धान्त को खुले रूप से स्वीकार किया है तथा तदनुसार अपना मौलिक भाष्य प्रस्तुत किया है। शब्दो की निरुक्ति के आधार भूत प्रकृति प्रत्यय को ध्यान मे रख कर मूल अर्थ पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है तथा समाजापयोगी व्यावहारिक अर्थों की उद्भावना की गई है।

यद्यपि अनेक स्थलो पर दयानन्द भाष्य भी अव्यवस्थित सा तथा दूरान्वय दोष से युक्त प्रतीत होता है। विशेष रूप से हिन्दी पदार्थ म तो दोनो दोष स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। संस्कृत पदार्थ तो इन दोषो से प्राय रहित हैं। संस्कृत पदार्थ मे शब्दो की यौगिकता का पूर्ण प्रदर्शन भी मिलता है। हिन्दी पदार्थ मे तो संस्कृत पदार्थ की विषय वस्तु भी अपूर्ण रूप मे मिलती है।

सोमो हेतीना प्रतिधर्तैकवि शस्त्वा स्तोम
पृथिव्या श्रयतु निष्केवल्य मुक्थमव्यथायै
स्तभ्नातु वैराज साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवोमात्रया
वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते
त्वा सर्वे सविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे
लोके यजमान च सादयन्तु।

१ श्रीमदभगवद्गीता ३ २१
यद् यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।
स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

सम्भव है इसका कारण पण्डितों द्वारा संस्कृत पदार्थ से हिन्दी पदार्थ बनाते हुए कुछ भूलें रह गई हों। यह सब न्यूनता होते हुए भी स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य का अपूर्व योगदान यह है कि इस असाधारण वेद भाष्य के द्वारा वेद-व्याख्या को एक सर्वथा नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। वैदिक मन्त्रों का अर्थ नवीन पद्धति से नवीन दिशा में करने की नई परिपाटी का प्रचलन हुआ। वेदों को गडरियों का गीत कह कर उपेक्षित करने के स्थान पर वेदों के असाधारण महत्त्व को गौरवपूर्ण आधार मिला। याज्ञिक व्याख्याकार जिन मन्त्रांशों और मन्त्रों का प्रयोग व सम्बन्ध यज्ञों व यज्ञांगों में ही करते थे उनका स्वामी जी ने समाजोपयोगी व्यावहारिक अर्थ प्रस्तुत करके सबको चमत्कृत कर दिया। इसी दृष्टि से 'इन्द्र' एवं 'मरुत्' का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। भावी वेद विद्वानों व वेद व्याख्याकारों का पवित्र कर्तव्य है कि स्वामी जी के द्वारा दिखाई गई दिशा में आगे बढ़ते हुए मित्र, वरुण विष्णु आदि वैदिक शब्दों के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक स्वरूपों को दृष्टिगत रखते हुए समाजोपयोगी कल्याणकारी वेदार्थ को प्रस्तुत करें। जिससे जन सामान्य भी वैदिक ज्ञान से लाभान्वित हो सके।

षष्ठ अध्याय

'इन्द्र' एव 'मरुत्' से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दु

प्रस्तुत अध्याय म श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का अभिप्राय वृत्र वध के प्रसग मे इन्द्र की पारमार्थिक एव व्यावहारिक सगति का स्पष्ट किया गया है। साथ ही असुर, दस्यु, अनार्य, अहि इत्यादि शब्दो का अर्थ विवेचन करते हुए तत् प्रसग मे इन्द्र शब्द के अभिप्राय की सगति भी लगाई गई है।

(क) श्री अरविन्द के अनुसार 'इन्द्र' एव 'मरुत्' का अभिप्राय

श्री अरविन्द ने वेद रहस्य नामक ग्रन्थ मे इन्द्र को दिव्य प्रकाश का प्रदाता कहा है। इन्द्र नाम स सूचित तत्त्व एक मन शक्ति है जो प्राणमय चेतना की सीमितताओ से मुक्त है। वह प्रकाशमयी प्रज्ञा है जो विचार या क्रिया के उन सत्यो और पूर्णरूपो को निर्मित करती है जो प्राण के आवेगो से विकृत नही होत। इन्द्र दिव्य प्रकाश को प्रदान करने वाला है। इन्द्र प्रकाश स्वरूप है। इन्द्र का आवाहन भी इसी लिए किया जाता है कि इन्द्र दिव्य प्रकाश को बढाए। इन्द्र आकर अमरता के रस सोम का पान करके अमरता की भावना उत्पन्न कर। उसमे बल, आनन्द व प्रकाश की वृद्धि हो। इसस उत्पन्न आन्तरिक ज्ञान स आध्यात्मिक यात्रा म माग की आच्छादक वृत्ररूप शक्तियाँ नष्ट हो जाएँ।[1]

श्री अरविन्द आधुनिक युग के मनीषी एव वेद विचारक हैं। इन्होन वेद मन्त्रो की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की। बाह्य ब्रह्माण्डगत तथा आन्तरिक पिण्डगत—इन दोनो दृष्टियो स इन्होने इन्द्र, मरुत, अग्नि, सोम, वरुण आदि वैदिक देवताओ का विवेचन किया। आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते हुए इन्द्र को सक्रिय गतिशील मन कहा गया है।[2] इन्द्र ही दिव्य मन है व मानसिक शक्ति का देवता है। वह ही चेतना का अधिपति पुरुष, परम प्रज्ञा है।[3] उसे ही प्रकाशमय मन का अधिपति कहा है। इन्द्र ही दिव्य मन की शक्ति है। इन्द्र जीवात्मा रूप म मानव शरीर

---

१ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध), पृ० ३१

२ वेद रहस्य (पूर्वार्द्ध), पृ० २५५

३ वही, पृ० ३६६

म चेतना का अधिपति है।[1] इन्द्र को शरीर पुरुष व जीवात्मा सिद्ध किया है। शरीर मे विद्यमान अहङ्कार, प्राण मन व वाणी भी इन्द्र पद वाच्य है।[2]

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥[3]

(सुरूपकृत्नुम्) जो सुन्दर रूपो का निर्माता है। (गोदुहे सुदुघामिव) और जो गो दोहक के लिए खूब दूध देने वाली गौ के समान है उस (इन्द्र) को (ऊतये) वृद्धि के लिए (द्यवि द्यवि) दिन प्रतिदिन (जुहूमसि) हम पुकारते हैं।

उप न सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब।
गोदा इद् रेवतो मद ॥[4]

(न सवना उप आगहि) हमारी सोमरस की हवियों के पास आ। (सोमपा) हे सोमरसा के पीने वाले। (सोमस्य पिब) तू सोमरस का पान कर, (रेवत मद) तेरे दिव्य आनन्द का मद (गोदा इत्) सचमुच प्रकाश को देने वाला है।

अथा ते अन्तमाना विद्याम सुमतीनाम।
मानो अति ख्य आ गहि ॥[5]

(अथ) तब अर्थात तेरे सोम पान के पश्चात (त अन्तमाना सुमतीनाम) तेरे चरम सुविचारो म से कुछ को (विद्याम) हम जान पावें। (मा न अति ख्य) उनको हम अति क्रमण करके मत दर्शा (आगहि) आ।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुव ॥[6]

(उतनिद न ब्रुवन्तु) और हमारे अवरोधक भी हम कह कि नहीं, (इन्द्रे इत दुव दधाना) इन्द्र मे अपनी क्रिया शीलता को निहित करते हुए तुम (अन्यत चित् नि आरत) अन्य क्षेत्रो मे भी निकल कर आगे बढते जाओ।

---

१ वेद रहस्य, पृ० ३५४
२ (क) प्राण एवेन्द्र
शतपथ ब्राह्मण, ६ १ २ २८, २ ६ १ १४
(ख) मन एवेन्द्र
वही १२ ९ १ १३
३ ऋग्वेद, १ ४ १
४ वही, १ ४ २
५ वही १ ४ ३
६ वही, १ ४ ५

इन मन्त्रों में महर्षि अरविन्द अनुसारी अर्थ की सायणानुसारी अर्थ तुलना करने पर दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। जहाँ अरविन्द आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं वहाँ सायण ने केवल आधियाज्ञिक अर्थ ही प्रस्तुत किया है।[1]

इनमें विश्वामित्र का पुत्र मधुच्छन्दस ऋषि इन्द्र का आवाहन करता है। उसने सोम रस की हवि लेकर प्रकाश में वृद्धि के लिए ही इन्द्र का आवाहन किया है। श्री अरविन्द के अनुसार मन्त्रों में प्रयुक्त प्रतीक सामुदायिक यज्ञ के प्रतीक हैं। इन्द्र सोम का पान करे। सोम से अभिप्राय है अमरता का रस। सोमपान के द्वारा बल एवम् आनन्द में वृद्धि हो तथा प्रकाश का उदय हो। पूर्ण प्रकाश होने में सम्पूर्ण अन्धकार मय बाधाएं हट जाएंगी।

महर्षि अरविन्द के शब्दों में इन मन्त्रों में आगे उन फलों का वर्णन किया गया है जिन्हें पाने की ऋषि अभीप्सा करता है। इस पूर्णतर प्रकाश के हो जाने से, जो कि मानसिक ज्ञान के अन्तिम रूपों के आ जाने पर खुलकर प्रकट हो जाता है, यह होगा कि बाधा की शक्तियाँ असन्तुष्ट हो जायेंगी तथा स्वयमेव आगे से हट जाएंगी व और अधिक उन्नति तथा नवीन प्रकाशपूर्ण प्रगतियों को आने के लिए रास्ता दे देंगी। फलतः वे कहेंगी कि लो, अब तुम्हें वह अधिकार दिया जाता है जिस अधिकार को अब तक हम उचित तौर से ही तुम्हें नहीं दे रही थीं। तो अब न केवल उन क्षेत्रों में जिन्हें तुम पहले ही जीत चुके हो बल्कि अन्य क्षेत्रों में तथा अछूते पड़े प्रदेशों में

---

1 वेदरहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० २४, २५, २८

(सुरूपकृत्नुम्) शोभनरूप वाले कर्मों के कर्ता इन्द्र को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हम बुलाते हैं (गोदुहे सुदुघाम् इव) जैसे गौ दोहक के लिए सुष्ठु दोग्ध्री गाय को कोई बुलाया करता है। (सोमपा) हे सोमपान करने वाले इन्द्र! (नः सवना उप आगहि) तू हमारे तीन सवनों में आ, और (सोमस्यपिबपिब) सोम को पी (रेवत मदः) तुझ धनवान् की प्रसन्नता (गोदा इत्) सचमुच गौओं का देने वाली है अर्थात् जब तू हमसे प्रसन्न हो जाता है तब निश्चय ही हमें बहुत सी गौएँ देता है।

(अथ) उस तेरे सोम-पान के अनन्तर (ते अन्तमानां सुमतीनाम्) जो तेरे अत्यन्त समीप हैं ऐसे सुमतियुक्त पुरुषों के मध्य में स्थित होकर (विद्याम) हम तुझे जान लें। (न अति मा ख्य) तू हमें अतिक्रमण करके अन्यों को अपने स्वरूप का कथन मत कर, किन्तु (आगहि) हमारे पास ही आ।

(न) हमारे ऋत्विज् (ब्रुवन्तु) कहें अर्थात् इन्द्र की स्तुति करें (उत) और साथ ही (निदः) ओ निन्दा करने वाले पुरुषों तुम यहाँ से तथा (अन्यत चित्) अन्य स्थान से भी (निः आरत) बाहर निकल जाओ, हमारे ऋत्विज (इन्द्रे इत् दुवः दधाना) इन्द्र की सदैव परिचर्या करने वाले हों।

अपनी विजयशील यात्रा को जारी करो। अपनी यह क्रिया पूर्ण रूप से दिव्य प्रज्ञा को समर्पित करो, न कि अपनी निम्न शक्तियों को। क्योंकि यह महत्तर समर्पण ही है जो तुम्हें महत्तर अधिकार प्रदान करता है।[1]

एक मन्त्र में स्वर्ग के अधिपति इन्द्र की सर्वोच्चता घोषित की गई है।[2] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (सहीयस) वृद्धिगत बलशाली (नन) शक्तियों को (पाहि) रक्षा कर (मरुद्भिः अवयात हेळा भव) मरुतों के प्रति जो तेरा क्रोध है उसे दूर कर दे, (सार्सहि) आ तू शक्ति में परिपूर्ण (सु प्रकेतेभिः) सत्यज्ञान से युक्त उन (मरुतों के द्वारा (दधान) धारण किया हुआ है। हम (वृजनम् इषं विद्याम) उस प्रबल प्रेरणा को प्राप्त कर लें (जीरदानुम्) जो कि वेगपूर्वक बाधाओं को छिन्न भिन्न कर देने वाली है।[3]

एक मन्त्र में इन्द्र को सैकड़ों क्रियाओं वाला कहा गया है।[4] हे सैकड़ों क्रियाओं वाले (शतक्रतो) ! इस सोम रस का पान करके तू आवरण कर्त्ताओं का वध कर डालने वाला हो गया है (वृत्राणां घ्न अभव) और तूने समृद्ध मन को (वाजिनम्) उसकी समृद्धियों में (वाजेषु) रक्षित किया है।[5]

महर्षि अरविन्द ने इन्द्र और अगस्त्य के संवाद के उत्तरवर्ती सूक्त में मरुतों के आध्यात्मिक व्यापार को निश्चित रूप से प्रकट किया है।

> प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम्।
> रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान्॥[6]

(वः प्रति) तुम्हारे प्रति (एना नमसा) इस नमन के साथ (अहं एमि) मैं आता हूँ, (सूक्तेन) पूर्ण शब्द के द्वारा (तुराणाम्) उनसे जो कि यात्रातिक्रमण में तीव्रगति वाले हैं (सुमतिं भिक्षे) मैं सत्य मनोवृत्ति की याचना करता हूँ। (मरुत) हे मरुतो !

---

१ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० ३३

२ ऋग्वेद १।१७१।६

त्वं पाही न्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥

३ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० ३८

४ ऋग्वेद, १।४।८

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥

५ वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध) पृ० २५

६ ऋग्वेद, १।१७१।१

(वेद्याभि रराणत) ज्ञान की वस्तुओं में आनन्द लो, (हेळ) अपने क्रोध को (निधत्त) एक तरफ रख दो, (अश्वान) अपने घोड़ों को (विमुचध्वम्) खोल दो।[1]

(मरुत) हे मरुतो! (एष व स्तोम) देखो, यह तुम्हारा स्तोत्र है (नमस्वान) यह मेरे नमन से परिपूर्ण है (हृदा तष्ट) यह हृदय द्वारा रचा गया था (देवा) हे देवो! (मनसा धायि) यह मन द्वारा धारण किया गया था, (इमा उपयात) इन मेरे वचनों के पास पहुँचो (मनसा जुषाणा) और इन्हें मन द्वारा सेवित करो (हि) क्योंकि (यूयम) तुम (नमस) नमन के (इद्) निश्चयपूर्वक (वृधास स्था) बढ़ाने वाले हो।[2]

(स्तुतास मरुत) स्तुति किये हुए मरुत (न मलयन्तु) हमें सुख प्रद हों (उत स्तुत मघवा) स्तुति किया हुआ ऐश्वर्य का अधिपति इन्द्र तो (शभविष्ठ) पूर्णतया सुख का रचयिता हो गया है। (न काम्या वनानि) हमारे वाछनीय आनन्द (ऊर्ध्वा सन्तु) ऊपर की ओर उत्थित हो जाए (मरुत) हे मरुतो! (विश्वा अहानि) हमारे सब दिन (जिगीषा) विजयेच्छा के द्वारा (ऊर्ध्वा सन्तु) ऊपर की ओर उत्थित हो जाए।[3]

मरुत तात्त्विक दृष्टि से विचार के देवता नहीं हैं। वे शक्ति के देवता हैं। किन्तु मरुतों की शक्तियाँ मन के अन्दर ही सफल होती हैं। साधारण रूप से इन्हें मरुत, वायु, आंधी और वर्षा की शक्ति के रूप में माना गया है। मरुत आंधी तूफान के द्योतक हैं। ये वर्षा को, जलों को नीचे भेजते हैं। सत्य के सखा व प्रकाश के रचयिता होने के नाते इनसे प्रार्थना की गई है कि सत्य के तेजोमय बल से युक्त मरुतो! अपनी शक्तिशालिता से तुम उसे अभिव्यक्त कर दो, अपने विद्युद् वज्र से राक्षस को विद्ध कर दो। आवरण डालने वाले अंधकार को छिपा दो, प्रत्येक भक्षक को दूर हटा दो, उस प्रकाश को रच दो जिसे हम चाहे रहे हैं।

महर्षि अरविन्द ने समाधि की अवस्था में प्राप्त अपने व्यक्तिगत अनुभवों को दृष्टिगत रखते हुए वेदों के वर्षों के गहन अध्ययन के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि वेद गूढ़ भाषा में है और उनमें आर्य ऋषियों के अलौकिक अन्तर्दृष्टि से अनुभूत शाश्वत सत्यों का वर्णन है। वैदिक मन्त्रों के अर्थ यदि गूढ़ रहस्य से भरे न होते तो

---

1 वेद रहस्य (उत्तरार्द्ध), पृ० ३६

२ ऋग्वेद, १.१७१.२
एष व स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा
तष्टो मनसा धायि देवा।
उपमा यात मनसा जुषाणा
यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधास ॥

३ वही, १.१७१.३
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शभविष्ठ।
ऊर्ध्वा न सन्तु काम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा॥

परवर्ती लौकिक साहित्य में अगाध व अनन्त ज्ञान के स्रोत के रूप में वेदों की प्रतिष्ठा न हो पाती। वास्तव में वैदिक ऋषियों ने मनोवैज्ञानिक विचारों को द्वयर्थक भाषा का आवरण पहना दिया, जिसका एक अर्थ से संसार के भौतिक तत्त्वों जल, अग्नि आदि से सम्बन्ध रखता था और दूसरा अर्थ आध्यात्मिक उच्चता का स्पर्श करता था।

श्री अरविन्द के अनुसार

श्री अरविन्द के मतानुसार वायु देवता प्राण शक्तियों का अधिपति है। वह जीवन दाता है तथा जीवन शक्ति से सम्बन्धित है। यह मनुष्य को कार्य करने में सदैव योगदान देता है।[1] प्राचीन रहस्यवादी ऋषियों के अनुसार जीवन तत्त्व एक महान् शक्ति है जो सम्पूर्ण भौतिक जगत् में व्याप्त है तथा सभी चेष्टाओं का कारण है। ऋग्वेद में जिन सूक्तों में इसका मुख्य रूप से आह्वान मिलता है उनमें एकाकी रूप में इसका आह्वान नहीं है अपितु अन्यों का भी उल्लेख किया गया है। विशेष रूप से इसे इन्द्र से सम्बन्धित किया गया है।[2] मानव के लिए वायु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राण का मन के साथ मिलन भी इसकी सहायता से होता है। प्राण मन के उद्भव व विकास में साहाय्य प्रदान करता है। इसीलिए वायु को प्राण का अधिपति और इन्द्र को मन का अधिपति कहा जाता है।[3] वायु को इन्द्र के साथ सोमपान के लिए बुलाया गया है। वायु और इन्द्र सम्मिलित रूप में प्रकाशमान शक्ति के दो देवताओं के रूप में पुकारे गये हैं।[4]

वायु और इन्द्र दोनों एक साथ रथ में बैठकर उस सोम रस का आनन्द पूर्वक पान करते हैं जो अपने साथ देवत्व प्रदान करने वाली शक्तियों को लाता है क्योंकि वायु के विषय में कहा गया है कि वह सर्वप्रथम सोम का पान करता है।[5] ऋग्वेद के ही एक अन्य मन्त्र में दोनों को विचार के देवता के रूप में आह्वान किया गया है।[6]

---

१ अरविन्दोज वैदिक ग्लासरी पृ० ८२ ८३
२ वेद रहस्य द्वितीय खण्ड पृ० ६८
३ वही पृ० ६६
४ ऋग्वेद, ४ ४७ ३
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।
५ वही ४ ४६ १
अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु।
त्वं हि पूर्वपा असि॥
६ वही १ २३ ३
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये।
सहस्राक्षा धियस्पती।

वायु को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि वह सुखकर प्रकाश के रथ में आरूढ़ होकर अमृत कारक रस का पीने के लिए आए। रथ शक्ति की गति का द्योतक है। इस रथ में नियुक्त होने वाले घोड़े नियुक्त कहे जाते हैं। वे क्रियावान गतियों के प्रतीक हैं। वायु के घोड़े इन्द्र के द्वारा हांके जाते हैं। अभिप्राय यह है कि प्राणमय शक्ति के देव की गतियाँ मन के द्वारा ही परिचालित होती हैं।[२]

(ख) वृत्र-वध के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक संगति

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर वृत्र' शब्द को आत्मा पर अज्ञान और अविद्या का आवरण डालने वाली आसुरी वृत्तियाँ और पाप भावना कहा गया है। सायण के अनुसार 'वृत्रहा' का अर्थ 'पाप का हनन करने वाला' और 'वृत्र' का अर्थ 'पाप' है।[३] उवट व महीधर ने भी 'वृत्रहणम्' का अर्थ पाप का हनन करने वाला किया है।[४] यजुर्वेद में इन्द्र और अग्नि के विशेषण के रूप में वृत्रहन्तमौ पद में आए वृत्र का अर्थ महीधर के अनुसार आवरण डालने वाले पापों के हनन करने वाले किया गया है।[५] उवट और महीधर वृत्र का अर्थ शत्रु भी करते हैं।[६] आधिदैविक स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए यास्क ने वृत्र को मेघ कहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यास्क ने वृत्र को त्वष्टा का असुर पुत्र माना है।[७] वृत्र के जल पर सोने का और जलों को घेरे हुए पड़े रहने का वर्णन भी मिलता है। वृत्र नदियों का आवरक था।[८] जब इन्द्र के द्वारा जलों को प्रवाहित किया गया था तब वृत्र पर्वत की चोटियों पर विद्यमान था। इन्द्र ने वृत्र को पर्वत की चोटियों से गिराया और पर्वत के अन्दर घिरी हुई गायों

१ ऋग्वेद ४.४८.२
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये।
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः।
२ तुल—वेदरहस्य, द्वितीय खण्ड, पृ० १०२-१०३
३ ऋग्वेद, २.१.११
वृत्रहा पापादेर्हन्ता।
४ यजुर्वेद ११.३३
पाप्मनो हन्तारम्।
५ वही ३३.७६
वृत्राणाम् आवरकाणां पाप्मनां हन्तृतमौ।
६ यजुर्वेद (उवट, महीधर), २७.३७
७ निरुक्त, २.१६
तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः।
त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः।
८ ऋग्वेद, १.५२.६, २.१४.२ व ८.१२.२६

को स्वतन्त्र कर दिया ।[1] इन्द्र के विशेषण के रूप मे वत्रसुर, वत्रतुय, वृत्रहन्ता, वृत्रहन्य, वत्रहन्तम आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है ।[2] वत्र शब्द यजुर्वेद म अनेक बार प्रयुक्त हुआ है ।[3]

यजुर्वेद क एक मन्त्र मे अथर्वा के पुत्र दध्यड के द्वारा प्रदीप्त अग्नि द्वारा वत्र के मारे जान का उल्लेख है । वत्र का अथ 'आवरक शत्रु' किया गया है ।

'दध्यड एतत्तम ऋषि वृत्रहणम
आवरकाणा शत्रूणा हन्तारम ॥'[4]

उवट व महीधर के अनुसार 'दध्यड' एक ऋषि का नाम है । वृत्रहन' का अभिप्राय पापियो का मारन वाला है ।[5] वत्र शब्द प्रतीकात्मक है । यह अध्यात्म ज्ञान को समावत करने वाली आसुरी वत्तियो का द्योतक है । ऋग्वेद म वत्र शब्द का बहुवचनान्त प्रयोग अनक बार किया गया है ।[6]

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्व विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वत्रहन्जहि ॥[7]

इस मन्त्र म इन्द्र को विश्व का अधिपति और वत्र सहारक कहा गया है तथा उस प्राथना की है कि तुम बल के साथ हमारे समक्ष आओ और वत्रो का वध करो ।

वत्र शब्द नपुसकलिंग और बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है । यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा असुर विशेष का वाचक नही है । विद्युत, स्तनयित्नु, तपतु कुहरा और हिम से भी वत्र का सम्बन्ध मिलता है ।[8] अहि नमुचि, कुयव और दानव शब्द वत्र के पर्याय के रूप म प्रयुक्त हुए हैं । पाश्चात्य वैदिक विद्वान मैक्डानल ने वत्र को अन्तरिक्ष के दानवो म सक्षम बडा स्वीकार किया है ।[9] वृत्र का नाश करने के लिए इन्द्र जन्म लेता

१ ऋग्वद, ८ ३ १९
२ यजुर्वेद, ६ ३४ १ १३, १७ ४२, ३३ ५७
३ वही ४ ३, १० ८, २०, ३६, ३३ २६, ३४ ७
४ ऋग्वेदभाष्य (सायण) ६ १६ १४, पृ० ५४
५ यजुर्वेदभाष्य (उवट, महीधर), पृ० १९३
६ वैदिक देवशास्त्र पृ० ४१४
७ ऋग्वेद, ८ १७ ६
८ ऋग्वेद, १ ८० १२ १ ३२ १३
९ वैदिक देवशास्त्री, पृ० ४१२

है तथा वृद्धि को प्राप्त होता है।[1] 'वृत्रहा' पद इन्द्र के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। वृत्रहा इन्द्र शतपर्व वाले वज्र द्वारा वृत्र का वध करते हैं।[2]

> अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
> स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहि शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥[3]

अर्थात् महामारक अतितीक्ष्ण वज्र से इन्द्र, आवरण करने वालो मे जो विशेष बढ कर है ऐसे वृत्र (मेघ) को इस प्रकार मारता है, जिससे कि वह कटे हुए मेघ जालो वाला हो जाता है। जिस प्रकार कुठार से काटी गई वृक्ष की डालियाँ भूमि पर गिर पड़ती हैं इसी प्रकार इन्द्र द्वारा वज्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न हुए मेघ की जल धारा भूमि पर बरस पड़ती है।

इन्द्र शब्द सूर्य अर्थ मे भी प्रयुक्त किया गया है। स्वामी दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य में भी एक मन्त्र में इन्द्र को सूर्य कहा गया है।

हे विद्वन्! जैसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों का सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम) प्रकाश स्वरूप (इन्द्रम) सूर्य को (अवद्धताम) बढाते हैं। उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त जन्तुओ को (आ अयावि) अच्छे प्रकार पृथक करती और (अन्या) उन दोनो में से एक प्रातःकाल उषा (वसु) धन तथा (वार्याणि) उत्तम जलों को (वक्षत) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिए (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिसमे पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् मे (शिक्षित) जिनमे मनुष्यो ने शिक्षा की ऐसे दिन रात (वीताम) व्याप्त होवे (यज) यज्ञ कीजिए।[4]

दयानन्द वैदिक कोष के अनुसार इन्द्र सूर्यपद वाचक है। 'इन्द्र सकलपदार्थविच्छेत्ता सूर्यादि (१८ १८), जलानां धर्त्ता सूर्य (२० ३६), विज्ञापक सूर्य (१८ १८) विद्युत्सूर्यो वा (३४ ५७), सूर्य इव प्रतापी सभेश (३३ २६)'।[5]

---

१ ऋग्वेद, ८ ८९ ५

२ वही, ८ ८९ ३
 वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा।

३ वही, १ ३२ ५

४ यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द), २८ १५
 देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम्।
 अयाव्यन्याघा द्वेषांस्यान्या वक्षद्वसु
 वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने
 वसुधेयस्य वीतां यज॥

५ दयानन्द वैदिक कोष, पृ० २१२

यास्क के अनुसार ऋग्वेद में इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन है। यह वर्णन अन्तरिक्ष में वर्तमान मेघ और मध्यम ज्योति विद्युत् के पारस्परिक संघर्ष का है। इस संघर्ष के फलस्वरूप वर्षा होती है।[1] यद्यपि यास्क ने इन्द्र शब्द का प्रयोग नहीं किया। इन्द्र के स्थान पर ज्योति शब्द प्रयुक्त किया है। अन्तरिक्ष में यही ज्योति विद्युत् है।[2] द्युलोक में इसे ही सूर्य कहते हैं जिसका इन्द्र पद से भी ग्रहण किया जाता है।

रसान्रश्मिभिरादाय वायुनायगत सह।
वर्षत्येष च यल्लोके तेनेन्द्र इति स स्मृत ॥[3]

वेदों में वृत्र को इन्द्र के प्रमुख शत्रु के रूप में माना गया है। वृत्र मेघ एवम् अन्धकार का मूर्त रूप है। वृत्र ने द्यावापृथिवी को ढक लिया।[4] 'वृत्र' शब्द का व्याकरणिक विवेचन करते हुए इसे आवरणार्थक 'वृ' धातु से औणादिक 'त्र' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न माना गया है।[5] दयानन्द वैदिक कोष के अनुसार भी वृत्र मेघ है, न्याय वरक शत्रु है।[6] निरुक्त में उद्धृत वचनानुसार वृत्र शब्द 'वृ', 'वृत' एवं 'वृध' इन तीन धातुओं से व्युत्पन्न होता है।[7]

---

१ निरुक्त, २ १६
तत्को वृत्र मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रो सुर इत्यतिहासिका । अपा च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति, अहिवत्तु खलु मन्त्र वर्णा ब्राह्मणवादाश्च विवृद्धया शरीरस्य स्रोतांसि निवारयाञ्चकार तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिर आपस्तदभिवादियेषग भवति।

२ शतपथ ब्राह्मण ७ ५ २ ४६
विद्युद् वा अपा ज्योति ।

३ बृहद्देवता, १ ६८

४ शतपथ ब्राह्मण १ १ ३ ४।

५ उणादि सूत्र, ४ १६४।

६ दयानन्द वैदिक कोष पृ० ६०१
वृत्र—मेघमिवन्यायावरकं शत्रुम् १० ८ मेघमिवा विद्याम ४ १९ ११, प्रकाशा वरक मेघमिव धर्मावरकम् (दुष्टं शत्रु) ३३ २६, आच्छादकम् (अहिम्-मेघम) ६ २० २, जल स्वीकुर्वन्तम प्रजासुख स्वीकुर्वन्त वा (मेघ शत्रुता) १ ८२, घनम ७ ४८ २, वरणीयम (धनम) १ १८८ १, वृत्राणाम धर्मावरकाणाम् (दुर्जनानाम) ६ २६ ८ वृत्रवत् सुखावरकाणा शत्रूणा मेघाना वा १ ४८, वृत्राणि—आवरण धना इव शत्रुसैन्यानि ३ ३० २२।

७ वर्तुवत्ते (व्याकिरण) धातो
स्फायितञ्चि० (३ २ १३), सूत्रेण रक।

प्रo विo पाठक के अनुसार वृत्रासुरवध का तात्पर्य

इन्द्र ने वृत्रासुर—वध कैसे किया ?[1] इसके समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया जाए और वदिक मन्त्रो मे सगति लगाई जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धु नदी तथा समीपवर्ती क्षेत्र मे प्राचीनकाल मे हुए उत्पातो का वणन ऋग्वेद म किया गया है। इन उत्पाता के फलस्वरूप कई बार मिट्टी के बाध टूट गए और नदियो के प्रवाह मे अवरोध खडा हो गया। पानी मुक्त होकर बहने लगा। ऋग्वेद की ऋचाओ म वर्णित वृत्र एक खोखला बाध था। उस तोडने का काय वृत्र वध माना गया। यह काय इन्द्र देवता न किया। इसलिए सभी देवताओ म इन्द्र को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ।

अति प्राचीन भारतीय सभ्यता के अवशेष, सिन्धु सभ्यता काल के मोहेन जोदडो तथा हडप्पा नगरो म पाये जाते हैं। इन अवशेषो म कही कही नदी की बाढ से कीचड भरा हुआ पाया गया है। वैज्ञानिको के मतानुसार ये नगर अनेक बार सिन्धु नदी म आई बाढ म डूबे थे। नदी के मार्ग मे अचानक किसी बाध क उभर आने से बाढ आना सम्भव था। वृत्र न अपना शरीर फैला कर नदियो का प्रवाह रोक दिया। इन्द्र ने जब वृत्र का वध कर दिया तथा नदियो का पानी बहने लगा।

भू पृष्ठ खण्ड के सरकन के कारण अचानक एक खोखला बाध, नदियो के माग में उभर कर खडा हो गया। नदियो का पानी रुक गया। समतल प्रदेशो मे ऐसा होने के कारण नदी का रुका हुआ पानी धीरे-धीरे दूरवर्ती भागो मे फैलता गया। कुछ समय पश्चात् पानी के भीतर दबाव के कारण या तज वर्षा के कारण यही बाध टूट गया। अब अवरोध के हटने के कारण पानी बहने लगा। वृत्रासुर का वर्णन करते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं कि स्थिर न रहने वाले और विश्राम न करने वाले जल प्रवाहो के बीच वृत्र का शरीर फला हुआ था। उसके ऊपर से जल बह रह था। इन्द्र के शत्रु वृत्र, ने बडा ही अंधकार फैला रखा था।[2]

(ख) निरुक्त, २ १७
वृत्र मेघ नाम निघण्टु १ १०
वृत्रोवणोतेर्वा वततेर्वा वधवेर्वा।
यद वृणोतद वृत्रस्य वृत्तवमिति विज्ञायते।
यदवर्त्तन तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विनायते।
यदवधत तद वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विनायते॥

१ धमयुग, २८ जुलाई, १९८१, पृ० २५

२ ऋग्वेद, १ ३२ १०
अतिष्ठती नाम निवेशनाना काष्ठानाम मध्ये निहित शरीरम।
वृत्रस्य निण्य विचरत्यापो दीघतम आशय दिन्द्रशत्रु॥

निघण्टु में वृत्र के समानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है। वल का वलय के समान घेरा होने के कारण 'वल' तथा 'मेघ' के समान अवयवहीन होने के कारण 'अहि' कहा गया है। इन पदों में भू-पृष्ठ से उभरे लम्बे टेढ़े तिरछे बांध का यथार्थ वर्णन हुआ है। बांध (वत्र) भूमि पर अपना शरीर फैला कर सोता था।[1] ऋषियों की प्रार्थना पर इन्द्र ने वत्र को नष्ट कर दिया। लोगों की प्रार्थना सुन कर इन्द्र ने बल (वत्र) को तोड़ दिया। पवन (बांध) के मुख्य द्वारों को खोल दिया। असुरों की बनाई हुई बाधाओं को दूर कर दिया। सोमपान के उत्साह में इन्द्र ने ये सब पराक्रम किया।[2]

आर्यों व दासों (=दस्युओं) का युद्ध का तात्पर्य

पाश्चात्य मत के अनुसार दासों के विरुद्ध आर्यों के युद्धों का वर्णन वेदों में मिलता है।[3] इसी आधार पर आर्यों को भारत में बाहर से आने वाला कहा गया। द्राविड़, कोल भील व संथालों को भारत का मूल निवासी बताया गया। किन्तु यह मान्यता वस्तुतः भ्रान्तिपूर्ण है। दासों के साथ आर्यों का जो युद्ध वर्णन वेदों में मिलता है वह तो मानवीय युद्ध न होकर प्राकृतिक युद्ध है। वेद में इन्द्र को आर्य[4] तथा वृत्र (मेघ) को दास व दस्यु[5] कहा गया है। इन्द्र ही विद्युत् है[6] तथा वृत्र मेघ है। इन दोनों का परस्पर संघर्ष ही प्राकृतिक युद्ध है।

---

१ ऋग्वेद १ ३२ ८

२ वही २ १५ ८
मिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो विवतदस्य दृहितान्यैरत।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥

३ वैदिक इन्डेक्स, पृ० ७४।

४ ऋग्वेद १ ३४ ६
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथा
वशं नयति दासमार्य।

५ वही १ ३२ ११
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार॥

६ (क) ऐतरेय ब्राह्मण, ३ ४ अथ यदुच्चैघोपस्तनयन् व व वा कुर्वन्निव दहन्निव यस्माद् भूतानि विजन्ते तदस्य (अग्ने) ऐन्द्र रूपम्।
(ख) शतपथ ब्राह्मण, ११ ६ ३ ६—स्तनयिनुरवेन्द्र।
(ग) वही ६ १ ३ १४—विद्युत् वा अशनि।
(घ) कौषीतकी ब्राह्मण ६ ६ यदशनि इन्द्रस्तेन।

निरुक्त टीकाकार दुर्ग के अनुसार वायु आवेष्टित विद्युत् ज्योति को ही इन्द्र नाम दिया गया है। उसके तेज से प्रतप्त जल वर्षा के लिए बहते हैं। यहां जल तथा तेज के पारस्परिक प्रति द्वन्द्व भाव को प्रस्तुत किया गया है यहीं उपमा द्वारा प्राकृतिक युद्ध का वर्णन है।[1]

इन्द्र वृत्र युद्ध का एक आलंकारिक वर्णन (ऋग्वेद म० १ सूक्त ३२)

वज्रधारी इन्द्र ने जो प्रथम बल के काम किए हैं उनका मैं वर्णन करता हूँ। प्रथम उसने अहि नामक मेघ का हनन किया। दूसरा वृष्टि का प्रबन्ध किया। तीसरा काम उसने प्रवहणशील पर्वतीय नदियों का मार्ग बनाया।[2]

पर्वत में आश्रय लेने वाले अहि नामक मेघ का इन्द्र ने वध किया। त्वष्टा ने इन्द्र के लिए शब्दकारी और उत्तापकारी वज्र का निर्माण किया। जिस प्रकार अभिनव गौएं अपने बछड़ों के प्रति जाती हैं उसी प्रकार मेघ वध के अनन्तर धारावाही जल वेग से समुद्र की ओर गये।[3]

वर्षा करने वाले इन्द्र ने सोम का वरण किया और त्रिकुट यज्ञों में चुवाये हुए सोम का पान किया। धनवान इन्द्र ने मेघों के मुखिया मेघ को अन्तकारी वज्र से मारा।[4]

---

१ निरुक्त टीका (दुर्ग) २ १६
यदि मेघो वृत्रो य (एषु) मन्त्रेषु युद्ध मन्त्रं वर्ण इत्येतच्छ्रुतम्। तदेतन्निगमानुप्रसक्तम विचार्यत इत्युपयुक्तस्तच्छन्द। आह को वृत्र उच्यते। मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रो सुर इत्यैतिहासिका। निरुक्तमधीयते विदुश्च ये ते नैरुक्ता। आह यदि मेघो वृत्रो य एषु मन्त्रेषु सग्राम श्रूयते तत्र क समाधिरिति। उच्यते, अपा च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अपा च मेघोदरान्तर्गताना ज्योतिषश्च वैद्युतस्योद्भूतवृत्तेर्मिश्रीभावकर्म जायते। तेनहि वैद्युतेन ज्योतिषा वाय्वनुपविष्टेनेन्द्राख्येनोपताप्यमाना आप प्रस्यन्दन्ते, वर्षभावाय प्रवर्तन्ते। तथैव सत्युदकमनुसारितरेनर प्रतिद्वन्द्वभूतयोरुपमार्थेन स्वरकल्पनया युद्धवर्णा भवन्तीति युद्धस्यकाशीत्यय ॥

२ ऋग्वेद १ ३२ १
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥

३ वही, १ ३२ २
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः॥

४ वही १ ३२ ३
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥

हे इन्द्र ! जिस समय तूने मेघों के मुखिया को मारा था, उस समय तूने मायावियों की माया को भी विनाश किया। तदनन्तर सूर्य, उषा और प्रकाश को उत्पन्न किया। अत को तुम्हें कोई शत्रु न मिला अर्थात सब शत्रु समाप्त हो गए।[1]

इन्द्र ने महान अपकारी वृत्र को छिन्न बाहु करके बड़े विध्वंसकारी वज्र से मारा। कुठार से काटे हुए वृक्ष स्कन्ध की भांति वह वृत्र (मेघ) पृथ्वी पर गिरा।[2]

दुर्मद वृत्र ने अपने आपको प्रतिद्वन्द्वीहीन समझकर महावीर बहु विध्वंसक शत्रुओं के उपाजक इन्द्र को युद्ध में ललकारा। इन्द्र के वधकारी काम से वह बच नहीं सका। इन्द्र शत्रु वृत्र नदियों में गिर कर नदियों को भी पीड़ित करने लगा अर्थात वृत्र के वध पर इतने वेग से वृष्टि हुई कि नदी वेग के कारण पत्थर भी फूटने लगे।[3]

पादरहित और हस्तरहित वृत्र ने युद्ध के लिए इन्द्र को आहूत किया। इन्द्र ने इस वृत्र के उन्नत स्थान पर वज्र से आघात किया। जिस प्रकार नपुंसक मनुष्य वीर्य वान मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ यत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र ने भी व्यर्थ यत्न किया। इन्द्र द्वारा अनेक स्थानों पर ताड़ित हुआ वृत्र क्षत होकर भूमि पर गिरा।[4]

जिस प्रकार टूटे हुए तटों से जल बहता है उसी प्रकार भूमि पर गिरे वृत्र को अतिक्रमण करके प्रजा को हर्षित करने वाले जल बहते हैं। जो वृत्र जीवित अवस्था में अपनी महिमा से जलों को रोके हुए था, अब वही वृत्र मेघ उन जलों के पावों के तले बह रहा है।[5]

---

१ ऋग्वेद १.३२.४

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥

२ वही, १.३२.५

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥

३ वही १.३२.६

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥

४ वही, १.३२.७

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥

५ वही, १.३२.८

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥

वज्र की रक्षा के लिए वृत्र की माता दनु उस पर लेटी, जिससे वज्र बच जाए। इन्द्र ने नीचे से वज्र पर प्रहार किया, उस समय माता ऊपर और पुत्र दानु नीचे था। तदनन्तर जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के साथ सोती है, उसी प्रकार वृत्र की माता दनु भी सदा के लिए सो गई।[1]

न ठहरते हुए और न बैठते हुए जलों के मध्य में गुप्त और नाम रहित वृत्र के शरीर को जल पहचानते हैं, तब इन्द्र का शत्रु वृत्र दीघतम अर्थात दीर्घ निद्रा में सदा के लिए सो गया।[2]

दास पत्नी अर्थात् दास (वृत्र) जिनका पति है, (अहिगोपा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला अहि (मेघ) जिनका रक्षक है ऐसे जल, पणि (मेघ जो रश्मियों को आवृत करता है) द्वारा जैसे गौवें (रश्मियां) निरुद्ध थीं। उसी प्रकार जलों के छिद्र निरुद्ध थे। इन्द्र ने उस वृत्र का वध किया और आवृत्त छिद्रों को खोला।[3]

हे इन्द्र देव! वृत्र ने तेरे वज्र पर प्रहार किया था, तूने घोड़े की पूंछ जैसे मक्खियों का निवारण करती है उसी प्रकार अनायास ही उस प्रहार को विफल कर दिया। तूने गौओं को जीता, तूने सोम को जीता और तूने सात नदियों को प्रवाहित किया।[4]

इन्द्र और अहि (वृत्र मेघ) जब युद्ध हो रहा था तब विद्युत गर्जन (ह्रादुनि) अर्थात हन् हन् (मारो मारो) यह शब्द भी इन्द्र को परास्त नहीं कर सके। न ही वृत्र की अन्य मायायें भी पराजित कर सकीं। अन्त में मघवा अर्थात धनवान इन्द्र ही विजयी हुआ।[5]

हे इन्द्र! वृत्र हनन के समय जब तुम्हारे हृदय में भय उत्पन्न हुआ था, तो क्या तूने अहि (वृत्र) के घातक किसी अन्य को देखा था। श्येन पक्षी की भांति तूने

---

१ ऋग्वेद १ ३२ ९
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधर पुत्र आसीत दानु शये सहवत्सा नधेनु ॥

२ वही, १ ३२ १०
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घतम आशयदिन्द्रशत्रु ॥

३ वही, १ ३२ ११

४ वही १ ३२ १२

५ वही, १ ३२ १३
नास्मै विद्युन्न तन्यतु सिषेध न यां मिहमाकिरद् ह्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये ॥

निनानवें नदियों के जल को प्रवाहित किया था। हे इन्द्र! तुझे भय न हो, यही हमारी प्रार्थना है।[1]

इन्द्र जंगम और स्थावरों का राजा है। वह वज्र बाहु इन्द्र शांत और शृंगधारी पशुओं का भी राजा है। वह मनुष्य का भी राजा होकर निवास कर रहा है। जिस प्रकार चक्रनेमि आरों को धारण करती है, इसी प्रकार इन्द्र ने भी सबको धारण किया हुआ है।[2]

भगवद्दत्त ने भी यह माना है कि वेद में वर्णित इन्द्र वृत्र का युद्ध मानवीय युद्ध नहीं है अपितु यह प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन है। वे इन्द्र प्रकरण में लिखते हैं कि इन्द्र वर्तमान काल में वृत्र का वध करते हैं या वैसा करने के लिए उनका आह्वान किया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उनका युद्ध अनवरत रूप से नवीन होता चला जाता है। यह प्राकृतिक दृश्य के सतत नवीभाव का ही गाथात्मक प्रतिरूप है। वृत्र का वध करके उन्होंने अनेक उषाओं और शरदों तक प्रवाहित होने के लिए सरिताओं को उन्मुक्त कर दिया है अथवा भविष्य में ऐसा करने के लिए उनसे प्रार्थना की गई है। वे पर्वतों को विदीर्ण कर देते हैं और इस प्रकार सरिताओं को प्रवाहित करते हैं।[3]

महर्षि दयानन्द ने इस सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए शब्द से सूर्यलोक के दृष्टान्त से राजा के गुणों का प्रकाश, सूर्य व सभापति के कार्य का प्रकाशन व सूर्य अथवा मेघ का पारस्परिक युद्ध वर्णित किया गया है। व्यावहारिक अर्थ करते हुए वे कहते हैं कि राज पुरुषों को योग्य है कि जैसे वृत्र मेघ के जितने बिजली आदि युद्ध के साधन हैं वे सूर्य के आगे क्षुद्र व थोड़े हैं। सूर्य के युद्ध साधन उससे अपेक्षा बड़े हैं, इसीलिए सूर्य की विजय व मेघ की पराजय होती है वैसे ही राजा धर्म से शत्रुओं को जीतें।[4]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन्द्र-वृत्रासुर-संग्राम का विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से व्याख्यान किया है। किन्तु यह आलङ्कारिक कथा है जो असत्य

---

१ ऋग्वेद, १ ३२ १४
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि॥

२ १ ३२ १५
इन्द्रो यातो वसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥

३ वैदिक देवशास्त्र, पृ० १४१।

४ ऋग्वेदभाष्य (दयानन्द) १ ३२ १ १५।

पर सत्य की विजय का सन्देश देती है, इसमें सन्देह नहीं। सूर्य तेजस्वरूप है। सूर्य अपनी तीव्र किरणों के द्वारा मेघ को मारता है तो इन्द्र द्वारा वृत्र वध होता है। जब मेघ रूपी वृत्र पृथ्वी पर गिरता है तो वह जल रूपी अपने शरीर को भूमितल पर विस्तृत रूप से फैला देता है। इससे निर्मित बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं। जब सूर्य रूप इन्द्र मेघरूप वृत्रासुर को मार कर भूतल पर गिराता है तो वह पृथ्वी पर सो जाता है। वह मेघरूप वृत्र ही आकाश से नीचे गिर कर पृथ्वी पर फैल कर फिर सूर्य किरणों से ग्रहण किया जाता है। सूर्य रूप इन्द्र उस गर्जन हुए मेघरूप वृत्र का छिन्न भिन्न करके इस प्रकार गिराता है जैसे कोई किसी मनुष्य के शरीर के अंगों को काट कर गिराता है। पृथ्वी पर गिरा हुआ वृत्र मरे हुए के समान शयन करने वाला प्रतीत होता है। वृत्र अपनी बिजली की गर्जना से इन्द्र को कभी भी जीत नहीं सकता। कभी मेघरूप वृत्र सूर्य रूप इन्द्र को आच्छादित कर लेता है तो कभी सूर्य रूप इन्द्र मेघरूप वृत्र के आवरण को दूर कर देता है। अन्तिम रूप में इन्द्र ही विजय को प्राप्त करता है।

यह तो आलङ्कारिक वर्णन से युक्त किया है। यह कथा प्रकाश अर्थात् सत्य (इन्द्र) व अन्धकार अर्थात् असत्य (वृत्र) के संग्राम में सत्य की विजय का सन्देश देती है। आध्यात्मिक पक्ष में चित्त की पाप युक्त वासनायें ही वृत्र हैं। प्रबुद्ध और दिव्यमन इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनकर चित्त का सन्मार्ग पर लगाने में समर्थ होता है। यही सशक्त जीवात्मा रूप इन्द्र ही उस पाप रूप वृत्र को नष्ट करने में समर्थ होता है।[1] इस प्रकार इन्द्र का वृत्र को मारने में सर्वातिशायी प्रभुत्व बना रहता है। देवता गण वृत्र को नष्ट करने व मारने के लिए इन्द्र को ही अपना नेता बनाते हैं।[2] इन्द्र के द्वारा वृत्र को मार डालने का उल्लेख स्पष्टतया मिलता है। *अग्नि बृहस्पति सोम आदि देवों* को भी वृत्र को नष्ट करने वाला प्रतिपादित किया गया है।[3] आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक जगत में इन्द्र और वृत्र का विनाशक विनाश्य सम्बन्ध ही स्फुट रूप

१ (क) शतपथ ब्राह्मण, ११५७
पाप्मा वै वृत्र।
(ख) वही, ६४२३
वृत्रहणं पुरन्दरमिति पाप्मा वै वृत्र।
पाप्मानं पुरन्दरमित्येत।

२ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरेपुरः।
—ऋग्वेद, ८१२२२।

३ वही, ६१६३४, १०१७३८, १०२६६

से सामने आता है। आधिभौतिक जगत् मे वृत्र दुष्ट और हिंसक है। क्षात्र बलयुक्त पुरुष का ही इन्द्र कहा गया है।[1]

(ग) असुर, दस्यु, अनार्य, अहि इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन तथा इस प्रसग मे 'इन्द्र' शब्द के अभिप्राय की सगति

(१) असुर

वदिक साहित्य म कुटिल स्वभाव के दानवो को असुर कहा गया है। य द्यु लोक मे रहते हैं। य देवा के प्रतिद्वदी भी थे।[2] असुर शब्द को राक्षस अथ म भी प्रयुक्त किया गया है। ये असुर ही अदेव कहलाए। इन्द्र से अदेव असुरो का अपनोदन करन के लिए कहा गया है।[3] असुरहन' शब्द का इन्द्र के लिए भी प्रयाग किया गया है। असुर का अथ है अशिव।[4] वेद मे वरुण अथवा मित्र वरुण क लिए विशेष रूप से 'असुर शब्द का प्रयोग मिलता है। ये गम्भीर मानसिक शक्ति से युक्त थे। बाद मे प्रतिद्वद्विया के रूप मे आए राक्षसो के साथ भी इसका प्रयाग होन लगा और असुर शब्द धीरे धीरे 'अभद्र अर्थ का वाचक बन गया है।[5]

(२) दस्यु (दास)

'दस्यु' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति—'दस्यु' शब्द 'दसु उपक्षय' धातु से

---

१ शतपथ ब्राह्मण, १० ४ १ ५
इन्द्र क्षत्रम।
कौषीतकी ब्राह्मण, १ २ ८
तैत्तिरीय ब्राह्मण,२ ६ १६ २
शतपथ ब्राह्मण, २ ५ २ २७ २ ५ ४ ८, ३ ९ १ १६,
क्षत्र वा इन्द्र ।

२ अथववेद, ८ ६ ५
य कृष्ण केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिका ।
अरायानस्या मुष्काभ्या भससोपहन्मसि ॥

३ ऋग्वेद ८ ९६ ९
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण
ताँ अप वप ऋजीषिन ॥

४ वही ६ २२ ४
पुरुहूत पुरुवसो सुरघ्न ।

५ वही, १० १२४ ५
निर्माया उत्ये असुरा अभूवन ।
त्व च मा वरुण कामयासे ॥

यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्[1], इस उणादि सूत्र से 'युच' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—'दस्यति नाशयति य स दस्यु' अर्थात् जो नाश करता है वह दस्यु है।

यास्क के मतानुसार अनावृष्टिकाल में सब ओषधियों के रस क्षीण करने वाला होने से यह दस्यु है। कर्मों का नाश करने से भी इसे दस्यु कहा गया है।[2]

दास शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति—दिवादिगणीय 'दसु उपक्षये' धातु से कर्म में 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्[3] सूत्र से घञ् प्रत्यय द्वारा दास शब्द बनता है। इसका अर्थ है—'दस्यते उपक्षीयते इति दास' अर्थात जो साधारण प्रयत्न से क्षीण किया जा सके, ऐसा साधारण व्यक्ति। इस अर्थ में दास शब्द का प्रयोग वृत्र (शत्रु) के विशेषण के रूप में आता है।

भ्वादिगणीय दासृ दाने धातु से कर्त्ता अर्थ में 'अजपि सर्वधातुभ्य'[4] वार्तिक से अच प्रत्यय द्वारा 'दास' शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है—'दासति दासते वा य स' अर्थात दाता या दान देने वाला।

इसी भ्वादिगणीय दासृ दाने धातु से 'कृत्यल्युटो बहुलम्'[5] से सम्प्रदान अर्थ मे अच या घञ्' प्रत्यय होने पर भी 'दास' शब्द निष्पन्न होता है। इस स्थिति में इसका अर्थ है—'दासति दासते वा अस्मै' अर्थात जिसके लिए दिया जावे। भृत्य, किंकर, सेवक आदि सभी दास पद वाच्य हैं।

क्षयार्थक दसु धातु से णिजन्त में कर्त्ता में 'अजपि सर्वधातुभ्य'[6] से अच प्रत्यय द्वारा निष्पन्न दास का अर्थ है—'दासयति य स दास'[7] अर्थात जो यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों व प्रजा आदि को क्षीण करे, वह दास अर्थात अनार्य व्यक्ति।

दसन और भाषणार्थक दसि धातु से णिजन्त में कर्त्ता अर्थ में 'दसेष्टटनौ न आ च' इस उणादि सूत्र[8] से 'ट' या 'टन' प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'दास' शब्द का

१ उणादि सूत्र, ३ २०
२ निरुक्त, ७ २३
दस्युर्दस्यते क्षयार्थाद् उपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि।
३ अष्टाध्यायी, ३ ३ १९
४ वही ३ १ १३४ सूत्र का वार्तिक
५ वही ३ ३ ११३ सूत्र का वार्तिक
६ वही ३ १ १३४ सूत्र पर वार्तिक
७ तुल०—निरुक्त, २ १७
दासो दस्यते उपदासयति कर्माणि।
८ उणादि सूत्र, ५ १०

अर्थ है—'दसयति दशति भाषते वा य स दास' अर्थात् जो काटने (हिंसा करने) तथा भाषण करने वाला है वह दास है।

वेदो म दास शब्द का विविध रूपों म प्रयोग मिलता है। यह शब्द नमुचि[1], 'शम्बर'[2] व शुष्ण[3] नामक मेघों के विशेषण रूप म, उपक्षीण (बलरहित) शत्रु के लिए,[4] अनार्य के लिए,[5] अज्ञानी, अकर्मा मानवीय व्यवहारशून्य व्यक्ति के लिए,[6] विश (प्रजा) के विशेषण रूप मे,[7] वर्ण के विशेषण रूप म[8] तथा अय म[9] भी प्रयुक्त हुआ है।

इसी प्रकार दस्यु शब्द भी वेद म आर्य के विलोम अर्थ मे[10] उत्तम कर्म हीन व्यक्ति के लिए[11] अज्ञानी, अव्रती, मानवीय व्यवहारशून्य व्यक्ति के लिए[12] मेघ अर्थ के लिए[13] अनास विशेषण के विशेष्य के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

---

१ ऋग्वेद ५ ३० ७
अत्रा दासस्य नमुचे ।
२ वही, ६ २६ ५
ऊर्वगिरेदास शम्बर हन ।
३ वही, ७ १६ २
दास यच्छुष्ण कुयवम
४ वही १० ८३ १
साह्याम दासमार्य त्वया युजा ।
५ वही, १० ८६ १९
विचिन्वन दासमार्यम् ।
६ वही १० २२ ८
अकर्मा दस्युरभि नो अम तुरन्यव्रतो अमानुष ।
त्व तस्या मित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥
७ वही, ६ २५ २—आर्या विशो वतारीर्दासी ।
८ वही २ १२ ४ दास वर्णमधर गुहाक ।
९ (क) वही ७ ८६ ७—अर दासो न मीलहुषे कराणि ।
(ख) वही, १ ९२ ८, दास प्रवग रयिमश्वबुध्यम ।
१० वही, १ ५१ ८ वि जानीह्यार्यान य च दस्यव ।
११ वही, ७ ५ ६
त्व दस्यूरोकसो अग्न आजे ।
१२ वही १० २२ ८
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुर न्यव्रतो अमानुष ।
१३ वही, १ ५९ ६
वैश्वानरो दस्युमग्निजघन्वा अधूनो त काष्ठा अव शम्बर भेत ।

(३) दस्यु

वेद का 'दस्यु' शब्द विवादास्पद है। आर्यों की शत्रु किसी निकृष्ट हिंसक व बर्बर जाति से इसका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। 'अकर्मन' अर्थात 'कर्म न करने वाले' अदेवयु अर्थात दिव्यता को न चाहने वाले, अब्रह्म' अर्थात वेद ज्ञान से रहित, 'अयज्वन' तथा 'अयज्यु' अर्थात् 'यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से रहित'—आदि कई विशेषणों से दस्यु को अथवा दस्युओं को अलंकृत किया गया है।[1]

इन्द्र को भी 'दस्युहत्य' कहा गया है।[2] 'वृत्र' भी दस्युओं में से एक था। वेदों के अनुसार आर्य लोग देवों की सहायता प्राप्त करके दस्युओं को युद्ध में जीतते थे। डा० सूर्यकान्त के मत में 'दस्यु' शब्द अनिश्चितता मूलक है।[3]

कीथ तथा मैक्डानल द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक इण्डेक्स' के अनुसार आर्य लोग आदिम निवासियों को 'दस्यु' और दास कहते थे। ऋग्वेद में दस्यु शब्द कुछ स्थानों पर मनुष्य से भिन्न लोगों के शत्रु के रूप में[4] तथा कुछ अन्य स्थानों पर मनुष्य के शत्रु रूप में आया है।[5]

वैदिक इण्डेक्स के अनुसार 'दस्यु' शब्द संदिग्धार्थक है। जहां पर यह शब्द मनुष्य के शत्रु रूप में आया है वहां उसका अर्थ आदिम निवासी है। दस्यु आर्यों के विरोधी रूप में भी आते हैं। वे देवताओं की मदद से आर्यों द्वारा हराये भी गए थे।[6]

हे पुरुहूत! बहुत यजमानों से बुलाए गए इन्द्र! गमनशील वायुओं से युक्त होकर पृथ्वी में वर्तमान दस्यु (=हानि पहुंचाने वाले शत्रु) और शिम्यु (=वध करने वाले राक्षसादि अथवा शिम्यु नाम वाले) को आपने वध से मारा।[7]

हे इन्द्र! आपने रज्जु रहित बन्धनागार में दभीति राजा के लिए दस्युओं को मारा।[8]

---

१ वैदिक कोश (डा० सूर्यकान्त), पृ० १९१

२ वही, पृ० १९२

३ वही, पृ० १९१

४ वही, १ ३४७, २ १२ ९

५ ऋग्वेद, १ ५१ ८, १ १०३ ३४, १ ११७ २१, २ ११ १८ १९, ३ ३४ ९; ६ १८ ३, ७ ५ ६, १० ४९ ३।

६ दस्यु विवेचन, पृ० ३४

७ वही, १ १०० १८।

८ वही, २ १३ ९

Vedic Mythology, p 157

इन स्थलो मे यज्ञ म विघ्न करने वाला तथा दभीति नामक मनुष्य राजा का शत्रु दस्यु कहा गया है।

मैक्डानल के अनुसार 'दास' तथा 'दस्यु' दोनो समानार्थक हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ वैदिक माइथोलाजी' म इस पर प्रकाश डाला है।[1] दस्यु शब्द को उपक्षय अर्थ वाली दस' धातु से भी निष्पन्न माना जाता है।[2] दस्युहना,' 'दस्युजूताय' 'दस्युहत्याय', दस्युहत्येषु', 'दस्युहन्तमम' आदि शब्द भी 'दस्यु शब्द से ही बनते हैं।[3] स्वामी दयानन्द ने अपने एक ग्रन्थ म[4] वैदिक मन्त्र[5] मे आए दस्युहा' शब्द का अर्थ दुष्ट पापी लोगो का हनन करने वाला (परमात्मा) किया है। एक अन्यम न म दस्युहन्तमम' शब्द का अर्थ 'डाकूओं का अतिशय मारने वाले योद्धा जन'[6] किया है।

श्री अरविन्द न दस्युओ को 'अन्धकार का पुत्र कहा है। आर्यों का तथा उन आर्यों का विजय दिलाने वाले इन्द्र का दस्युओ के साथ युद्ध का वर्णन है। यह आध्यात्मिक सघर्ष तथा विजय का युद्ध है। यह युद्ध भौतिक व लूट मार का युद्ध नहीं है।

यद्यपि कुछ सन्दर्भों मे वे मानवीय शत्रु प्रतीत होते हैं। पर तु अनेक स्थलों पर व आध्यात्मिक प्रकाश के दिव्य सत्य और दिव्य विचार के शत्रु ही हैं। पणियो से तथा वृत्र आदि स सम्बन्धित दस्यु दो मुख्य वर्गों मे विभक्त हैं। पणियो मे सम्बन्धित दस्यु गायों अर्थात मानव स्वभाव के आध्यात्मिक प्रकाश की रश्मियों तथा जलो अर्थात मानव की दिव्य चेतनाओ को अवरुद्ध करते हैं। वृत्र आदि मे सम्बन्धित दस्यु मानव के अन्त करण म विद्यमान दिव्य प्रकाश को आच्छादित करने वाले हैं। ये जलधाराओं (अप) अर्थात दिव्य चेतना के प्रवाह के अवरोधक हैं। य दस्यु या पणि दिव्यमन शक्ति रूप इन्द्र क शब्दों क द्वारा जीते जाते हैं। दस्यु विजय के बाद अन्दर का अन्धकार दिव्य प्रकाश मे परिवर्तित हो जाता है। प्रकाश की शक्तियो से ऊर्ध्वारोहण का विजयगीत आय दस्यु युद्ध के रूप म वेदो म इतस्तत सवत्र दर्शनीय है।[7]

---

१ The Word dasa or its equivalent 'dasyu', ■ also used to designate atmospheric demons'

२ वैदिक कोश (डा० सूयकान्त), पृ० ३३७

३ दयानन्द वदिक कोश, पृ० ४५५

४ आर्याभिविनय १ ३४

५ ऋग्वेद १ १०० १२

६ वही ६ १६ १५

■ वेदरहस्य पूर्वाद्ध, पृ० २६६ ६७

(३) अनार्य

अनार्य शब्द आर्य का ठीक विपरीत अर्थ प्रकट करने वाला है। आर्य का कर्म है यज्ञ, जो एक साथ एक युद्ध है, एक आरोहण है और एक यात्रा है। एक युद्ध है अन्धकार की शक्तियों के विरुद्ध एक आरोहण है पर्वत की उन उच्चतम चोटियों पर जो द्यावापृथिवी से परे स्व के अन्दर चली गयी है एक यात्रा है नदियों तथा समुद्र के परले पार की वस्तुओं की सुदूरतम असीमता के अन्दर' आर्य देवत्व के इच्छुक हैं। इसीलिए 'देवयु' कहलाए। आर्य यज्ञ द्वारा शब्द द्वारा तथा विचार द्वारा अपने भीतर देवत्व को बढाना चाहते हैं। दिव्य गुण अर्थात देव आर्य पर ऐश्वर्य की वर्षा करते हैं। आर्य यज्ञ म दिव्य वैदिक शब्द को प्राप्त करते हैं आर्य विचार को, विचारशील मन को तथा द्रष्टा के ज्ञान को धारण करने वाले धीर मनीषी व कवि हैं इसके ठीक विपरीत आचरण करने वाले ही अनार्य कहे गए है।

अनार्य, दास और दस्यु शब्दो का अन्तरिक्ष मे विद्यमान दैत्यो के अर्थ मे प्रमाण मिलता है। आर्य और अनार्य (दस्यु अथवा दास) दोनो के विरोध म इन्द्र से सहायता की प्रार्थना की गई है। इन्द्र आर्यों और अनार्यों (दस्युओ) के भेद की पहचान रखते हैं। इन्द्र युद्ध मे भी आर्यों का पक्ष लेते हैं तथा अनार्यों से युद्ध करते हैं।[२]

'अनार्य' स्वय मे नकारात्मक भाव को द्योतित करने वाला है। जो आर्य नही वह अनार्य है।[३] अत आर्य शब्द के तात्पर्य को हृदयङ्गम करना अनिवार्य हो जाता है।

'आर्य' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति

'ऋ गतौ' धातु से 'अचो यत'[४] सूत्र द्वारा भाव कर्म अर्थ मे यत् प्रत्यय प्राप्त

---

१ वेदरहस्य, पूर्वार्द्ध पृ० ३०८

२ ऋग्वेद, १० ३८ ३

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता देव इन्द्रयुधयेचिकेतति।
अस्माभिष्टे सुषहा सन्तु शत्रवस्त्वया वयतान् वनुयाम सगमे॥

३ वही, १ ५१ ८

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यव।

वही, १० ८६ १९

अयमेभि वि चाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम्।

वही ६ १८ ३

त्व ह नु त्यददमायो दस्युरेक कृष्टीरवनोरार्याय।

वही, २ १२ १२

होने पर ऋहलोर्ण्यत्[1] इस अपवाद सूत्र से यत् के स्थान पर ण्यत् प्रत्यय करके 'आर्य' शब्द की सिद्धि होती है। इस आर्य शब्द का अर्थ है—गमनीय, प्रापणीय, अभिगमनीय व अभिगन्तव्य।

'अर्यः स्वामिवैश्ययोः'[2] इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में अर्य पद की सिद्धि होती है। यह अर्य पद ईश्वर का वाचक भी कहा गया है।[3] इससे 'तस्यापत्यम्'[4] सूत्र द्वारा तद्धित अण् प्रत्यय करके भी आर्य शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—'अर्यस्य स्वामिनः (ईश्वरस्य) पुत्रः' अर्थात् स्वामी (ईश्वर) का पुत्र।[5] 'तस्येदम्'[6] सूत्र द्वारा अर्य पद से अण् प्रत्यय करके भी आर्य शब्द बनता है। इसका अर्थ है—'अर्यस्य स्वामिनः (ईश्वरस्य) वैश्यस्य वा इदम्' अर्थात् स्वामी (ईश्वर) अथवा वैश्य का अपना स्वधन (एश्वर्य) आदि वेदों में कृत ण्यत से निष्पन्न तथा तद्धित अण से निष्पन्न दोनों प्रकार के आर्य शब्दों का प्रयोग हुआ है। एक मन्त्र में बार्हस्पत्य भारद्वाज प्रार्थना करता है कि हे इन्द्र! शत्रु सेनाओं को नष्ट करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में शत्रु के क्रोध को नष्ट कर। हमारी स्तुतियों से हे इन्द्र! हमारा मुकाबला करने वाली सर्वत्र विद्यमान दस्युओं की सेनाओं का आर्य के लिए वध कर।[7]

इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र में भारद्वाज इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे इन्द्र! शत्रुओं के नाश के लिए न नष्ट होने वाली, बड़ी निश्चित कल्याण करने वाली शक्ति हमें प्रदान करो। हे वज्रधारी इन्द्र! जिस शक्ति से माननीय दास तथा आर्य (=बलवान शत्रु) का हिंसन करते हैं।[8] एक अन्य मन्त्र में भारद्वाज ऋषि इन्द्र और अग्नि की स्तुति करते हुए कहता है कि हे सद्व्यवहारों के पालक

---

१ अष्टाध्यायी, ३ १ १२४
२ वही, ३ १ १०३
३ निघण्टु २ २२
४ अष्टाध्यायी ४ १ ९२
५ तुल०—निरुक्त, ६ २६
आर्य ईश्वरपुत्रः।
६ अष्टाध्यायी, ४ ३ १२०
७ ऋग्वेद ६ २५ २
अभि स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजा विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥
८ वही, ६ २२ १०
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥

इन्द्र! तथा अग्ने! आप दोनों दास (=कमजोर व उपक्षीण शत्रु) तथा आर्य (=बलवान शत्रु) इन दोनों का हनन करते हो। तुम्हीं ने सब द्वेषियों का हनन किया है।[1]

इन मन्त्रों में प्रथम में तो आर्य पद का श्रेष्ठ अर्थ लिया गया है तथा शेष दो मन्त्रों में आर्य पद का आक्रमण करने योग्य बलवान शत्रु अर्थ लिया गया है।

आर्य शब्द का श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए[2], इन्द्र के विशेषण के लिए[3] सोम के विशेषण के लिए[4], ज्योति के विशेषण के लिए[5] व्रत के विशेषण के लिए,[6] प्रजा के विशेषण के लिए[7] व वर्ण के विशेषण के लिए प्रयोग हुआ है। इस प्रकार ऋग्वेद में आर्य शब्द विविध[8] अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

आर्यों के विरोधी शत्रु ही अनार्य कहलाए।

(४) अहि

अहि[9] शब्द व्याप्ति अर्थ वाचक 'अह' धातु से उणादि इन्[10] प्रत्यय से निष्पन्न होता है।[11] मेघ के नामों में अहि' शब्द को गिना है।[12] अह्रियनात् एति अन्तरिक्षे' कह कर अहि की व्याख्या की गई है तथा अहि' शब्द 'इ' धातु से भी निष्पन्न माना

---

१ ऋग्वेद, ६ ६० ६
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अपद्विष ॥
२ वही, १ १०३ ३, दस्यवे हेतिमार्य सहोवर्धया द्युम्नमिन्द्र।
वही, १ १०३ ८, यजमानमार्य प्रावत।
वही, १० ४९ ३, न यो रर आर्य नाम दस्यवे।
३ वही, ८ ५ ३४ ६ यथावश नयति दासमार्य।
वही, १० १३८ ३ विदद दासाय प्रतिमानमार्य।
४ वही, ९ ६३ ५, कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
५ वही, १० ४३ ४ ज्योतिरार्यम्।
६ वही, १० ६५ ११, आर्याव्रता विसृजन्त।
७ वही, ७ ३३ ७—तिस्र प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा।
८ वही, ३ ३४ ९
आर्य वर्ण म।
९ यजुर्वेद ५ ३३
१० उणादि सूत्र ४ ११२
११ यजुर्वेद भाष्य विवरण (प्रथम भाग), पृ० ४८९
१२ निघण्टु, १ १०

गया है।[1] 'अहि' का अर्थ सब विद्वानों ने व्यापनशील किया है। व्यापनशील मेघ, सूर्य, शत्रु आदि अर्थ में कई स्थलों पर प्राप्त होता है।[2] स्वामी जी ने 'आहन्ति इति अहिः मेघः' सर्वोत्तम निर्वचन किया है। आङ् उपसर्ग पूर्वक 'हन' धातु से उणादि प्रत्यय[3] करके भी इसे सिद्ध किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैदिक मन्त्रों व देवताओं की विवेचना करते हुए श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि से ही अर्थ व अभिप्राय प्रस्तुत किया है। श्री अरविन्द के अनुसार इन्द्र प्राण मय चेतना की सीमितताओं से मुक्त मनःशक्ति है। वह दिव्य प्रकाश का प्रदाता है। महत् शक्ति के देवता हैं। इन्द्र वृत्रासुर संग्राम में शक्तिशाली जीवात्मा रूप इन्द्र पाप रूप वृत्र को नष्ट कर देता है।

---

१ निरुक्त, २.१७
२ दयानन्द वैदिक कोश, पृ० ११५
३ उणादि सूत्र, ४.१३८

सप्तम अध्याय

उपसहार

प्रस्तुत ग्रन्थ यजुर्वेद-भाष्य मे 'इन्द्र' एव 'मरुत '' के प्रथम अध्याय मे स्वामी दयानन्द की दृष्टि मे वेद और वेदाथ का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। भारत के पुनर्जागरण मे स्वामी दयानन्द का योगदान सर्वविदित है। स्वामी जी ने पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य मे अभिभूत भारतीय दृष्टि को आत्म निरीक्षण की प्रेरणा दी और भारतीय जनता के नराश्य भावयुक्त हृदयो म आत्मगौरव की भावना उत्पन्न की। स्वामी जी न 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है इस मान्यता की स्थापना की, और लौटो वेदो की ओर' का उद्घोष गुञ्जाया। 'वेत्ति चराचर जगत स जगदीश्वर', 'विदन्ति येन स ऋग्वेदादिवा इति वेद' (यजुर्वेद भाष्य ७ २१) इस प्रकार स्वामी जी द्वारा 'वेद' शब्द का अथ 'चराचर को जानने वाला जगदीश्वर' या 'जिससे लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं वह ऋग्वेदादि' किया गया है। अन्तोदात्त वेद शब्द ग्रन्थ विशेष का वाचक है एवम् आद्युदात्त वेद शब्द ज्ञान का वाचक है। अपौरुषेय ज्ञान का अधिष्ठान होने के कारण चार मूल वैदिक सहिताओ को ही वेद माना गया है। वेदो की शाखाओ का मूल वेद के रूप मे स्वीकार नही कर सकते क्योकि इन शाखाओ का अविर्भाव प्रवचन भेद और पाठ भेद के आधार पर हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थ भी मूल वेद स्वीकार नही किए जा सकते क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थो मे ब्रह्म अर्थात वेद का व्याख्यान किया गया है। यह व्याख्यान यज्ञ परक प्रतीकात्मक और सकतात्मक है।

स्वामी जी की दृष्टि से वेद कवल कम काण्ड के ग्रन्थ नही हैं। वेदो मे जीवन निर्माण की सभी शिक्षाए विद्यमान हैं। वेदो म मुख्य रूप से ब्रह्म या परमात्मा का प्रतिपादन है। वेद समस्त आध्यात्मिक और व्यावहारिक ज्ञान के भण्डार हैं। वेदो म सदाचरण रूप धम का उपदेश है। कृषि और शिल्प कला के निर्देश एवम आधुनिक ज्ञान विज्ञान के बीज भी वेदो मे विद्यमान हैं। व्यक्ति समाज और राष्ट्र के निर्माण मे उपयोगी सिद्ध होन वाली सभी विद्याओ का मूल वेदो मे है। स्वामी जी के अनुसार ऋग्वेद की शाकल सहिता, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि सहिता, सामवेद की कौथुमी सहिता और अथववेद की शौनक सहिता क्रमश वायु, आदित्य अङ्गिरा और अग्नि इन चार आप ऋषियो पर प्रकट हुई। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गन्धव वेद और अथववेद का स्थापत्य शास्त्र ये चार उपवेद हैं।

चारो वेदो के भिन्न भिन्न पद पाठ हैं इन्हे प्रकृति प्रत्यय आदि की दृष्टि से वेदो का प्रथम व्याख्यान माना जा सकता है। इन्ह पद पाठो के द्वारा निर्धारित प्रकृति-प्रत्यय विभाग को स्वीकार करना व्याख्याकारो के लिए पूर्णरूपेण अनिवार्य नही। वेदो के अनुक्रमणी ग्रथ भी उपलब्ध हैं। इनमे मन्त्रो के ऋषि देवता, छन्द आदि का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद म देवताओ की स्तुति की गई है। गद्यात्मक मन्त्रो का सकलन यजुर्वेद मे मिलता है। जिन मन्त्रो मे अक्षरो का नियत रूप नही है वे यजु कहलाते हैं। ऋक मन्त्रो क ऊपर गाये जाने वाले गान ही गेय और गानात्मक रूप होने के कारण साम कहे गए।

ब्राह्मण ग्रन्थो मे ऋग्वेद म अग्नि यजुर्वेद म वायु तथा सामवेद म आदित्य ही प्रधान देवता माने गए हैं। मन्त्रो के ऋषियो का नाम तो उनके द्वारा मन्त्रो का दर्शन किए जाने के कारण प्रसिद्ध हुआ। किन्तु मन्त्र का देवता निर्धारण करते हुए मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय को ही मुख्य आधार माना गया है।

जिन मन्त्रो म देवता अनादिष्ट है उनमें प्रकरण के अनुसार देवता का निर्णय किया जाता है। वेद मन्त्रो म परमेश्वर ही परम उपास्य देव क रूप म स्वीकार किए गऐ हैं। स्कन्द दुर्ग हरिस्वामी उवट, भट्ट भास्कर आनन्दतीर्थ जयतीर्थ, राघवेन्द्र यति शत्रुघ्न वेदपाल इत्यादि वेद भाष्यकारो के मत मे आध्यात्मिक, आधिदैविक एवम आधियाज्ञिक, तीन प्रकार से वेदार्थ किया जाता है। वेद का प्रत्यक शब्द यौगिक अथवा योग रूढि है। वेद मे प्रतीयमान वैयक्तिक नाम, ऋषि नाम, स्थान नाम, एतिहासिक नाम नही अपितु उन विशेषताओ का बतलाने वाले हैं। वैदिक शब्दो के सम्बन्ध म यौगिकता का सिद्धान्त मानने पर वेदो म अनित्य इतिहास का स्वीकार करना असगत लगता है। धातुओ की अनेकार्थता, सस्कृत व्याकरण के नियमो का व्यत्यय मन्त्रार्थ की त्रिविध प्रक्रिया एव स्वामी दयानन्द द्वारा स्वीकृत मन्त्रार्थ की द्विविध प्रक्रिया के सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखत हुए वेदार्थ को समझना ही उचित प्रतीत होता है। आचार्य शौनक, हरिस्वामी उवट गौरधर, रावण व महीधर ने मन्त्रो के यज्ञपरक अर्थ ही किए। स्वामी जी के द्वारा वेद के शब्दो को यौगिक अथवा योगरूढि मान कर पारमार्थिक व व्यावहारिक अर्थ प्रस्तुत किए गए।

ऋग्वेद शाकल सहिता, शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि सहिता (माध्यन्दिन) सामवेद कौथुम सहिता वा अथववेद शौनक सहिता ये ईश्वर कृत मानी जाती हैं। स्कन्द, दुर्ग हरिस्वामी उवट, भट्ट भास्कर, आनन्दतीर्थ,जयतीर्थ राघवेन्द्रयति, शत्रुघ्न, वेदपाल वन भाष्यकारो के मत म आध्यात्मिक, आधिदैविक एव आधियाज्ञिक, तीन प्रकार से वेदार्थ किया जाता है। स्वामी दयानन्द ने पारमार्थिक और व्यावहारिक म त्रार्थ प्रस्तुत किया है। सभी उपलब्ध भाष्यो म दयानन्द का भाष्य ही ऐसा भाष्य है जिसके आधार पर वेद सर्वोपयोगी एव मानव समाज का उन्नति की प्रेरणा देने वाला सिद्ध हो सकता है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन सहिता को स्वामी दयानन्द ने मूल यजुर्वेद

स्वीकार किया है। 'यजुष' शब्द 'यज' धातु से उसि' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है। 'यजुष' यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र हैं। पाणिनि मुनि के अनुसार 'यजु' धातु देव-पूजा, सङ्गतिकरण एवं दान इन त्रिविध अर्थ में प्रयुक्त होती है। स्वामी जी के मत के अनुसार 'यजन्ति येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुष, पूजयन्ति शिल्प विद्या सङ्गतिकरण च कुर्वन्ति शुभ विद्यादानं च कुर्वन्ति, तद् यजु, इस प्रकार त्रिविध अर्थ की सङ्गति है।

द्वितीय अध्याय में 'इन्द्र' एवं मरुत' का व्याकरणिक विवेचन ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि में इनका अभिप्राय है, इन्द्र एवं मरुत् का स्वरूप वर्णित है। आचार्य पाणिनि मुनि द्वारा 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रमाला' (उणादि सूत्र, २ २९) सूत्र में इन्द्र' शब्द को निपातित किया गया है। इदि परमैश्वर्ये' धातु से कर्त्ता में रक प्रत्यय और नुमागम करने से इन्द्र शब्द बनता है। इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति इति इन्द्र' अर्थात जो सर्वोच्च ऐश्वर्य वाला हो, वह इन्द्र है। शासक होना भी ऐश्वर्य का लक्षण है। अतः 'इन्द्र' शासक भी है। जगत का शासक ब्रह्म, और मण्डल का शासक सूर्य वायु विद्युत, पृथ्वी पर राजा सम्राट राष्ट्राध्यक्ष अथवा सेनापति तथा देह में जीवात्मा, प्राण और मन वैदिक वाङ्मय में ये सब इन्द्र पद वाच्य हैं। निरुक्तकार यास्काचार्य ने इन्द्र पद का निर्वचन निम्न प्रकार किया है।

'इन्द्र इरा दृणाति इति वा इरां ददाति वा इरां दधाति इति वा इरां दारयते।'

इन्द्र का इन्द्र नाम इसलिए है कि वह 'इरा' व्रीह्यादि अन्न के बीज को क्लिन्न कर अङ्कुरावस्था में बदल देता है। 'इरा' अन्न को प्रदान करता है। अन्न को धारण करता है।

'मृग्रोरुति' (उणादि सूत्र १ ४) इस सूत्र द्वारा 'मृङ् प्राणत्यागे' (तुदादि) धातु में उति प्रत्यय करने पर 'मरुत' शब्द बनता है। इसमें गमनागमन क्रियावान् वायु का ग्रहण किया जाता है। मरुत ऋत्विङ् नाम' (निघण्टु, ३ १८) 'मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनो वा महद्द्रवन्तीति वा'। निघण्टु ११ १४)।

मरुत (अ मित राविण) अपरिमित शब्द करने वाले, (अ मित-रोचन) अपरिमित प्रकाश देने वाले, (मरुत रवन्ति) बड़ा शब्द करते हैं वे मरुत हैं।

इन्द्र शब्द का आध्यात्मपरक अर्थ जीवात्मा व परमात्मा है। अन्तःकरण और प्राण भी इन्द्र पद वाच्य है। अधिदैव अर्थ में इन्द्र वायु, विद्युत तथा सूर्य का वाचक है। अधिभूत अर्थ में राष्ट्र के सर्वोच्च शासक, राजा या सेनाध्यक्ष के रूप में इन्द्र पद प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र वैदिक आर्यों का जातीय देवता है।

तृतीय अध्याय में पाश्चात्य एवं तदनुयायी एतद्देशीय विद्वानों के अभिमत 'इन्द्र' एवं 'मरुत का स्थूलस्वरूप वर्णित है। पाश्चात्य वैदिक विद्वानों में कोलब्रुक, विल्सन रुडाल्फ राथ मैक्समूलर, ग्रिफिथ, ग्रासमान, ह्विटनी लुडविग, पिशल गैल्डनर

मैक्डानल ओल्डन बर्ग, ब्लूमफील्ड, विंटरनित्स और कीथ ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने इन्द्र एवं मरुत का स्थूल स्वरूप ही प्रस्तुत किया है। इनसे प्रभावित होकर एतद्देशीय विद्वान् राजेन्द्रलाल मित्र आदि ने उन्हीं की बातों का समर्थन किया है।

चतुर्थ अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं 'मरुत' का पारमार्थिक स्वरूप वर्णित है। दयानन्द सभी वैदिक देवता वाचक शब्दों को पारमार्थिक और व्यावहारिक तत्वों का बोधक मानते हैं। मन्त्र त्रिविध अर्थों के वाचक हैं जिनमें से आधियाज्ञिक अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मीमांसा, श्रौतसूत्र आदि में उल्लिखित हैं। महीधर उव्वट सायण आदि वेद के व्याख्याकार याज्ञिक अर्थ ही प्रस्तुत करते हैं। स्वामीजी ने मन्त्रों का पारमार्थिक एवं व्यावहारिक अर्थ किया है। पारमार्थिक शब्द से परम अर्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति अथवा परमतत्त्व रूप परमात्मा का जीवन में सतत प्रत्यक्षीकरण अभिप्रेत है।

पञ्चम अध्याय में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' एवं मरुत' का व्यावहारिक स्वरूप वर्णित किया गया है। व्यावहारिक शब्द से व्यवहार सम्बन्धित मानवोपयोगी संसार की सुव्यवस्था के लिए राजा प्रजा विद्वान् योगी गृहस्थ आदि के कर्तव्य व विविध भौतिक विद्याओं के निर्देश से युक्त वेद मन्त्रार्थ अभीष्ट है। अधिदैव में इन्द्र, वायु, विद्युत तथा सूर्य हैं। अधिभूत में इन्द्र राष्ट्र में सर्वोच्च शासक, राजा या सेना अध्यक्ष हैं।

इन्द्र एवं मरुत शब्द के जितने भी व्यावहारिक अर्थ स्वामी जी ने किए उनका मूल आधार वैदिक शब्दों की यौगिकता का सिद्धान्त ही है। इस व्यावहारिक मन्त्रार्थ द्वारा वेद व्याख्या को नई दिशा व नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। इस पुस्तक के षष्ठ अध्याय में इन्द्र एवं मरुत से सम्बद्ध कुछ विचारणीय बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए श्री अरविन्द के अनुसार इन्द्र एवं मरुत का अभिप्राय वृत्र वध के प्रसंग में इन्द्र की पारमार्थिक एवं व्यावहारिक संगति एवं असुर दस्यु अनार्य, अहि, इत्यादि शब्दों का अर्थ विवेचन तथा इस प्रसंग में इन्द्र शब्द के अभिप्राय की संगति को प्रस्तुत किया गया है। वेद रहस्य नामक ग्रन्थ में आध्यात्मिक दृष्टि से ही श्री अरविन्द ने मन्त्रार्थ की व्याख्यान किया है। इन्होंने इन्द्र को दिव्य प्रकाश का प्रदाता कहा है। मरुत भी तात्त्विक दृष्टि से शक्ति के देवता हैं। मरुतों की शक्तियाँ मन के अन्दर ही सफल होती हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से वृत्र शब्द का अर्थ भी आत्मतत्त्व पर अविद्या का आवरण डाल देने वाली पाप भावना किया गया है। वेदों में वृत्र को इन्द्र के शत्रु रूप में प्रस्तुत किया गया है। वृत्र मेघ एवं अन्धकार का मूर्त रूप भी माना जाता है। इन्द्र सूर्य है। वह अपनी किरणों के वज्र से वृत्र अर्थात् मेघ को मारने के कारण वृत्रहा भी कहा गया है।

'वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा' (ऋग्वेद, ८ ६ ३१)

यह एक आलंकारिक कथा है जो इन्द्र (प्रकाश अथवा सत्य) और वृत्र (अंधकार अथवा असत्य) के संग्राम में इन्द्र (प्रकाश अथवा सत्य) की विजय का संदेश देती है।

सप्तम अध्याय उपसंहारात्मक है।

परिशिष्ट में (क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण,

(ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण और

(ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द की वेद भाष्य शैली अपनी लोक व्यवहारोपयोगिता के कारण अधिक रुचिकर एवं लाभकारी है। वैदिक शब्दों का अर्थ करते हुए मुख्यतः नैरुक्त और यौगिक प्रक्रिया का अवलम्बन किया गया है। सार रूप में स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में इन्द्र पद परमेश्वर, जीवात्मा, सूर्य, वायु, विद्युत, योगी, विद्वान, राजा, सेनापति, ऐश्वर्यवान तथा ऐश्वर्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार मरुत भी वायु, विद्वान व ऋत्विक का बोधक है।

सामान्य रूप से स्वामी दयानन्द कृत यजुर्वेद-भाष्य में अग्नि, इन्द्र, सोम, वरुण आदि विविध देवताओं का प्रसंग आने पर तत् तत् देवता पर्याय तत् तत् प्रकरणानुसार मन्त्रार्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र एवं मरुत विषयक स्तुति भी उपलब्ध होती है। परन्तु कुछ गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये देवता ब्रह्माण्ड (बहिर्जगत) और अन्तर्जगत में स्थित विविध पदार्थ हैं। वेद मन्त्रों में इनके गुण कर्म स्वभावों का वर्णन किया गया है। देवता किन्हीं विग्रहवती शरीरधारी चेतन व्यक्तियों का नाम नहीं है। न ही वे आकाश में रहकर अपना कोई काम करती है। कुछ विद्वानों के मत में वेदों के देवता के विषय में सर्वानुक्रमणी तथा बृहद्देवतादि ही परम प्रमाण हैं अर्थात् उनसे भिन्न देवता मानना व लिखना अशुद्ध है। वास्तव में 'या तेनोच्यते सा देवता' यह वचन तथा 'तेन वाक्येन यत् प्रतिपाद्य वस्तु सा देवता' यह पद गुरु शिष्य का व्याख्यान सिद्ध करता है कि मन्त्र के प्रतिपाद्य विषय का नाम देवता है। जिस कामना वाला ऋषि मैं अर्थ का स्वामी बनूं इस प्रकार चाहता हुआ जिस देवता की स्तुति करता है, उस देवता वाला वह मन्त्र कहाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शरीरधारी देवताओं का तो वेद में कोई स्थान ही नहीं। मन्त्र सूक्तों में आए हुए देवतावाची शब्द परमेश्वर बोधक है।

यजुर्वेद और यजुर्वेद से सम्बन्धित आर्ष वाङ्मय में इन्द्र और मरुत जिस जिस रूप मे वर्णित हैं उसका एक समीक्षात्मक अध्ययन पूर्व अध्यायो मे किया गया है तथा स्वामी दयानन्द की दृष्टि से इन्द्र और मरुत का पारमार्थिक व व्यावहारिक स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद मे प्रयुक्त इन्द्र शब्द को व्याकरण अनुसार की गई व्युत्पत्ति और निरुक्त शास्त्र अनुसार की गई निरुक्ति से यह सिद्ध हो जाता है कि यजुर्वेद म इन्द्र शब्द रूढि अर्थ का वाचक नही। स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य के अनुसार यह एक यौगिक और योगरूढि शब्द है। स्वामी दयानन्द का भाष्य स्पष्ट रूप म अग्नि मरुत, वायु सूर्य रुद्र सविता आदि नामो से परमात्मा का सप्रमाण ग्रहण करता है। 'इन्द्रेण वायुना' म 'इन्द्र' को विशेष्य माना है। मूलवेद के इस उदाहरण द्वारा स्वामी दयानन्द ने विशेष्य विशेषण भाव की प्रक्रिया का दिग्दर्शन कराया है।

ऐतरेय शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थो की प्रतीकात्मक व्याख्याए भी इन्द्रादि शब्दो की बहुअर्थकता का सिद्ध करती हैं। य किसी व्यक्ति विशेष क वाचक नही हैं। वैदिक शब्दो के यौगिक प्रक्रिया के आधार पर अर्थ होते हैं। योरुपीयन स्कालर और उनके अनुगामी बहुत से भारतीय विद्वान भी यह मानते हैं कि इन्द्र', 'अङ्गिरा' और 'कण्व' आदि व्यक्ति विशेषो क नाम हैं जो कि वेदो म स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। किन्तु विवेचन करने से पता चलता है कि ये विशेषणवाची शब्द हैं। व्यक्ति विशेष में आगे आतिशायिक प्रत्यय 'तर और 'तम' नही आ सकते। 'इदि परमैश्वर्य' धातु से इन्द्र शब्द की निष्पत्ति होती है। इसमे परमैश्वर्य अर्थ अन्तर्निहित है। इसस सामर्थ्यवत्ता, स्वामित्व और धनवैभव के आधिक्य का बोध होता है। सर्वगत सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप इन्द्र अद्वितीय और सबसे महान और सबका कर्त्ता धर्त्ता सहर्त्ता होने से सब मनुष्यो के द्वारा ज्ञेय तथा उपास्य है। जीवात्मा का नाम भी इन्द्र है। इसी कारण चक्षु, श्रोत्र वाक् कर, चरणादि करणो को इन्द्रिय कहना सार्थक प्रतीत होता है। परमैश्वर्य से युक्त होने के कारण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड म सर्वगत आकाशवत् व्यापक ब्रह्म इन्द्र है। इस शरीर मे जीवात्मा का राज्य है वही सभी इन्द्रियो का स्वामी है। इसीलिए शरीर मे जीवात्मा ही इन्द्र पद वाच्य है। इसी प्रकार गृह ग्राम नगर जनपद, राज्य, राष्ट्र और भूमण्डल मे क्रमश गृहपति ग्रामणी, नगराधिपति जनपदाधिप, राष्ट्राधिप, और भूमण्डल पति ही स्वस्वक्षेत्र म सर्वोच्च शक्तिसम्पन्न हैं। अतएव व इन्द्र पद वाच्य हैं।

स्वामी दयानन्द ने पारमार्थिक दृष्टि स इन्द्र के परमात्मा व जीवात्मा अर्थ किए हैं। व्यावहारिक दृष्टि मे योगी, राजा सम्राट् सेनापति सभापति, विद्वान, अध्यापक उपदेशक शूरवीर ऐश्वर्यशाली पुरुष सूर्य, विद्युत व वायु आदि अर्थ किए गए हैं। अन्य वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामी वेंकटमाधव मुद्गल और माधव इन्द्र का अर्थ करते हुए याज्ञिक प्रक्रिया का ही अनुगमन करते हैं। इनकी याज्ञिक दृष्टि म इन्द्र

शरीरधारी दिव्य पुरुष और स्वर्गलोक का राजा है।[1] वृत्रहन्ता अर्थात वृत्र को मारने वाला यह विशेषण इन्द्र के लिए दिया गया है। इन्द्र के द्वारा वृत्र वध प्रसंग वैदिक आख्यान के रूप में प्रसिद्ध है। अग्नि, बृहस्पति और सोम देव भी वृत्र हन्ता के रूप में बतलाए गए हैं किन्तु इन्द्र सर्वाधिक मारने वाला है।[2] आधिभौतिक दृष्टि से वृत्र दुष्ट है तथा हिंसक प्राणी है। सात्त्वबल से सम्पन्न पुरुष इन्द्र ही इसे विनष्ट कर सकता है। आधिदैविक दृष्टि में मेघ ही वृत्र का रूप है। सूर्य या वायुयुक्त विद्युत रूप इन्द्र ही इसको नष्ट करने वाला है। आध्यात्मिक दृष्टि से चित्त की पाप संयुक्त दुष्ट वासनाएं ही वृत्र पद वाच्य हैं। सशक्त जीवात्मा ही इन्द्रियों का सन्मार्ग पर ला सकता है। पाप रूप वृत्र को सशक्त जीवात्मा नष्ट कर सकता है। यजुर्वेद में इन्द्र की बल, पराक्रम व धनैश्वर्य सम्पन्नता सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख है। साथ ही इन्द्र मरुत के सखा, वृष्टि कारक वायवधक, प्रमाद रहित, धनदाता, यजमान के रक्षक तथा वज्रधारक के रूप में उल्लिखित है। युद्ध में लड़ने हेतु शक्ति प्राप्त करने के लिए इन्द्र सोमपान करते हैं। पर्जन्य, विशौजा, अपंत, गोत्रभिद आदि अनेक विशेषणों से इन्द्र का उल्लेख किया गया है। वेदों में वर्णित इन्द्र एक व्यक्ति विशेष नहीं माना जा सकता। वैदिक शब्द यौगिक हैं। यौगिक शब्दों की यह विशेषता होती है कि वे एक या अनेक धातुओं से निष्पन्न किए जा सकते हैं। निरुक्त प्रक्रियानुसार वैदिक शब्दों का निर्वचन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। धातु भी अनेकार्थक होते हैं। अतः वेदों में शब्द रूढ़ि अर्थ ■ वाचक नहीं। इसी कारण परम ऐश्वर्य सम्पन्न होने से परमात्मा, जीवात्मा, वायु, विद्युत सूर्य, यजमान, राजा, सम्राट, शूरवीर आदि को वेद में इन्द्र पद से अभिव्यक्त किया गया है। इन्द्र को अन्तरिक्ष स्थानी देवता माना जाता है। यास्क कृत निरुक्त, शौनक कृत बृहद्देवता व कात्यायन-कृत सर्वानुक्रमणी के अनुसार अन्तरिक्ष स्थानीय देवता इन्द्र का सम्बन्ध त्रिष्टुप छन्द से है। त्रिष्टुप छन्द से युक्त मन्त्र गायत्री मन्त्र से लम्बे होते हैं इसमें अधिक देरी से आहुति डाली जाती है। परमाणु सूक्ष्म होते हैं। वायु उन्हें अधिक ऊपर ले जाती है। विभिन्न छन्दों का वायुमण्डल में विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। आधुनिक ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से इसका सूक्ष्मतुलनात्मक अनुसंधान अपेक्षित है।

---

१ (क) ऋग्वेदभाष्य (उदगीथ), १० ३२ ८।

महाभाष्ययोगादिन्द्रो यद यद रूपं कामयते तद भवति।

(ख) ऋग्भाष्य (सायण), ८ १२ १६।

इन्द्रो बहुषु प्रदेशेषु युगपत प्रवृत्तेषु यागेषु तत्र तत्र हविः स्वीकरणाय बहूनि शरीराण्याददानः स्वयमेकोऽप्यनेकः सस्तत्र तत्र संनिधत्ते॥

२ ऋग्वेद, ६ १६ ३४ ११३ ८, १० २६ ६, ६ ३७ ५।

वैदिक ग्रन्थों में अग्नि, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं का ऋतु, सवन एवं स्तोम के साथ सम्बन्ध किसी सूक्ष्म साम्य के आधार पर ही किया गया है। यह भी शोध का विषय है।[1]

इन्द्र परमेश्वर का नाम है। वेद मन्त्रों में इन्द्र के परमात्मपरक अर्थ वाले अनेक पद प्रयुक्त हुए हैं। वेद में आए इन्द्र के विशेषणों को दृष्टिगत रखते हुए इन्द्र का परमेश्वर अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

वह अनून' अर्थात् किसी स्थान पर न्यून नहीं सब स्थानों पर एक जैसा भरा है सर्वव्यापक है। दिविक्षा द्युक्ष' अर्थात् द्युलोक में आकाश में रहने वाला है। स्वपति अर्थात् द्युलोक अथवा आकाश का स्वामी है। विश्व सम्पृथु अर्थात् विश्व के चारों ओर भरपूर विश्व से भी अधिक व्यापक है। अन्तरिक्षप्रा' अन्तरिक्ष में बीच के अवकाश में परिपूर्ण होकर रहने वाला है। विभु' अर्थात व्यापक है। 'विश्वभू' अर्थात विश्व में भरपूर व विश्व भर में रहने वाला है। 'दिविम्मश अर्थात् आकाश में व्यापक ये शब्द इन्द्र की विश्वव्यापकता को बताते हैं। अतः सर्वव्यापक परमेश्वर ही इन्द्र है।

विश्वकर्मा' अर्थात सम्पूर्ण विश्व की रचना करने वाला लोककृत अर्थात सब सूर्यादि लोकों का निर्माण करने वाला, 'विश्वमना' अर्थात विश्व जितने व्यापक मन वाला विश्ववेदा अर्थात विश्व को यथावत जानने वाला भी इन्द्र है। विश्व की रचना करने वाला और विश्व को जानने वाला इन्द्र ही परमेश्वर है।

'विश्वरूप अर्थात विश्व ही जिसका रूप है विश्व में जो कुछ भी विद्यमान वस्तु है वह सब इन्द्र का ही रूप है। नाना रूप धारण करके इन्द्र ही सर्वत्र विराजमान है। विश्वदेव अर्थात् सब देव जिसके अंश हैं ऐसा इन्द्र है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि सब देवता जिसके शरीर के अंग प्रत्यंग हैं। यह विश्वरूप परमेश्वर का ही वर्णन है। श्रीमद्भगवद्गीता का एकादश अध्याय श्री भगवान के विश्वरूप दर्शन कराने वाला है। अतः यह विश्वरूप इन्द्र का ही है।

स्वरोचि अर्थात उसकी चमक निज तेज है वह किसी दूसरे के तेज से तेजस्वी नहीं बना है वह अपने तेज से ही सदा प्रकाशित होता है।

शुक्ल यजुर्वेद में मरुतों के सम्बन्ध में पृश्नि' अर्थात माता एवं 'पृषती' अर्थात घोड़ी का उल्लेख मिलता है। उन्हें घातक होने के कारण प्रघासिन कहा गया है। इन्द्र भी मरुतों का सखा है। मरुतों के साथ आकर सोमपान करने की प्रार्थना भी इन्द्र से की गई है। मरुत इन्द्र का अनुगमन करते हैं।

ये मरुत् परस्पर (आपस में) समान भाई हैं। अज्येष्टास' हैं अर्थात न इनमें कोई बड़ा है (अमध्यमास) अर्थात न इनमें कोई मध्यम है और (अकनिष्ठास) अर्थात्

1 वेदवाणी (वैदिक वृष्टि विज्ञान), माघ, १६७२, पृ० २०

न इनमें कोई कनिष्ठ (छोटा) है। अमध्यमा' अर्थात् इनमें कोई नीच भी नहीं है। 'ज्येष्ठास' अर्थात् गुणों में ये श्रेष्ठ हैं और 'वृद्धा' अर्थात् गुणों में ये बड़े भी हैं। 'अनमता' अर्थात् किसी के सामने ये नमते भी नहीं। 'सुजातस' अर्थात् कुलीन हैं और 'भ्रातर' अर्थात् परस्पर भाई भाई हैं। 'नृषाच' अर्थात् मरुत जनता की सेवा करने वाले हैं। 'नर वीरा' अर्थात् ये नेता व वीर हैं। 'त्रातार' अर्थात् जनता की रक्षा करने वाले हैं। 'मानुषास' व 'विश्वकृष्ट्य' अर्थात् मनुष्य हैं व सब मानव ही मरुत हैं। 'अद्वेष' अर्थात् किसी से द्वेष न करने वाले हैं 'अमवन्त' अर्थात् बलवान हैं। ये 'धादवयम' अर्थात् बड़े शरीर वाले हैं। 'पूतदक्षस' अर्थात् पवित्र कार्यों में अपने बल को अर्पित करने वाले हैं।

मरुतों का स्वरूप अध्यात्म में प्राण है अधिदैवत में वायु तथा अधिभूत में मानवों में वीर है।

वेद में उल्लिखित देवताओं का सूक्ष्म अध्ययन व विश्लेषण एक दीर्घ व परिश्रम साध्य कार्य है। इन्द्र विषयक एवं मरुत विषयक प्रमुख बातों का इस पुस्तक में समावेश कर दिया गया है। स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य को मूल आधार बना कर इन्द्र व मरुत् के पारमार्थिक व व्यावहारिक स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है। यह सम्भव है कि कतिपय पहलुओं का विस्तृत विवेचन न हुआ हो। नवीन शोधार्थी उन पर आगे विचार कर सकेंगे। इन्द्र व मरुत देवता के सम्बन्ध में व्यक्ति-विशेष की धारणा इस ग्रन्थ के आधार पर पूर्णरूपेण निरस्त हो जाती है। वेद एक उदात्त, महनीय, ज्ञानमय और अति गम्भीर शब्द राशि है। विभिन्न विद्वान विभिन्न दृष्टियों से वेद-मन्त्रों व वेद शब्दों का व्याख्यान करते आए हैं। ऋषि तुल्य वेदाङ्गविद् विद्वानों की दृष्टि वेदों के सूक्ष्मार्थ समझ सकती है अन्य अल्पमति व्यक्ति इसमें सर्वथा असमर्थ हैं।

परिशिष्ट

(क) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य में 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की पारमार्थिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

(१) परमात्मा अर्थ वाले मन्त्र

क्रम संख्या	अध्याय मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
१	२ १०	इन्द्र	परमेश्वर
२	३ ३४	इन्द्र !	सुख प्रदेश्वर
३	३ ५२	इन्द्र !	जगदीश्वर
४	६ २	इन्द्राय	जगदीश्वर के लिए
५	६ ३	इन्द्राय	परमेश्वर के लिए
६	१७ ६१	इन्द्रम	परमात्मा
७	१७ ६३	इन्द्र	पालन करने वाला (ईश्वर)
८	२० ३०	इन्द्राय	ईश्वर के लिए
९	२८ २१	इन्द्रेण	ईश्वर के साथ
१०	३३ २३	इन्द्रस्य	परमेश्वर का
११	३३ २४	इन्द्र	परमात्मा का
१२	३६ ८	इन्द्र	विद्युत तुल्य ईश्वर
१३	३६ २६	इन्द्र !	विद्युत तुल्य ईश्वर !

(२) जीवात्मा अथवा जीव अर्थ वाले मन्त्र

क्रम संख्या	अध्याय मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
१	१६ ७६	इन्द्रस्य	जीव का
२	२२ ५	इन्द्राग्निभ्याम	जीव व अग्नि के लिए
३	२८ ८	इन्द्रपत्नी	जीव की पत्नी (के समान वाणी)
४	२८ ९	इन्द्राय	जीव के लिए
५	२९ १८	इन्द्रम्	सूर्य के समान जीव को

क्रम सख्या	अध्याय मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	पारमार्थिक अर्थ
६	२८ २६	इन्द्रम	जीव का
७	२८ २८	इन्द्रम्	जीव को
८	२८ ३३	इन्द्रम्	जीव को
९	२८ ३५	इन्द्रे	जीव को
१०	२८ ३६	इन्द्रे	जीव म
११	२८ ३७	इन्द्रम्	जीव को
१२	२८ ३९	इन्द्रम्	जीव को
१३	२८ ४०	इन्द्रे	जीव को
१४	३२ १३	इन्द्रस्य	जीव को

(ख) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे 'इन्द्र' देवता वाले जिन मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

क्रम सख्या	अध्याय-मन्त्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१	१ १३	इन्द्र	सूय लोक
२	२ २२	इन्द्र	सूय लोक
३,	३ ५१	इन्द्र ।	सभापते ।
४	६ ३५	इन्द्रा ।	परमैश्वर्यान्वित सभापते ।
५	७,८	इन्द्रवायू	प्राण व सूर्य के समान योग के उपदेष्टा व अभ्यास करन वाले
		इन्द्रवायुभ्याम्	बिजली और प्राणवायु के समान योग वृद्धि और समाधि, चढाने और उतारन की शक्तियो से
६,	७ ३९	इन्द्राग्नी	सूय व अग्नि के समान प्रकाशमान सभापति व सभासद
७	८ ४४	इन्द्र ।	सेनापत ।
		इन्द्राय	एश्वय दन वाले इस युद्ध के लिए
८	८ ५५	इन्द्र	विद्युत।
९	९ २२	इन्द्र	सभापति राजन्

क्रम संख्या	अध्याय-मंत्र संख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१०	१२ ५६	इन्द्रम	परमैश्वर्य को
११	१४ ११	इन्द्राग्नी	बिजली और सूर्य के समान वर्तमान स्त्री पुरुषो ।
१२	१५ ६१	इन्द्रम	परमैश्वर्ययुक्त सभेश
१३	१७ ३३	इन्द्र	शत्रुओ का विदारक सेनेश
१४	१७ ३४	इन्द्रेण	परम ऐश्वर्य का उत्पन्न करने वाले सेनापति के साथ
१५	१७ ३५	इन्द्र	शत्रुओ को मारने वाला सेनापति
१६	१७ ३७	इन्द्र	युद्ध की उत्तम सामग्री युक्त सेनापति
१७	१७ ३८	इन्द्रम	शत्रु दल विदारक सेनापति को ।
१८	१७ ३९	इन्द्र	सेनेश
१९	१७ ४०	इन्द्र	उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति
२०	१७ ४१	इन्द्रस्य	सेनापति के
२१	१७ ४३	इन्द्र	ऐश्वर्य कारक सेनेश
२२	१७ ५१	इन्द्र	सुखों को धारण करने वाले सेनापति
२३	१७ ६४	इन्द्राग्नी	बिजुली और आग के समान दो सेनापति
२४	१८ ६८	इन्द्र	परमऐश्वर्य युक्त सेनेश
२५	१८ ६९	इन्द्र	शत्रु विदारक सेनेश
		इन्द्र	सभेश
२६	१८ ७०	इन्द्र	सेनेश
२७	१८ ७१	इन्द्र	सेनाध्यक्ष
२८	१९ ६	इन्द्राम	शत्रुविदारण के लिए
२९	१९ ४२	इन्द्रम्	परमैश्वर्ययुक्त जन को
३०	१९ ३३	इन्द्रम्	ऐश्वर्ययुक्त सभा सेनेश को

क्रम सख्या	अध्याय मत्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
३१	१९ ७१	इन्द्र!	सूय के समान वतमान सनश
३२	१९ ९१	इन्द्रस्य	परमेश्वय का
३३	२० ९६	इन्द्र	सुख की इच्छा करने वाले विद्या और ऐश्वय स युक्त जन !
३४	२० ३१	इन्द्राय	परमैश्वयवान् के लिए
३५	२० ३६	इन्द्र	सूय
३६	२० ३९	इन्द्र	जलो का धारण कर्ता सूय
३७	२० ४०	इन्द्रम	परमैश्वय वाले को
३८	२० ४७	इन्द्र	परमैश्वय को धारण करन वाला
३९	२० ४८	इन्द्र	शत्रु विदारक राजा
४०	२० ४९	इन्द्र	ऐश्वय प्रद सेनाधीश
४१	२० ५०	इन्द्रम्	दुष्टो का नाश करने वाले को
४२	२० ५१	इन्द्र	ऐश्वय का बढान वाला राजा
४३	२० ५२	इन्द्र	पिता के समान वतमान सभा का अध्यक्ष
४४	२० ५३	इन्द्र!	उत्तम ऐश्वय के बढाने वाले सेनापत !
४५	२० ५४	इन्द्रम्	शत्रु को मारने वाले को
४६	२० ७०	इन्द्रे	एश्वय मे
४७	२० ८०	इन्द्र	सभापते !
४८	२० ८८	इन्द्र !	विद्या और ऐश्वय से युक्त
४९	२० ८९	इन्द्र !	विद्या और ऐश्वय के बढान वाले
५०	२३ ७	इन्द्रस्य	विद्युत का
५१	२५ ३	इन्द्रम्	ऐश्वय
५२	२५ ८	इन्द्रस्य	विद्युत का
५३	२६ ४	इन्द्र	विद्वन
		इन्द्राय	ऐश्वर्याय

क्रम संख्या	अध्याय-मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
५४	२६ १०	इन्द्र	परमैश्वर्य युक्त राजा
५५	२६ १०	इन्द्राय	परमैश्वर्य के लिए
५६	२७ २२	इन्द्राय	परमैश्वर्य के लिए
५७	२७ ३७	इन्द्र	सूर्य के समान जगत्पालक
५८	२७ ३८	इन्द्र	शत्रुनाशक विद्वन्
५९	२८ १	इन्द्रम	विद्युत नामक अग्नि का
६०	२८ २	इन्द्रम	परमैश्वर्यकारक राजा को
६१	२८ ३	इन्द्रम	परमविद्या ऐश्वर्य सम्पन्न को
६२	२८ ५	इन्द्रम	ऐश्वर्य को
		इन्द्राय	परमैश्वर्य युक्त के लिए
६३	२८ ६	इन्द्रस्य	विद्युत् का
		इन्द्रम्	परमैश्वर्य को
६४	२८ ११	इन्द्रम्	परमैश्वर्य को
		इन्द्र	परमैश्वर्य प्रद जन
६५	२८ १२	इन्द्रम्	परमैश्वर्यकारक विद्वान् को
६६	२८ १३	इन्द्रम	ऐश्वर्य को
६७	२८ १६	इन्द्रम्	सूर्य को
६८	२८ १९	इन्द्र	ऐश्वर्य इच्छुक
		इन्द्रम	विद्युत को
६९	२८ १९	इन्द्रम्	ऐश्वर्य को
७०	२८ २०	इन्द्रम	दारिद्र्यविदारक को
७१	२८ २१	इन्द्रम्	विद्युत का
७२	२८ २५	इन्द्रम्	सूर्य को
७३	२८ २८	इन्द्रम्	विद्यैश्वर्य का
७४	२८ ३२	इन्द्रम	परमैश्वर्य का
७५	२८ ३८	इन्द्रम	अन्नदाता को
७६	३३ १८	इन्द्र !	परमैश्वर्ययुक्त विद्वन !
७७	३३ ७५	इन्द्र !	ऐश्वर्यप्रद विद्वन् !

क्रम संख्या	अध्याय मंत्र संख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
७८	३३ २६	इन्द्र	सूर्य के समान प्रतापी सभेश
७९	३३ २७	इन्द्र !	सभेश
८०	३३ २८	इन्द्र	राजन
८१	३३ २९	इन्द्रम	परम बालयोग से शत्रुओ का विदारक
८२	३३ ४५	इन्द्रवायू	विद्युत् और पवन
८३	३३ ४६	इन्द्रवायू	विद्युत और पवन विद्याविद
८४	३३ ६१	इन्द्राग्नी	सभेश व सेनाधीश
८५	३३ ६३	इन्द्र !	परमैश्वर्ययुक्त विद्वन !
८६	३३ ६४	इन्द्रम	सूर्यम्
८७	३३ ६५	इन्द्रा	परमैश्वर्यवान राजन
८८	३३ ६६	इन्द्र	परमैश्वर्यप्रद
८९	३३ ६७	इन्द्र !	शत्रु विदारक
९०	३३ ८६	इन्द्रवाम	राजा व प्रजाजन
९१	३३ ९३	इन्द्राग्नी	अध्यापक व उपदेशक
९२	३३ ९५	इन्द्र इन्द्र !	परमैश्वर्यवान सभापति राजा परमैश्वर्यपद ! सभापते !
९३	३३ ९६	इन्द्राय	परमैश्वर्य के लिए
९४	३४ १८	इन्द्र !	राजन्
९५	३८ ८	इन्द्राय	परमैश्वर्य के लिए दुख विदारक के लिए

(ग) स्वामी दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य मे 'मरुत' देवता वाले जिन मन्त्रो की व्यावहारिक व्याख्या की गई है उनका विवरण

क्रम संख्या	अध्ययन-मन्त्र संख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अर्थ
१	३ ४४	मरुत	विद्वान् अतिथियो को

क्रम सख्या	अध्याय-मत्र सख्या	प्रयुक्त पद	व्यावहारिक अथ
२	३ ४६	मरुत	ऋत्विज
३	१५ १३	मरुत	वायु
४	१७ १	मरुत	वायुओ के तुल्य क्रिया करन म कुशल मनुष्यो !
५	१७ ४७	मरुत	ऋत्विज विद्वान्
६	१७ ८४	मरुत	यज्ञ करने वाले विद्वान
[redacted]	१७ ८६	मरुत	यज्ञ करन वाले विद्वान्
८	२४ ४	मारुता	वायु देवता वाले
९	२५ ६	मरुताम	मनुष्यो का
१०	३४ ४८	मरुत	मरण धम वाले मनुष्यो !

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

अथर्ववेद (दयानन्द भाष्य) परोपकारिणी सभा वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, २०२४ विक्रमी।

अथर्ववेद भाष्य (सायण) सम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर, १९६०-६१।

अमरकोश (लेखक अमर सिंह) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७०।

अरविन्दोज वैदिक ग्लोसरी श्री अरविन्दाश्रम पाण्डिचेरी।

अष्टाध्यायी पाणिनि, प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान अजमेर।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (धूर्त स्वामी भाष्य) ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा, १९५५।

आर्याभिविनय (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

आर्योद्देश्य रत्न माला (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

आर्योद्देश्य रत्नमाला (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़।

उणादिकोश (दयानन्द भाष्य) रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़।

उणादिकोश वृत्ति (दयानन्द), रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़।

उत्तररामचरित (भवभूति) चौखम्बा संस्कृत संस्थान दिल्ली।

उपनिषद्वाक्य कोश मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

ऊरु ज्योति डा० वासुदेव शरण अग्रवाल।

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५७।

ऋग्वेदप्रातिशाख्य (सं० वीरेन्द्रकुमार), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ऋग्वेद भाष्य (उद्गीथ, स्कन्द स्वामी वेंकटमाधव और मुद्गल के भाष्य सहित) विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान साधु आश्रम होशियारपुर वि० सं० २०२१

ऋग्वेद भाष्य (दयानन्द) वैदिक पुस्तकालय अजमेर २०२० विक्रमी।

ऋग्वेद भाष्य (सायण), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९३७-५१।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, १९६७।

ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य में अग्नि का स्वरूप एक परिशीलन (प्रकाशनाधीन)।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास (युधिष्ठिर मीमांसक) मीरा कार्यालय, अजमेर, सं० २००६ ।

ऐतरेय आरण्यक सम्पादन राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता १८७६ ।

ऐतरेयालोचन सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता १९०६ ई० ।

ऐतरेय उपनिषद काशी १९३८ ।

ऐतरेय ब्राह्मण, आनन्दाश्रम, पूना, १९८७ ।

ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य (सायण), निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९२५ ।

काठक संहिता स्वाध्याय मण्डल पारडी १९८३ ।

काण्व संहिता भाष्य (सायण) द्रष्टव्य वैदिक वाङ्मय का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १०३ ।

कात्यायन परिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र वाराणसी १९७२ वि० ।

केनोपनिषद मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७० ।

काशिका (वामन-जयादित्य) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी, १९६६ ।

कौशिक सूत्र (कौशिक) चिन्नस्वामी मद्रास, १९४४ । ब्लूमफील्ड जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च सोसायटी अमेरिका भाग १४ ।

कौषीतकी ब्राह्मण आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुण्य पत्तन १९११ ई० ।

कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद काशी १९३८ ई० ।

गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग) क्षेमकरण दास त्रिवेदी), तुकर गंज इलाहबाद १९७७, वाराणसी द्वितीय संस्करण ।

छान्दोग्योपनिषद मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९७० ।

तन्त्रवार्तिक (कुमारिलभट्ट) चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी,

तिलक एण्ड दयानन्द (बकिन) ।

तैत्तिरीय आरण्यक (सायण भाष्य) आनन्दाश्रम ग्रन्थावली पूना, १८६७ ।

तैत्तिरीयोपनिषद शिक्षावली मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९७० ।

तैत्तिरीय संहिता आनन्द आश्रम पूना स्वाध्याय मण्डल पारडी

तैत्तिरीय संहिता भाष्य (भट्ट भास्कर व सायण) वैदिक संशोधन मण्डल, पूना १९७० ।

दयानन्द दर्शन एक अध्ययन डा० श्रीनिवास शास्त्री कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९८२ ।

दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर (सुदर्शन देव), आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली दिल्ली ।

दयानन्द वैदिक कोश (राजवीर शास्त्री) आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली ।

दशकुमार चरित चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी ।
दस्यु विवेचन (वेद मे आर्य दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत खण्डन), रामगोपाल शास्त्री वैद्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ ।
धातु-पाठ वैदिक यन्त्रालय, अजमेर वि॰ स॰ १९९१ ।
निघण्टु (दुर्गभाष्य) वैदिक यन्त्रालय, अजमेर वि॰स॰ २००५ ।
निघण्टु भाष्य (देव राज यज्वा) कलकत्ता, १९५२ ई॰ ।
निरुक्त (यास्क) रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, २९२१ विक्रमी ।
निरुक्त ऋज्वर्थ व्याख्या (दुर्गाचार्य) भण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मन्दिर पूना, १९४२ ।
निरुक्त भाष्य टीका (स्कन्द स्वामी महेश्वर विरचिता)।
न्याय दर्शन (गौतम) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७० ।
न्याय मजरी (जयन्त भट्ट) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी १९७१ ।
न्याय वार्तिक—तात्पर्य टीका (वाचस्पति मिश्र) चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९२५ ।
पदमञ्जरी (हरदत्त) प्राच्य विद्या भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ।
पाणिनीय गणपाठ (सिद्धान्त कौमुदी के साथ सलग्न) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७ ।
प्रश्नोपनिषद मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१ ।
प्राचीन भारत का इतिहास
बृहदारण्यकोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७० ।
बृहद्देवता (शौनक), चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३३ ।
बौधायन गृह्यसूत्र स॰ श्रीनिवासाचार्य, मैसूर, १९०४ ।
ब्रह्मवैवर्तपुराण गीता प्रेस, गोरखपुर ।
भागवत पुराण गीता प्रेस गोरखपुर २०२१ विक्रमी ।
भ्रान्तिनिवारण (दयानन्द), रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, १९७५ ।
मत्स्य पुराण स॰ रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, वि॰स॰ २००३ ।
मनुस्मृति (मनु) चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी १९७४ ।
मनुस्मृति (कुल्लूकभट्ट टीका), चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९७० ।

महर्षि दयानन्द (प० जगन्नाथ वद्यालंकार द्वारा अनूदित)।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित (प० चासी राम) आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, २०१५ वि०

महाभारत (शान्ति पर्व (व्यास) स्वाध्याय मण्डल, पारडी। तथा गीता प्रेस गोरख-पुर वि०सं० २०१४।

महाभाष्य (पतञ्जलि) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७७।

महाभाष्य (प्रदीपाद्योत) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७।

मीमांसा दर्शन (जैमिनि) आनन्दाश्रम ग्रन्थावली, पूना, १९७०।

मीमांसा (शाबर भाष्य) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।

मीमांसा भाष्य (विमर्शिनी व्याख्या)।

मीमांसा सूत्र पाठ (जैमिनि) प्रेम पुस्तक भण्डार, बिहारीपुर, बरेली, १९७६।

मुण्डकोपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९७०।

मूल संस्कृत उद्धरण जे० मुइरकृत ओरिजिनल, संस्कृत टेक्स्टस, राम कुमार कृत हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, १९७० ई।

यजुर्वेद स्वाध्याय मण्डल पारडी बलसाड। २०२६ विक्रमी।

यजुर्वेद भाष्य (दयानन्द), वैदिक यन्त्रालय अजमेर २०१६ वि०सं०।

यजुर्वेद भाष्य विवरण ब्रह्मदत्त जिज्ञासु सम्पादित, रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत।

योगदर्शन (पतञ्जलि) आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, १९७८।

योग भाष्य (व्यास) आनन्दाश्रम, पूना, १९७८।

लाइफ आफ दयानन्द सरस्वती हरविलास शारदा।

वाक्य पदीय (भर्तृहरि) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७५।

वाचस्पत्यम चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।

वाजसनेयी संहिता (ए० वेबर) चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी १९७२।

वायु पुराण गीता प्रेस गोरखपुर।

विष्णु पुराण गीता प्रेस गोरखपुर वि०सं० २००९।

वेद तथा ऋषि दयानन्द श्रीनिवास शास्त्री, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९८०।

वेद मीमांसा लक्ष्मीदत्त दीक्षित, दिल्ली १९८०।

वेद में इन्द्र (डा० जयदत्त उप्रेती) भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, १९८५।

वेद रहस्य (श्री अरविन्द), श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी।

वेद समुल्लास मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७१।

वेदस्य व्यावहारिकत्वम्, (डा० ज्योत्स्ना), चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी,

वेदान्त सूत्र (शांकर भाष्य) निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १६४८ ई०।

वेदों का यथार्थ स्वरूप धर्मदेव विद्या वाचस्पति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, वि०सं० २०१०।

वेदों में इन्द्र (गुरुदत्त एवं शुचि गुप्त) शाश्वत संस्कृति परिषद, नई दिल्ली, १६८६ ई०।

वैदिक इण्डेक्स डा० राम कुमार राय (मैक्डानल एण्ड कीथ कृत) अंग्रेजी वैदिक इण्डक्स का हिन्दी अनुवाद, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी १६६२।

वैदिक कोश (डा० सूर्यकान्त), हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, १६६३।

वैदिक देव शास्त्र डा० सूर्यकान्त शास्त्री (ए०ए० मक्डानल कृत वैदिक माइथोलोजी का हिन्दी अनुवाद) दिल्ली, १६६१ ई०।

वैदिक ज्योति, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री।

वैदिक राजनीति शास्त्र (डा० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा) बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सम्मेलन भवन कदम कुआ, पटना।

वैदिक रीडर (मैक्डानल) मद्रास, १६५१।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास रमाकान्त शास्त्री चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी।

वैदिक व्याख्यान विवेचन डा० रामगोपाल, दिल्ली, १६७६।

वैदिक सम्पत्ति (रघुनन्दन शर्मा) वैदिक सम्पत्ति, द्वितीय सं० १६६६ प्रकाशन सेठ सूरजीवल्लभदास बम्बई।

वैदिक साहित्य रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १६५०।

वैदिक साहित्य और संस्कृति (बलदेव उपाध्याय) शारदा संस्थान, वाराणसी, १६८०।

वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत।

वैशेषिक दर्शन (कणाद) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १६८०।

व्याकरण महाभाष्य (कील हार्न) भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना।

शतपथ ब्राह्मण प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, १६७०।

शाबर भाष्य (शबर स्वामी) आनन्दाश्रम, पूना, १६७६।

शांखायन आरण्यक आक्सफोर्ड दिल्ली, १६०६।

आनन्दाश्रम पूना, १६२२, बर्लिन, १६००, कलकत्ता, १८६१।

शांखयान ब्राह्मण (सं० गुलाबराय बजेशंकर) आनन्दाश्रम, पूना १६११

शुक्ल यजुर्वेद संहिता (सं० दौलत राम गौड़) चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी।

शुक्ल यजुर्वेद संहिता (उवट महीधर भाष्य) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली ।

श्रीमद्भगवद् गीता गीता प्रेस गोरखपुर २०१३ विक्रमी ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७० ।

सत्यार्थ प्रकाश (दयानन्द) रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत १६७२ ।

सत्याषाढ श्रौतसूत्र (सत्याषाढ) आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १६३२ ।

सर्वानुक्रमणी (कात्यायन) आक्सफाड प्रेस लन्दन, १८८६ ई०

संस्कृत हिन्दी कोश वामन शिवराम आप्टे मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६७३ ।

सामवेद उत्तरार्चिक स्वाध्याय मण्डल पारडी सूरत, १६५६ ।

सामवेद हिन्दी भाष्य स्वाध्याय मण्डल पारडी १६५६ ।

सांख्य शास्त्र भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६७७ ।

सिद्धान्त कौमुदी (भट्टोजिदीक्षित) मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १६६६ ।

सम्मन्तव्यामन्तव्य प्रकाश (दयानन्द) द्रष्टव्य सत्यार्थ प्रकाश ।

गुरुकुल पत्रिका (मासिक), हरिद्वार मार्च अप्रैल, १६६६, ई०, १६७३ ई० मई, १६७४ ई० ।

धर्मयुग, २८ जुलाई, १६८४ ।

वेदवाणी, (वदिक वृष्टि विज्ञान) मार्च, १६७२ व वर्ष २० अंक ६ रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत ।

ENGLISH BOOKS

A Comparative Analytical Study of the Vedas (Ed Dr Raghuvir) Nag Publishers, Jawahar Nagar Delhi

An Encyclopaedia of Indian Literature Ganga Ram Gar Mittal Publishers Delhi 1982

Dayananda and the vedas Dr Parmananda Indovision Pub pvt. Ltd Ghaziabad

Religion and philosophy of the Vada (A B Keith) Hardward Oriental Series No 32 33 1925

Rgveda Sambita (H H Wilson) Nag Publishers Delhi, 1977

Sanskrit English Dictionary V S Apte Motilal Banarsidass Delhi 1976

Sanskrit English Dictionary Monier Williams Motilal Banarsidass, Delhi, 1976

The Concept of God in Vedas (D D Mehta) The Academy of Vedic Researches New Delhi

The Sacred Books of the East Motilal Banarsidass, Delhi,

The Vedas F Max Muller, Susil Gupta Calcutta, 1656

The Vedic Gods as Figures of Biology V G Rele, Vedic India, Macdonell & Keith

Vedic India (Louis Renou), Calcutta 1957

Vedic India (Legozin N A), Delhi 1971

Vedic Mythology Macdonell Varanasi 1963

The Religion of Rgveda (Griswold, H D), Varanasi 1971
